DASAM GRANTH MEIN VIR RAS KA ALOCHNATMAK ADHYYAN

दशम ग्रंथ में वीर-रस का आलोचनात्मक अध्ययन

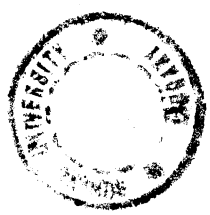

A THESIS

SUBMITTED TO THE PANJAB UNIVERSITY, CHANDIGARH

FOR THE DEGREE OF

Doctor of Philosophy

IN THE FACULTY OF LANGUAGES

1984

Vimla Gupta
466-Mota Singh Nagar
Jullundur

प्रेरणा तथा आभार

दशम्ग्रंथ एक बृहदाकार रचना है जिसमें श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी की प्रतिभा के चमत्कार सर्वत्र देखने को मिलते हैं। गुरु जी की साहित्य-रचना का प्रेरणा-स्रोत समूचा भारतीय वाङ्मय रहा है तथा उन्होंने अपने समकालीन समाज की नब्ज़ पर हाथ रखकर इसके व्यापक रोग, मानसिक कुण्ठा और यातना, वेदना तथा विषाद का अवगाहन भी किया है। उनके अन्य समकालीन कवि यथा देव, बिहारी तथा पद्माकर नायक-नायिका भेद तथा मानवीय वासनाओं से बाहर नहीं निकल सके और श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कविवर भूषण की तरह भारतीय राष्ट्र की सुप्त आत्मा को झंझोड़कर जगाया और इसमें एक नया उत्साह तथा नव-स्फूर्ति का संचार किया। बल्कि कवि भूषण भी शायद अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता-अप्रसन्नता को ध्यान में रखकर ही लिख रहे थे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि वे एक ही पद-छंद का प्रयोग कभी छत्रपति शिवाजी के लिये करते हैं तो दूसरे क्षण वही छन्द वीर छत्रसाल के लिये भी प्रयोग में लाते हैं। इसके विपरीत श्री गुरु गोबिंद सिंह का समूचा साहित्य एक स्वानुभूत प्रक्रिया है तथा राष्ट्र, समाज तथा भावी आदर्श समाज रचना उनका एकमात्र लक्ष्य था। 'धर्म युद्ध का चाय' उनके साहित्य एवं जीवन का उच्चतम लक्ष्य था तथा विशुद्ध, निष्काम, राष्ट्र-चेतना मुखी वीर-रस उनकी विशेष उपलब्धि है।

हमारे आधुनिक युग की कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान जब 'वीरों का कैसा हो बसंत' लिखती हैं तो वीर रस के कवियों के रूप में (भूषण अथवा कवि चंद नहीं, बिजली भर दे वह छंद नहीं) कविवर भूषण तथा चाँद वरदायी को ही स्मरण करती हैं। हिन्दी जगत ने गुरु गोबिंद सिंह के काव्य की सामान्यतया उपेक्षा ही की है, जबकि विशुद्ध राष्ट्रीय संकल्प, उत्कट देश-भक्ति तथा युगों-युगों तक प्रतिध्वनित होने वाली वीर-भावना में उनका सानी अन्य कोई कवि नहीं है। इस युग-द्रष्टा, 'हिन्दुपति सुल्तान' तथा राष्ट्र-नायक संत-सिपाही के काव्य में वीर रस का विवेचन करने की प्रेरणा हमें हिन्दी जगत के उनके प्रति इस उपेक्षा-भाव से ही प्राप्त हुई है।

प्रसन्नता है कि हम वीर रसात्मक काव्य को केन्द्र-बिन्दु मानकर दशमग्रंथ का समुचित अध्ययन करने में तत्पर रहे हैं एवं कुछ निकर्ष भी निकाल पाये हैं। इस गुरुतर कार्य में मेरे निरीक्षक श्रद्धेय प्रोफेसर धर्मपाल जी मैनी ने अपना अत्यंत मूल्यवान् समय देकर हमारा मार्ग दर्शन करने की कृपा की है। उन्होंने स्वयं भी दशमग्रंथ पर डी० लिट् तथा आदि ग्रंथ (श्री गुरु ग्रंथ साहिब) पर पी-एच.डी. किया है, अतः अपने विषय के ऐसे अधिकारी व्यक्ति से निर्देशन पाकर उनके उपकार को शब्दों में कैसे बांधा जा सकता है। हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० जयप्रकाश शर्मा का यहां आभार स्वीकार न करूं तो कृतघ्नता होगी क्योंकि वीर रस के सैद्धांतिक पक्ष को समझने में उन्होंने हमारी विशेष सहायता की है। पंजाबी विश्वविद्यालय के डा० रत्न सिंह जग्गी ने इस शोध-प्रबंध का प्रथम पाठ पढ़ने और मूल्यवान् सुझाव देने का कष्ट किया। इनके अतिरिक्त शोध-प्रबंध की तैयारी में एक या दूसरी दृष्टि से योगदान करने के लिये हम डा० हरिभजन सिंह, डा० गुरशरण कौर जग्गी, डा० शमीर सिंह जी तथा डा० महेश चन्द्र शर्मा जी के भी आभारी हैं। अन्त में मैं अपने जीवन-साथी प्रो० पाल जी की भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे घर-गृहस्थी के झंझटों से बाहर निकाल कर शोध-कार्य में प्रवृत्त किया तथा हर तरह से मेरा मार्ग-दर्शन एवं सहायता की।

विमला गुप्ता
(विमला गुप्ता)

400 मोता सिंह नगर-जालंधर

विषय-सूची

प्रथम अध्याय :

रस, स्वरूप और महत्व

वीर रस, रस प्रक्रिया की सामग्री, वीर, करुण और रौद्र।

काव्य का मूल निवेश :

(क) अनुभूति और आत्म साक्षात्कार की दिशाएं।

(ख) ऐतिहासिक परिवेश एवं शोध-सीमा।

वीर रसात्मक काव्य: विकास के चरण,

- संस्कृत साहित्य में वीर रस का स्वरूप

-हिन्दी काव्य में वीर रस का स्वरूप

द्वितीय अध्याय :

गुरु गोविंद सिंह : युग परिस्थितियां

राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियां

तृतीय अध्याय :

दशमग्रंथ की कृतियों का आलोचनात्मक सर्वेक्षण

(अ) वीर रसात्मक काव्य का मूल निवेश

(आ) दशमग्रंथ में वीर रस परिपूर्ण रचनाएं।

(क) विशुद्ध वीर रसात्मक कृतियां

(ख) आंशिक वीर रसात्मक कृतियां

(ग) वीर रसात्मक शैली एवं पृष्ठ भूमि पर विरचित कृतियां

चतुर्थ अध्याय :-

दशमग्रंथ का वीर रसात्मक विश्लेषण

प्रमुख वीररसात्मक कृतियों के आधार पर क्रमश: विचार।

पंचम अध्याय :

दशमग्रंथ की वीर रसात्मक वाणी में युद्ध-वर्णन :

वीर रसात्मक काव्य में युद्ध वर्णन का महत्व ।

षष्टम अध्याय :

वीर रसात्मक अभिव्यक्ति के प्रसाधन :

छन्दयोजना, भाषा-शैली, शब्द शक्तियां, वस्तु योजना, बिम्ब योजना ।

सप्तम अध्याय :

दशमग्रंथ की वीररसात्मक वाणी का हिन्दी पर प्रभाव :

इतिहास, राजनीति तथा समाज को देन, धार्मिक क्षेत्र में देन, साहित्य व संस्कृति को देन, उपसंहार ।

ooooo
ooo
o

प्रथम अध्याय

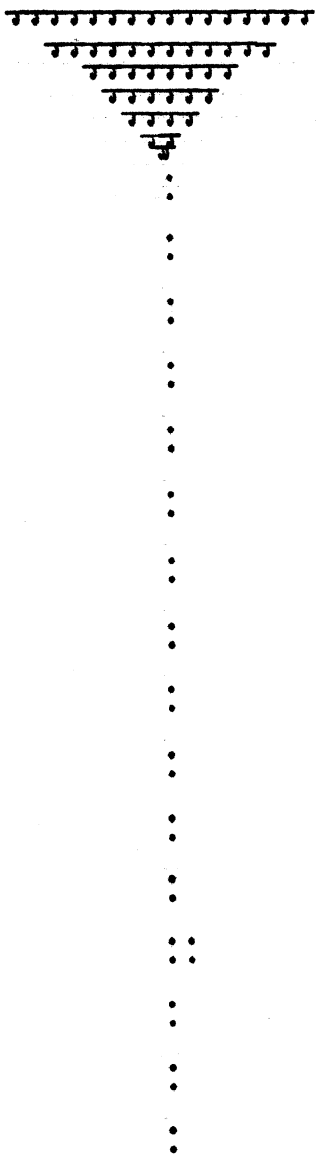

रस : स्वरूप और महत्व

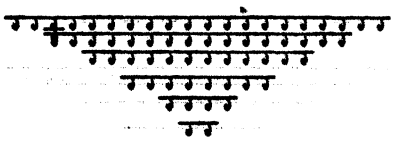

रस : स्वरूप और महत्व

रस एक व्यापक शब्द है। भारतीय वाङ्मय में यह शब्द बहुत पुराना है। सामान्यत: रस शब्द के अर्थों में इस प्रकार भेद पाया जाता है कि इसके विषय में निष्कर्ष रूप से यह कहना कठिन है कि रस क्या है, इस की निष्पत्ति कैसे होती है, तथा रस, आनन्द, स्वाद आदि शब्दों में क्या अन्तर है। यही कारण है कि रस के विषय में हमारे विद्वान् एकमत नहीं हो सके हैं। डा० नगेन्द्र ने सामान्य व्यवहार में रस के चार अर्थों में प्रयुक्त होने का संकेत किया है-- १- पदार्थों का रस-अमल, तिक्त, कषाय आदि, २- आयुर्वेद का रस, ३- साहित्य का रस, और इसी से मिलता-जुलता ४- मोक्ष या भक्ति का रस।[१]

पदार्थों के रस में किसी पदार्थ को निचोड़ कर निकाला रस आता है। इसका अर्थ पदार्थ का सार भी हो सकता है और पदार्थ का आस्वाद भी। दोनों ही अर्थों में यह रस है।

१- डा० नगेन्द्र : रस-सिद्धान्त, पृष्ठ ३।

आयुर्वेद में रस में ऊपर के व्यावहारिक अर्थ का ही अर्थ-विकास होता है। पदार्थ का सार रस है, पदार्थ का आस्वाद भी रस है, तथा एक और अर्थ आयुर्वेद ने जोड़ दिया है, वह है पदार्थ-विशेष का गुण, उसकी शक्ति, जो शरीर का आधार है। आयुर्वेदीय अर्थ की व्याख्या करते हुए डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित लिखते हैं--- वैद्यराज रस शब्द का प्रयोग रसायन तथा पारद के अर्थ में करते हैं। कभी इसमें वीर्य का अर्थ ग्रहण किया जाता है और कभी जल का। प्राचीन आचार्य भट्टकाव्य ने इसका प्रयोग जलीय तथा जिह्वेन्द्रिय ग्राह्य प्रदार्थ के रूप में किया है। कुमारशिरस् ने इसे पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि में निहित गुण माना है। आत्रेय पुनर्वसु ने षड़रस के अर्थ में इसका प्रयोग करते हुए इसको योनिजल बताया है।-----"[२]

साहित्य-रस में " रस का अर्थ है (अ) काव्य-सौन्दर्य, और (आ) काव्यास्वाद तथा काव्यानन्द भी।"[३]

" मोक्ष-रस या आत्म-रस ब्रह्मानन्द तथा आत्मानन्द का वाचक है, भक्ति-रस का अर्थ भी, सिद्धान्त भेद होने पर भी, मूलत: यही है।"[४]

रस शब्द एक है, इसके अर्थ अनेक हैं। रस के अर्थ में जो विकास हुआ है, यह भी क्रमिक, स्वाभाविक और व्यावहारिक विकास है। रस पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य डा० नगेन्द्र का ही है। वे रस की चर्चा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि--" रस का मूल अर्थ कदाचित् द्रवरूप वनस्पति-सार ही था। यह द्रव निश्चय ही आस्वाद-विशिष्ट होता था-- अतएव ` आस्वाद` रूप में भी रस का अर्थ-विकास स्वत: ही हो गया, यह निष्कर्ष सहज निकाला जा सकता है। सोम वामक औषधि का रस अपने आस्वाद और गुण के कारण आर्यों को विशेष प्रिय था, अत: सोम रस के अर्थ में रस का प्रयोग और भी

२- डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित: रस-सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ २ ।
३- डा० नगेन्द्र : रस-सिद्धान्त, पृष्ठ ३ ।
४- -वही- पृष्ठ ३ ।

विशिष्ट हो गया। सोमरस का आस्वाद अपूर्व था, उसमें ऐसे गुण थे जिन से शरीर और मन में स्फूर्ति, शक्ति तथा मद का संचार होता है और उसके पान से एक विचित्र आह्लाद की प्राप्ति होती थी। अत: सोमरस के संसर्ग से रस की अर्थ-परिधि में क्रमश: शक्ति, मद और अन्त में आह्लाद का समावेश हो गया। आह्लाद का अर्थ भी सूक्ष्मतर होता गया-- वह जीवन के आह्लाद से आत्मा के आह्लाद में परिणत हो गया और वैदिक युग में ही आत्मानंद का वाचक बन गया।[५]

इस उद्धरण में रस के व्यावहारिक अर्थ, इसकी अर्थ-सीमा और अर्थ की विकास-रेखा निहित है, इसी लिए यहाँ पर यह सुविस्तृत उद्धरण प्रस्तुत किया गया है।

वेद व उपनिषदों में :-

ऋग्वेद में रस शब्द का प्रयोग `गौ के क्षीर` के लिए किया गया है तथा कहीं-कहीं इसको `सोमरस` के लिए भी अथवा रस-युक्तता के लिए प्रयुक्त किया गया है।[६] वेदों में अन्यत्र और कुछ प्रयोग भी मिलते हैं, मगर इस का सर्वाधिक प्रयोग मधु, सोमरस और दुग्ध के अर्थ में ही हुआ है। उपनिषद् काल में रस को प्राण स्वरूप माना जाने लगा। `बृहद्‌रण्यकोपनिषद्` में `प्राणो वा अंगानां रस:` कहकर इसी अर्थ को द्योतित किया गया है। इस के विपरीत `तैत्तिरीयोपनिषद्` में ब्रह्म को ही रस रूप माना गया है। वह आनन्दस्वरूप है, अनादि है और रसमय है।[७] शतपथ ब्राह्मण` में भी `रसो वै मधु` कहकर रस को मधु की संज्ञा दी गई है। `छान्दोग्योपनिषद` में रस

१- डा० नगेन्द्र : रस-सिद्धान्त, पृष्ठ ३-४ ।

६- जन्मे रसस्य वावृधे। ऋग्वेद- १-३७,५। तथा-- स्वादू रसो मधुपर्यो वराय। ऋ० ६-४१, २१।

७- रसो वै स: । रसं ह्येवायंलब्ध्वा नंदी भवति। २।७,१ ।

को आठ प्रकार का माना गया है। जैसे, चराचर जीवों का आधार `पृथिवी` है, पृथिवी का रस या आधार `जल` है, जल का `औषधियाँ`, औषधियों का `मानव-शरीर`, मानव का `वाणी`, वाणी का `ऋचा` ऋचा का `साम` और साम का रस `उद्गीथ` है।[८] अतः पृथिवी (पदार्थ) जल, औषधियाँ (आयुर्वेद) मानव शरीर (पदार्थ), वाणी, ऋचा (आत्म-रस), साम और उद्गीथ (साहित्य), ये आठ अर्थ रस के लिए अभिप्रेत हैं। यही आठों अर्थ विभिन्न शैलियों में साहित्य में रस के आधार बने।

शब्दकोषीय अर्थ :-

शब्द कोष में उपर्युक्त सभी अर्थों को समाहित किया गया है, यथा गंध, स्वाद, विष, राग, शृंगार, द्रव, वीर्य, अम्बु तथा पारद।[९] अमर कोष में इसको घी-वर्ग में रूप, गंध आदि के साथ रखा गया है और तिक्तादि षड्रसों का उल्लेख किया गया है।[१०] यहीं पर `पारद` और `शृंगारादि` अर्थों में भी इस का प्रयोग हुआ मिलता है।[११]

भरतमुनि की दृष्टि में रस :-

यद्यपि भरत से पूर्व भी कुछ आचार्यों ने रस की व्याख्या नहीं तो इसका प्रयोग अवश्य किया होगा, मगर रस के विषय में सर्वप्रथम विवेचन `नाट्य-शास्त्र` के रचयेता भरत ने प्रस्तुत कियागया है। भरत रस को `अथर्व वेद` से

८- एषां भूतानाम् पृथिवी रसः। पृथिव्या आपो रसः । आपमोषधयो रसः। ओषधीनां पुरुषो रसः। पुरुषस्य वाग् रसः। वाच ऋग् रसः। ऋचः साम रसः साम्य उद्गीथो रसः। --- छान्दोग्य, १।१।२,३।

९- रसो गंध रसे, स्वादे तिक्तादौ विषरागयो ।
शृंगारादौ द्रवे वीर्ये, देह धात्वम्बु पारदे ।।-- विश्वकोष ।

१०- रूपं शब्दो गंध रस स्पर्शाश्च विषया अमी। -- अमरकोष, २८१ ।

११- शृंगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः। -- वही २८५ ।

ग्रहण किया हुआ मानते हैं।[१२] उनके लिए रस ही नाटक में प्रधान है। रस के बिना नाटक की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि रस तथा भावों की उचित व्यवस्था का नाम ही नाटक है। ऐसा कोई रससिद्ध व्यक्ति ही कर सकता है। इस व्यवस्था को जानने वाला व्यक्ति ही उत्तम सिद्धि वाला व्यक्ति है।[१३] उन्होंने अपनी बात की व्याख्या के लिए माला और उसमें आने वाले विविध रंगों तथासुगंधि का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार माला में रंगों और सुगंधियों का विशेष स्थान है, ठीक उसी तरह नाटक में रस रंग-रूप, सौन्दर्य और सुगंधि भरता है।

भरत-परवर्ती रस-चर्चा :-

भरत के परवर्ती काल में रस और इससे सम्बंधित विषयों पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। काव्य का स्वरूप क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? इस विषय को लेकर भरत के परवर्ती आचार्यों ने बाल की खाल तक उतारने का प्रयास किया है। फलत: काव्य के स्वरूप पर विचार करने वाले अनेक सम्प्रदायों का उद्भव हुआ, यथा-- १- रस-सम्प्रदाय (भरत द्वारा प्रवर्तित, भट्टेनायक और विश्वनाथ के नाम से अभिहित, २- अलंकार सम्प्रदाय (भामह, दण्डी, रुद्रट आदि), ३- रीति-सम्प्रदाय (वामन), ४- ध्वनि-सम्प्रदाय (आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, मम्मट), ५- वक्रोक्ति सम्प्रदाय (कुन्तल या कुन्तक), ६- औचित्य-सिद्धान्त (क्षेमेन्द्र), रस की महत्ता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी आचार्यों ने स्वीकार की है। इन सभी सम्प्रदायों वालों ने एक ढंग से रस-सम्प्रदाय की ही कतिपय मान्यताओं को बलिष्ट किया है। इसी तरह भगवद्-भजन में ऊपर से नीचे तक सराबोर होने वाले गोस्वामी वर्ग ने भी प्रेम और भक्ति का समन्वय करके रस को ही उच्च स्थान प्रदान किया है। जीव-गोस्वामी और रूप गोस्वामी का नाम इस दिशा

१२- 'नाट्यशास्त्र' चौ० १०।७१ ।

१३- एवम् रसाश्च भावाश्च व्यवस्था नाटके स्मृता: ।

च एवमेतान् जानाति स गच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्। नाट्यशास्त्र, अ०७, श्लोक १२४ ।

में विशेष रूप से लिया जा सकता है। `अग्निपुराण` और `विष्णुधर्मोत्तर पुराण` जैसे ग्रन्थों में भी रस का विवेचन किया जाना इसके महत्व का परिचायक है। आचार्य विश्वनाथ तो `रसयुक्त वाक्य को ही काव्य मानते हैं।`[१४]

नायिका-भेद की काव्य-परिपाटी में जो रस का विशद् विवेचन हुआ है, इसे रस सम्बन्धी रचे गये साहित्य की विशेष उपलब्धि माना जा सकता है। भानुदत्त (रसमंजरी), वाल्मीकि (रामायण), भरतमुनि (नाट्य-शास्त्र), पण्डितराज जगन्नाथ (रस गंगाधर) आदि कवियों तथा आचार्यों ने नायिका-भेद का विस्तार से वर्णन किया है। हिन्दी साहित्य में कवि-आचार्य केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, रसलीन, भिखारीदास, पद्माकर, ग्वाल कवि तथा प्रतापनारायण आदि रीतिकालीन कवियों ने इस दिशा में काफी मौलिकता का परिचय दिया है।

आधुनिक काल में नयी दृष्टि से रस का शास्त्रीय विवेचन करने वालों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (रसज्ञ रंजन), बाबू गुलाब राय (सिद्धान्त और अध्ययन), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा), जयशंकर प्रसाद (काव्य कला और अन्य निबन्ध), केशवप्रसाद मिश्र (साहित्यालोचन), विश्वनाथप्रसाद मिश्र (वाङ्मय विमर्श), राम दहन मिश्र (काव्यालोक) तथा नगेन्द्र (रीतिकाव्य की भूमिका) प्रभृति प्रौढ़, विचारशील और सन्तुलन वाले काव्य-शास्त्री हैं जिन्होंने रस-विचार के क्षेत्र में संस्कृत काव्य-शास्त्रियों के विचारों को तर्क की कसौटी पर कस कर नवीन उद्भावनाएं की हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रस के अर्थ सदा बदलते रहे हैं। वैदिक साहित्य में रस का अर्थ द्रव्य, स्वाद तथा गुण है। कोषीय अर्थ में रस के सभी प्रमुख भेदों का उल्लेख हुआ है। काव्य शास्त्र में रस का अभिप्राय शृंगारादि रस हैं। रसात्मक वाक्य ही काव्य है और यह आनन्द या ब्रह्मानन्द सहोदर है। काव्य का आनन्द ब्रह्मानन्द है। संस्कृत-साहित्य को

१- (डा०) आनन्दप्रकाश दीक्षित: रस-सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ ६ ।

यही परम्परा या धारणाएं हिन्दी में विकसित हुई हैं, यद्यपि इनमें कुछ नयी उद्भावनाएं भी की गई हैं।

रस निष्पत्ति : अर्थ एवं सम्भावनायें :-

भरत ने ' रस निष्पत्ति' सूत्र में कहा है --' विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति: ।'

जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हुए हर्ष प्राप्त करते हैं। भरत के अनुसार:---

१- स्थायी भाव विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा रस रूप में परिणत हो जाता है।

२- रस एक सुन्दर भावमूलक स्थिति है अर्थात् अनुभूति न होकर अनुभूति का विषय है।

इस प्रकार भरत ने स्थायी भाव की स्थिति को ही रस माना है।

अभिनव गुप्त ने रस को (आनन्द) आत्मगत और नाट्यादि विषय को आत्मानन्द का माध्यम मात्र स्वीकार किया।

अभिनव गुप्त ने सौन्दर्य को व्यक्तिनिष्ठ माना है। उनके अनुसार जिस प्रकार " तत्र गन्धवती पृथ्वी" गन्ध पृथ्वी के आत्म तत्व है। आनन्द व्यक्ति का आत्म गुण है और विभावादि के संयोजन से सुषुप्तावस्था से जागृत स्थिति में आ जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है :--

१- भरत ने रस को नाट्यगत माना है और अभिनव गुप्त ने सामाजिक-गत ।

२- पश्चिमी विद्वानों में भी एक वर्ग सौन्दर्य को व्यक्तिगत और दूसरा वस्तुगत मानता है।

३- हम समझते हैं कि सौन्दर्य व्यक्तिगत है । हर व्यक्ति का सौन्दर्य का संकल्प अपना-अपना होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने भरत से लेकर अपने समय तक होने वाले सभी आचार्यों के मत को ध्यान में रखकर रस के स्वरूप के सम्बन्ध में इस तरह वर्णन किया है :

सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानंद चिन्तमय: ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर: ।
लोकोत्तरचमत्कारप्रण: कैश्चित्प्रमातृभि: ।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस: ।।

-- साहित्यदर्पण ३.२.३ ।

१- रसानुभूति सत्वोद्रेक की स्थिति है। रजस्तमोभ्यामस्पष्ट मन: सत्वमिहोच्यते । मानव में राग द्वेष का सर्वथा अभाव सम्भव नहीं परन्तु सतोगुण में तमोगुण और रजोगुण का न होना सम्भव है। इसलिए रसानुभूति उदात्त वृति है जो कि चित्त की निर्मलता में ही सम्भव हो सकती है।

२- रसानुभूति वेद्यान्तर स्पर्शशून्य स्थिति है :- रसानुभूति के समय मन में अपने पराये का भेद नहीं होता। देशकाल का कोई बन्धन नहीं होता। यह चित्त की पूर्ण तन्मयता - आत्म-लीनता की स्थिति होती है।

३- रसानुभूति अपने आकार में अभिन्न रूप स्थिति है। इसका अर्थ यह है कि रस को अनुभव किया जा सकता है। जिस रूप में रसानुभूति होती है। वही सच्ची अनुभूति है। जिस प्रकार आत्मा ब्रह्मानन्द का आनन्द अनुभव करती है उसी प्रकार विभावादि से सहताप निजी अनुभूति रस रूप ग्रहण करती है।

रस के स्वरूप के निम्नलिखित तत्व हैं :

(क) रस अखण्ड , स्वप्रकाशानन्द तथा चिन्मय है : डा० नगेन्द्र के अनुसार रसपूर्ण अर्थात् कोटि अथवा माया भेद रहित ज्ञान है ।[१५]

(ख) रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण ब्रह्मास्वाद सहोदर है। रस का प्राण चमत्कार है। लोकोत्तर चमत्कार का योगी समाधिस्थ होकर जिस ब्रह्मानन्द की अनुभूति करता है। रसा लाह उस कोटि का तो नहीं क्योंकि उसका एक तो आनन्द स्थायी होता है दूसरे उसमें विषयों की पूर्ण निवृत्ति होती है। रस का न तो आनन्द स्थायी होता है और न ही सांसारिक विषयों का सर्वथा अभाव होता है। परन्तु रसास्वाद इन्द्रियों का विषय न होकर मन का विषय है।

आधुनिक काल में भी रस की अलौकिकता और अनिवर्चनीयता का विषय विवादास्पद रहा है। रस को अलौकिक मानने वाले रसवादियों के तर्कों को तीन रूपों में रखा जा सकता है:--

१- रसानुभूति इन्द्रियों का विषय न होने के कारण अलौकिक है। काव्यानन्द पारलौकिक न होकर इहलोक का आनन्द है। रस लोकोत्तर है परन्तु अलौकिक नहीं।

२- रसानुभूति केवल काव्य का विषय होने के कारण अलौकिक है। रस का क्षेत्र केवल काव्य है लोक नहीं।

डा० नगेन्द्र के अनुसार--" प्रकृति के साक्षात्कार क्षणों में ह नहीं जीवनगत अनेक स्थितियों जैसे कर्त्तव्यपालन, धार्मिक सत्संग आदि में हमारा चित्त व्यक्ति संसर्गों से मुक्त होकर नैर्मल्य का अनुभव करता है।" चित्त की इस निर्मलता को ही डा० नगेन्द्र रस दशा स्वीकार करते हैं।[१६]

१५- डा० नगेन्द्र : रस सिद्धान्त, पृष्ठ ८६ ।

१६- -वही- पृष्ठ ६३ ।

काव्य रस केवल मन की एकाग्रता तथा आह्लादकता की स्थिति नहीं बल्कि वास्तविकता यह है कि रस मात्र मन की एकाग्रता तथा आह्लाद ही नहीं। इसमें कवि की कल्पना तथा उसके द्वारा पैदा हुई उदात्त भावों की अनुभूति भी सम्मिलित है। काव्यानन्द एक मानसिक दशा है, इससे ऐन्द्रियानुभूति कभी नहीं होती। दुष्यन्त और शकुन्तला के अभिनय को देखकर सहृदय के मन में ऐन्द्रियता उत्पन्न नहीं होती। यदि ऐसा होता हो तो इसमें कुछ दोष अवश्य है। वास्तव में काव्य का सम्बन्ध लोक से है, अलौकिक से नहीं। अत: रस लोकोत्तर है, अलौकिक नहीं है।

३- लौकिक अनुभूतियां सुखा-दु:खात्मक होती हैं और रसात्मक अनुभूति एकान्त सुखात्मक होती है। परन्तु यह मत भी अपने अर्थ में उचित ज्ञान नहीं देता। सभी रसों की अनुभूति सुखात्मक हो सकती । सभी आचार्यों ने श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, अद्भुत तथा शान्त को सुखात्मक और कुछ आचार्यों ने करुण, बीभत्स तथा भयानक को दु:खात्मक माना है। इस प्रकार रस को सुख-दु:खात्मक कहा है।

अभिनव गुप्त ने स्थायी भावों को सुख तथा दुख दोनों पदार्थों में ग्रहण किया है। उन्होंने भरत के इस मत का खण्डन किया है कि---

रति-हास-उत्साह-विस्मयानां सुखस्वभावत्वम् ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

क्रोध-भय-शोक-जुगुप्सानां तु दु:खरूपता ।

इसके विपरीत अभिनव गुप्त स्वीकार करते हैं कि ये स्थायी भाव उभयरूपी हैं। भट्टनायक ने भी करुणादि रसानुभूति को सुखात्मक माना है, उनका तर्क भोजकत्व व्यापार है। --- मम्मट ने भी रस को आनन्दात्मक माना है। विश्वनाथ ने तो सहृदयों की करुणादि में सहज प्रवृत्ति के आधार पर उसकी सुखात्मकता सिद्ध मानी है क्योंकि उनके अनुसार दु:ख में मानव की प्रवृत्ति कदापि नहीं होती। पण्डितराज जगन्नाथ भी सम्पूर्ण सहृदय समाज के प्रत्यक्ष अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर रस को आनन्द रूप स्वीकार करते हैं। इन आचार्यों के विपरीत

भरत के मत से सहमति प्रकट करने वाले आचार्यद्वय रामचन्द्र-गुणचन्द्र हैं।[१७]

परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत भरत के विचारों से मिलता जुलता है, उनके अनुसार--" रस उभय रूपी सुख-दुखात्मक है।" इस मत को दृष्टि में रखते हुए इन आचार्यों का कथन है---

१- करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक रस से सहृदयों को कष्ट पहुंचता है। सुखानुभूति में उद्वेग के लिए कोई अवकाश नहीं होता।

२- काव्य-नाटक में लौकिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण होता है।

३- करुणादि रस से सहानुभूतिपूर्ण सुख की अनुभूति होती है।

४- करुण-भयानक रसों की दु:खात्मकता की निवृत्ति कवि तथा नट की कुशलता के चमत्कार से हो जाती है।

शुक्ल जी के कथनानुसार काम, क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनन्द का रूप धारण कर सकते हैं। क्या सुख-क दु:ख का स्थान सुख ले सकता है ? क्या लक्ष्मण का मार्जन बाण से मूर्च्छित होना और राम का अपने भाई के विलाप सुनकर हृदय में करुणा के भाव जागृत नहीं होते ? क्या कोई दुखान्त देखकर मन पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता ? ये सब बातें क्या आनन्दगत हैं ?

पाश्चात्य काव्य शास्त्र में त्रासदी की सुखात्मकता का वर्णन है और वह भारतीय काव्य शास्त्र करुणा रस से मिलता-जुलता है। अरस्तु के कथनानुसार जिस प्रकार औषधियों से शरीर का मल बाहर निकल जाता है और शरीर स्वस्थ हो जाता है उसी प्रकार त्रासदी द्वारा मानव मन के दु:ख भाव-

---

१- डा० रामचन्द्र वर्मा : भारतीय-काव्य शास्त्र , पृष्ठ २४० ।

निवृत्ति से सम स्थिति हो जाने का नाम सुख है। विरेचन सिद्धान्त की धर्म सम्बन्धी व्याख्या के अनुसार बाह्य विकारों द्वारा आन्तरिक विकारों की शान्ति है। काव्यात्मक व्याख्या के अनुसार मानसिक सन्तुलन और कलात्मक परिस्कार है।

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार अतृप्त वासनाएं अवचेतन मन में भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। मनोविज्ञान का दूसरा भी विचार है कि मानव मन का कोई भाव न एकान्ततः सुखमूलक है और न ही दुःखमूलक। अर्थात् किसी भी भाव को शुद्ध भाव नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ- उत्साह में शोक और करुण में राग विद्यमान है। राम और रावण के प्रति क्रोध में सीताहरण, रूप दुःख सम्मिलित है। यहां यह बात विचारणीय है कि रसवादियों की अपनी दृष्टि में श्रृंगार, हास्य, वीर तथा अद्भुत रसों का आह्लाद तथा करुण, रौद्र, बीभत्स आदि भयानक रसों का आह्लाद एक रूप नहीं होगा। श्रृंगार और करुण का आनन्द निश्चित रूप से एक नहीं हो सकता।

जब हम किसी के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं तो दुःख की हानि तो होती है परन्तु उसमें सन्तोष का भाव छिपा रहता है जो उस दुःख के भाव को आच्छादित कर देता है।

एक अन्य विश्लेषण दूसरों के दुःख को देखकर आत्म दुःख से दुखी न होने की भावना है। दूसरे के दुःख में सांत्वना प्रकट करते समय अन्य व्यक्तियों के दुःख की चर्चा का भी यही रहस्य है। करुणा प्रधान नाटकों के प्रति समाज की रुचि एवं प्रवृत्ति अतृप्त वासनाओं की सन्तुष्टि के अवसर प्राप्ति की सुविधा है। इस प्रकार हमारे विचार से रस सुखात्मक न होकर सुख-दुःखात्मक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रस लोकोत्तर अवश्य है परन्तु अलौकिक नहीं, वह इस लोक का है और लौकिक विषयों से सम्बंधित है। यह एकान्त सुखमूलक नहीं सुख और दुःख का समन्वय है। अतः रस लोक सम्बद्ध होने के कारण लौकिक होने पर भी लोकोत्तर है।

वीर रस

रस प्रक्रिया की सामग्री :-

अभी तक हमने रस क्या है ?` और ` रस निष्पत्ति में मूल भाव क्या है` इसके बारे में विस्तृत चर्चा की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि रस सुख और दु:ख की समन्वयात्मक सम-दृष्टि है। रस लोकोत्तर अवश्य है परन्तु अलौकिक नहीं। अब प्रश्न पैदा होता है कि इस रस-स्थिति तक सामाजिक कैसे पहुंचते हैं। रस प्रक्रिया के इन सहायक तत्वों का विशद विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

भरतमुनि का रस निष्पत्ति से सम्बंधित सिद्धान्त सूत्र है-" विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पति: ।" इस प्रकार रसाभिव्यक्ति के साधन चार हैं। भाव, विभाव; अनुभाव और संचारी भाव। भाव के दो भेद हैं-- १- स्थायी, २- संचारी ।

स्थायी भाव सहृदय के अन्त:करण में वासना रूप में नित्य विद्यमान रहने वाला, अविरुद्ध तथा विरुद्ध भावों से तिरोहित न किया जा सकने वाला मनोभाव है। वह और भावों को अपने में उसी तरह आत्मसात कर लेता है जैसे समुद्र अपने में गिरने वाली सभी नदियों के पानी को ग्रहण करता है। जिस प्रकार दूध खटास के योग से दही में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार स्थायी भाव विभावादि का योग होते ही रस रूप ग्रहण कर लेता है। जिस प्रकार अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु प्रकाश से दृष्टिगोचर होती है उसी तरह वासना रूप में स्थायी भाव पहले विद्यमान रहता है परन्तु वह विभावादि से अभिव्यक्ति पाता है और तब उसकी रस संज्ञा होती है। स्थायी भावों की संख्या नौ मानी गयी है। इस आधार पर निष्पन्न नौ रस हैं--- श्रृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शान्त। आगे चल कर वात्सल्य और भगवद्भक्ति का भी रस की संज्ञा दी गई।

अब हम रस प्रक्रिया में मूल वृत्ति, वृत्तिगत भाव तथा स्थायी भाव की चर्चा करेंगे जिनको हम निम्न तालिका में देते हैं:--

	मूल वृत्ति	वृत्तिगत भाव	स्थायी भाव	रस
१-	त्याग अथवा निवृत्ति की प्रवृत्ति	घृणा	जुगुप्सा अथवा निर्वेद	बीभत्स अथवा शान्त
२-	बचाव और रक्षा की प्रवृत्ति	भय	भय	भयानक
३-	नवीन वस्तुओं की अन्वेषण की प्रवृत्ति	उत्सुकता अथवा विस्मय, कौतूहल		अद्भुत
४-	प्रेम तथा यौन सम्बन्ध स्थापना की प्रवृत्ति	काम	रति	शृंगार
५-	संघ वृत्ति अथवा समाज भावना	सहानुभूति	उत्साह	दयावीर
६-	सन्तान रक्षण वृत्ति	वात्सल्य	पुत्रादि विषयक रति	वात्सल्य
७-	अहम्मन्यता की वृत्ति	अहंकार	उत्साह (गर्वस्थ्य)	वीर
८-	निर्माण की वृत्ति	सर्जनोत्साह	(कर्मरूप)	,,
९-	बलवान के प्रति आदर, अधीनता, शरणागति वृत्ति	दैन्य	भगवद्वृति	भक्ति
१०-	विफलता की स्थिति में दूसरों से सहायता की वृत्ति	दु:ख	शोक	करुण
११-	दूसरों की विकृतियों पर हंसने की वृत्ति	हास	हास्य	हास
१२-	बाधा विघ्न से जूझने की वृत्ति ।	क्रोध	क्रोध	रौद्र

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि सहृदय के मन में सदा विद्यमान रहने वाला भाव ही स्थायी भाव है। यही विभावादि से मिलकर, रस रूप धारण करता है। स्थायी भाव अन्य सभी भावों को अपने में समाहित कर ल लेता है। स्थायी भाव नौ हैंजिनको बाद में ग्यारह मान लिया गया।

वीर रस :-

वीर रस का स्थायी भाव उत्तम प्राकृतिक उत्साह होता है।[१८] किसी कार्य को करने के लिए जो स्वाभाविक विचार जागृत होता है वही उत्साह है।[१९] भानुदत्त के विचार से पूर्णतया परिस्फुट उत्साह या सम्पूर्ण शक्ति-संभूत होता है। जिस व्यक्ति में शक्ति नहीं है वह निर्बल है, उसे निराश होनापड़ता है। धैर्य तथा साहाय्य उत्साह के दो प्रमुख सहायक हैं। जो व्यक्ति धैर्य से काम नहीं करता वह बहुत समय तक उत्साह संचित नहीं कर सकता। हारते हुए योद्धा को अपनी सहायता के लिए आये हुए व्यक्ति या सैनिक को देखकर नवीन बल का अनुभव होने लगता है। इसमें नवीन शक्ति का उदय होने लगता है। साहाय्य के बिना धैर्य और उत्साह भी काम नहीं कर पाते। शक्ति के दो रूप हैं-- १- आन्तरिक शक्ति अर्थात् मनोबल , २- बाह्य शक्ति का दूसरा नाम साहाय्य है। आत्म-बल के रहते हुए भी कभी-कभी बाह्य सहायता के न होने के कारण हतोत्साहित होना पड़ता है। विद्वानों ने उत्साह के दो भेद माने हैं+- सहज और आहार्य । उत्साह को हम निम्नलिखित तालिका के रूप में रख सकते हैं।[२१]

१८- उत्साहोनाम उत्तम प्रकृति: । ना० शा० पृष्ठ ८३ ।

१९- उत्साह सर्वकृत्येषु सत्वार मानसी क्रिया- । भाव प्रकाशनम, शारदातनय।

२०- उत्साह शक्ति सम्भूतो वृत्तिरौन्नत्यनात्मिका ।
- आनन्द प्रकाश दीक्षित; रस सिद्धान्त- स्वरूप विश्लेषण , पृ०३५९।

२१- रस सिद्धान्त - स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ ३५९ ।

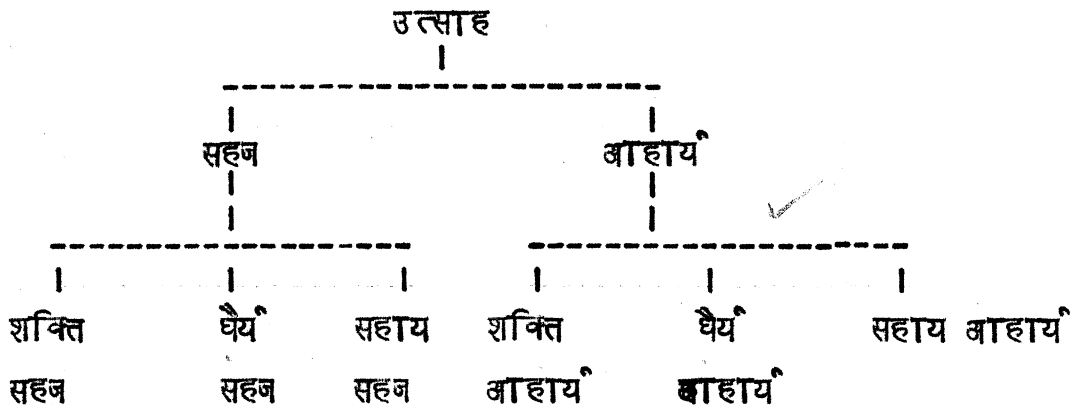

कुछ आधुनिक विद्वान् `अमर्ष` तथा `साहस` को ही वीर रस का स्थायी भाव मानते हैं, परन्तु निन्दा, अपमान आदि के कारण पैदा होने वाला आनन्द से शून्य मात्र धैर्य या साहस उत्साह का स्थान नहीं ले सकता है।

भरतमुनि ने अविषाद, शक्ति, धैर्य, शौर्य तथा त्यागादि को वीर रस के विभाव माना है।[२२] हेमचन्द्र ने नयादि को विभाव, शौर्यादि को अनुभाव तथा धृत्यादि को व्यभिचारी भाव माना है।[२३] नयादि से उनका अभिप्राय यह है कि प्रतिनायक के प्रति नीति, विनय, असंमोह, अध्यवसाय, बल, शक्ति, प्रताप, प्रभाव, विक्रमादि से है। अनुभाव में शौर्य, धैर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य और त्याग आदि रखे गये हैं। धृति, स्मृति, उग्रता, गर्व, मति-आवेग तथा हर्षादि को संचारी माना ह गया है। नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने वीर के अभिनय की दृष्टि से बल, पराक्रम, न्याय, यश तथा तत्व-निश्चय को प्रमुख माध्यम माना है।[२४] पराक्रम का अर्थ है शत्रु पक्ष पर आक्रमणकरने की सामर्थ्य, बल का अर्थ है सैन्य शक्ति अर्थात् सेना, धन-सम्पत्ति

२२- नाट्यशास्त्र : पृष्ठ ८३ ।

२३- काव्यानुशासन, अ० २, सूत्र १४, पृष्ठ ११७ ।

२४- नाट्यशास्त्र, श्लोक ११८ ।

आदि तथा न्याय का अर्थ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना है। यश का अर्थ स्वयंसिद्ध है, शौर्य, यश-लाभ करना आदि। तत्व का अर्थ वस्तु स्थिति का पूर्णरूपेण ज्ञान है। ये सभी गुण यदि किसी व्यक्ति में हों, तभी वह वीर कहलाने का अधिकारी है।

वीर रस को प्रमुख तीन रसों में माना गया है। इस विषय पर बहुत लम्बे समय तक वाद-विवाद हमारे विद्वानों में रहा है कि शान्त, श्रृंगार तथा वीर रस में से कौन सा रस रस-राज है। स्वयं भरतमुनि ने श्रृंगार, रौद्र और बीभत्स रस के साथ वीर रस को भी मूल रस की संज्ञा दी है।

वीरता मात्र युद्ध में बल, पराक्रम तथा यश-लाभ के लिए किये गये उद्यम तथा साहसिक कार्यों में नहीं है। अपितु हमारे यहाँ वीरता को बहुत विशाल अर्थ दिये गए हैं। इसीलिए युद्धवीर के साथ दानवीर, दया वीर तथा धर्मवीर की परिकल्पना भी की गई है। आचार्य विश्वनाथ ने यही चार भेद माने हैं। यद्यपि अन्यत्र, जैसे महाभारत आदि में वीर के और बहुत से प्रकार बतलाए गए हैं, तो भी हमारे विद्वान् इन्हीं चार प्रकार के वीरों पर सहमति प्रकट करते हैं। इन्हीं के आधार पर हमारे यहाँ कतिपय नामों को याद भी किया जाता है, जैसे दानवीर करण, दयावीर भगवान् महावीर, धर्मवीर शिवाजी, युद्ध वीर महाराणा प्रताप आदि। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि ये प्रकार-भेद मात्र अध्ययन की सुविधा हेतु हैं, आवश्यक नहीं कि एक वीर में किसी एक ही प्रकार का समावेश हो। इसके विपरीत एक ही वीर में समय-समय और परिस्थिति के अनुकूल ये चारों रूप दर्शनीय हैं। राम युद्ध में धनुष्बाण-बाणलेकर बल-पराक्रम दिखलाते हैं, तो वे युद्ध-वीर हैं, अपनी जीती हुई लंका वापिस करते हैं तो दान-वीर हैं, दु:खी मानवता का भार हरण करने के लिए ताड़िका आदि को दण्ड देने हेतुकृषि जनों का उद्धार करते हैं तो उनका दया-वीर अधिक सामने आता है। अस्तु !

इन सब में वीर रस का स्थायी-भाव `उत्साह` बराबर बना रहता है। उत्साह ही दया, दान, धर्म और युद्ध का मूल है। इसके बिना वीरत्व के किसी भी रूप की कल्पना नहीं की जा सकती। वास्तव में आधुनिक काल में कर्मवीर, विरही वीर, सत्याग्रही वीर आदि के जो नाम दिये गए हैं, उन के मूल में `उत्साह` का भाव ही परिनिहित है। मनुष्य में जितने भी परोपकार, सेवा, त्याग, दान, दया, कर्म आदि गुण हैं, उन सब में वीरता का पुट मिलता है। साहस, लगन, कर्मशीलता को ही यहाँ उत्साह का पर्याय मान लिया जाता है, तभी वीर के अन्यान्य भेदों की बात अग्रसर की जाती है। परन्तु यदि इस विषय में गहन चिन्तन किया जाए तो सर्वथा सुस्पष्ट हो जाए गा कि साहस संलग्नता और कर्मशीलता को ही उत्साह की संज्ञा देना समीचीन नहीं है। संलग्नता एवं कार्यशीलता को तो रति आदि मनुष्य-कर्मों के मूल में भी देखा जा सकता है और अन्यान्य कुकर्मों में भी। अत: स्पष्ट है कि इन सब कर्मों को वीरत्व की कोटि में नहीं रखा जा सकता। ऐसा करना बाल की खाल उतारने के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जाना चाहिए।

रस का सम्बन्ध सहृदय से जोड़ा जाता है। अत: वीर व्यक्ति में मात्र उत्साह का होना ही पर्याप्त नहीं है, वीर रस की तभी निष्पत्ति होगी यदि उससे पूर्णतया रसास्वादन होता है। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निष्कर्ष रूप में कहते हैं--" इससे प्रकट है कि सहृदय पुरुषों के हृदय में प्रसुप्त भाव ही रस का रूप धारण करते हैं, जब वे विभावादि के द्वारा व्यंजित किए जाते हैं। किसी के हृदय में भाव का व्यक्त होना वस्तुत: उस भाव की अनुभूति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए इस बात को हम और संक्षेप स्पष्ट रूप से यों कह सकते हैं कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के प्रदर्शन द्वारा भाव की अनुभूति श्रोता या दर्शक के हृदय में रस रूप में उत्पन्न होती है। रस विभाव-अनुभावादि के संयोग से उसी प्रकार उत्पन्न होता है जिस प्रकार दूध और मट्ठा या जमावन के मिश्रण से दही उत्पन्न होता है।"[२५]

२५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रस-मीमांसा, पृष्ठ ३४३ ।

वीर, करुण और रौद्र :-

वीर रस के भेदों में दयावीर, नानवीर आदि की गणना करने के प्रश्न पर भी हमारे विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद रहा है। भानुदत्त[२६] ने दयावीर के विषय में आपत्ति की है और कहा है कि उसका अंतर्भाव करुण में ही क्यों नहीं मान लिया जाए ? किसी के प्रति हृदय में करुणा उत्पन्न होगी, तभी तो उसके प्रति दया का भाव जागृत होगा। इसका उत्तर डा० आनंद प्रकाश दीक्षित बहुत ही तर्क सम्मत भाषा में देते हुए लिखते हैं--" तथापि करुणा और करुण रस दोनों भिन्न हैं। करुण रस का स्थायी भाव शोक है और दयावीर का स्थायी उत्साह है। अतएव दोनों में सम्बन्ध मानना उचित नहीं है।[२७] अत: करुणा और करुण-रस में स्पष्टतया भेद करना होगा। डा० नगेन्द्र इसे ' करुण के अर्थ का अत्यन्त विस्तार' मानते हैं। वे करुण-रस में ही शेष सभी रसों की स्थिति मानने के पक्ष में नहीं हैं। वे भवभूति के ' एको रस: करुण एव' पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं--" यहाँ पर भी शास्त्र की दृष्टि से यह आक्षेप किया जा सकता है कि उत्साह और क्रोध में तो चित्त द्रवित न होकर सफीत होता है, फिर भी व्यापक दृष्टि से उत्साह और क्रोध के मूल में, अप्रत्यक्ष रूप से मानव-संवेदना की प्रेरणा मानी जा सकती है। दूसरे के रागद्वेष से प्रभावित होना काव्य-रस का मूलाधार है--- इसी का नाम संवेदना या सहृदयता है। यह करुण के अर्थ का अत्यन्त विस्तार है, जहाँ वस्तुत: करुण का वैशिष्ट्य भी नष्ट हो जाता है।"[२८]

इसी तरह रौद्र रस तथा वीर-रस में आलम्बन, उद्दीपन तथा संचारी भाव की समानता होते हुए भी कुछ असमानताएं हैं। दोनों के आलम्बन शत्रु हैं, दोनों के उद्दीपन शत्रु की चेष्टाएं हैं, उग्रता, अमर्ष तथा आवेग आदि

२६- रस-तरंगिणी, पृष्ठ ४०-४१ ।

२७- रस-सिद्धान्त , स्वरूप विश्लेषण, पृष्ठ ३६६ ।

२८- रस-सिद्धान्त , पृष्ठ २६२ ।

संचारी भाव भी दोनों में समान हैं। किन्तु वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है और रौद्र रस का क्रोध। क्रोध की स्थिति यद्यपि युद्धवीर के मूल में अन्तर्निहित है। वीर रस में सहृदय की दृष्टि दो विषयों पर रहती है, एक प्रतिनायक पर, दूसरी आश्रय के असाधारण कर्म पर। इसके विपरीत रौद्र रस में सहृदय की दृष्टि प्रतिनायक पर ही रहती है। आश्रय के कर्म पर नहीं। वीर रस में शत्रु को देखकर आश्रय के मन में उत्साह उत्पन्न होता है, कर्म में आनन्द की उमंग दिखाई पड़ती है। क्रोध में आनन्द की उमंग पैदा नहीं होती। इसी तरह जहां रौद्र में क्रूरता का अंश बराबर बना रहता है, वीर रस में ऐसा नहीं होता। वीर रस में युद्ध लड़ा जाता है तो उसका भी एक औचित्य रहता है, उसकी कोई सीमा रहती है, कुछ नैतिक अंकुश रहता है, मगर रौद्र रस में औचित्य, सीमा और अंकुश के लिए कोई स्थान नहीं है।[२९]

रस-प्रक्रिया (भाव, अनुभाव, विभावादि) :-

आचार्य विश्वनाथ ने वीर रस को अन्य काव्य रसों में सर्वोत्तम और श्रेष्ठ माना है। इसमें स्थायी-भाव उत्साह देवता महेन्द्र के समान है, और इस का रंग सुवर्ण के समान होता है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन-विभाव। युद्ध के सहायक (धनुष्टा, सैन्य आदि) का अन्वेषणादि इसका अनुभाव होता है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क रोमांचादि इसके संचारी भाव हैं।[३०]

हमने ऊपर विचार किया है कि वीर रस के प्रमुख चार भेद हैं-- दानवीर, दयावीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर। इन सब का स्थायी भाव तो उत्साह ही है, क्योंकि ये एक ही भाव की भिन्न-भिन्न रस-दशाएं हैं, स्वतन्त्र भाव नहीं हैं। इसके भेदों के अनुरूप यह उत्साह क्रमशः त्याग का उत्साह

२९= बटेकृष्ण, वीर रस का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ २०-२१ ।

३०= डा०उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य , पृष्ठ ६-७ ।

दया का उत्साह, धर्म के प्रति उत्साह और युद्ध के प्रति उत्साह कहा जाएगा। इसी तरह इनके आलम्बन विभावों में भी किंचित् भेद पाया जाता है। दान-वीर का आलम्बन दान के पात्र हैं, धर्म वीर में धर्म, धार्मिक शास्त्र तथा धर्म के प्रतीक व चिन्ह आदि उसके आलम्बन हैं, दयावीर में दया के पात्र तथा युद्ध वीर में शत्रु-पक्ष तथा क्रोध आदि आलम्बन हैं। इसी प्रकार से उद्दीपन भेद भी कुछ अन्तर से इन्हीं भावों के अनुरूप ढल जाते हैं यथा, दानवीर में दान-पात्रों के श्रेष्ठ गुण, धर्मवीर में यज्ञ, व्रत, पूजा, अर्चना आदि अनुष्ठान, दया वीर में दीनावस्था, तथा युद्धवीर में शत्रु-पक्ष का बल-पराक्रम, यश-गौरव आदि उद्दीपन विभाव हैं। संचारी भावों में दान वीर के हर्ष, गर्व, मति आदि धर्मवीर के धैर्य, मति, शान्ति आदि, दयावीर के धैर्य, गाम्भीर्य, मति आदि और युद्ध वीर के गर्व, तर्क, वाक्-पटुता, स्मृति, आदि संचारी भाव हैं।

इस चर्चा में हमने देखा है कि मूल रूप से इन भेदों का स्थायी भाव आदि एक ही हैं, मगर भाव-भेद की दृष्टि से वीर-रस के ही स्थायी, विभाव, अनुभाव तथा संचारियों में भी किंचित भेद हो गया है। अत: हम देखते हैं कि रस-प्रक्रिया में भाव की स्थिति केन्द्रिय है। वीर रस की निष्पत्ति में स्थायी भाव `उत्साह` ही है। इस रस का आलम्बन शत्रु है, उद्दीपन शत्रु का बल-पराक्रम है, गर्वोक्ति अनुभाव है और धृति, गर्वोक्ति आदि संचारी हैं। इन सब के समुचित सम्बन्ध से ही वीर रस की स्थिति उत्पन्न होती है अथवा वीर रस की निष्पत्ति होती है।

काव्य का मूल निवेश

(क) अनुभूति और आत्म-साक्षात्कार की दिशाएं :-

मनुष्य जन्मजात सामाजिक प्राणी है। वह अपने भावों को मुखरित करना चाहता है। वह काव्य के माध्यम से अथवा कला के माध्यम से

अपने मनोभावों को स्थायित्व देना चाहता है। उसकी यही इच्छा काव्य की जननी है। अपने मनोभावों को प्रकट करना और सहृदयों से तादात्म्य स्थापित करना ही काव्य तथा कला का मूलाधार है। इन्हें क्रमश: अनुभूति तथा अभिव्यक्ति कहा गया है। संस्कृत में इसकी तुलना काव्य-पुरुष से करते हुए अनुभूति को आत्मा और अभिव्यक्ति को शरीर-तत्व की संज्ञा दी जाती रही है।

काव्य के इन्हीं दो तत्वों को आज चार तत्वों के रूप में स्वीकार किया गया है, यथा राग या भाव, कल्पना, बुद्धि तथा शैली तत्व। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो राग, कल्पना और बुद्धि अनुभूति तत्व के अन्तर्गत ही आते हैं तथा शैली तत्व को अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। अत: ये चारों तत्व अनुभूति तथा अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम हैं। तो भी आज के आलोचना-शास्त्र में इन्हीं चार तत्वों को काव्य में मूल तत्व माना जाता है। इन्हीं का विवेचन हमें यहां करना है:

भाव तत्व :-

हमने रस के विवेचन में देखा है कि ये भाव ही हैं जो स्थायी विभाव, अनुभाव तथा संचारी आदि का रूप धारण करते हुए रस-दशा को प्राप्त होते हैं। रस ही काव्य का मूल तत्व है। कवि इस रसास्वादन के लिए अपनी रचना है, श्रोता इस रसास्वादन के लिए रचना पढ़ता या सुनता है। इस बाह्य जगत से हमारा एक प्रकार का रागात्मक सम्बन्ध है। मन में संचित कोई भाव अनुकूल आलम्बन पाकर रस के रूप में परिणत हो जाता है।

काव्य के भाव उच्च, सुन्दर तथा उदात्त होने अपेक्षित हैं। निम्न असुन्दर तथा अनुदात्त भावों के लिए काव्य में कोई स्थान नहीं है। इसके अतिरिक्त भावों में गहनता, विविधता, मार्मिकता तथा सबसे बढ़कर लोकोत्तर नैतिकता तथा गाम्भीर्य भी होना चाहिए।

कल्पना तत्व :-

भावों की अभिव्यक्ति में विशेष सहायक तत्व कल्पना है। कल्पना द्वारा ही अमूर्त को मूर्त, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष, साधारण को असाधारण तथा नीरस को सरस बनाया जा सकता है। कवि में सामाजिक की अपेक्षा यही एक तत्व शायद सबसे अधिक विकसित होता है। `जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि` की उक्ति भी तो इसी सत्य को प्रकट करते हेतु प्रचलित हुई है। काव्य में कल्पना का महत्व स्वीकार करते हुए भी यह अवश्य कहना होगा कि इसका सम्बन्ध भावाभिव्यक्ति में सहायक ही सिद्ध होना चाहिए। कल्पना का स्वतन्त्र रूप से कोई भी औचित्य नहीं है।

बुद्धितत्व तत्व :-

काव्य का प्रमुख तत्व तो भाव ही है। काव्य मूलत: भाव-जगत से ही सम्बंधित माना जाता है। भाव-जगत में भी बुद्धि का गमन तो होता ही है, इस दृष्टि से बुद्धि भावों की अनियन्त्रित गति को एक दिशा देती है, यह भावनाओं के घोड़े को सरपट नहीं दौड़ने देती, कोरी भावुकता से बचा कर उसे जीवन के गम्भीर, वास्तविक तथा सार्थक धरातल पर लाती है।

यह बुद्धि तत्व ही है जो भावों को मौलिकता का प्रदान करता है, कवि के दृष्टिकोण को एक सुनिश्चित दिशा देता है। मौलिकता, उदात्तता, परोक्षता, सीमितता तथाउपयोगिता आदि को बुद्धि तत्व के विशेष गुण स्वीकार किया गया है। बुद्धि तत्व जहां भावों को निश्चित दिशा देता है, वहां भावों के निर्वाचन, उनकी संगति और स्थिति का नियामक तत्व भी है। इसके अतिरिक्त यह कल्पना को एक मर्यादा एवं संयम प्रदान करता है। सबसे बढ़कर यह भावों और कल्पना में परिष्कार भी लाता है।

शैली तत्व :-

मानसिक सृष्टि के बाह्य उपकरण का नाम शैली है। काव्य

का बाह्य पक्ष भाषा और वर्णन-पद्धति है। शैली शब्द का उद्गम संस्कृत के `शील` शील शब्द से माना जाता है।[३१] वैसे शैली अंग्रेज़ी के `स्टाइल` का रूपान्तर है, भारतीय धारणा नहीं। प्लैटो के अनुसार--"जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है।"[३२] गेटे इस सम्बन्ध में कहता है, "किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है।"[३३] ऐसे ही प्रसिद्ध विद्वान् वैस्टफील्ड के अनुसार "शैली विचारों की वेश-भूषा है।"[३४]

वास्तव में किसी भी लेखक की शैली का ज्ञान उसके कार्य-व्यवहार से होता है और उसकी अभिव्यक्ति क्रिया-कलापों में होती है। अत: शैली व्यक्ति के क्रियात्मक रूप का ही नाम है। शैली के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं---

क: शैली विचारों का सात्त्विक रूप है।
ख: शैली एक विशिष्ट वर्णन-पद्धति है।
ग: शैली आत्मा की मुखाकृति है।
घ: शैली विचारों की वेश-भूषा है।
ङ: यह लेखक के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखती है।
च: शैली ही व्यक्ति है, तो शैली व्यक्तिगत होती है।

अब हम शैली या अभिव्यक्ति के अन्यान्य अंगों-उपांगों का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

३१- डा० नगेन्द्र : हिन्दी काव्यालंकार, भूमिका, पृष्ठ ५४।
३२- उद्धृत - हिन्दी साहित्य कोश, (डा०) धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादक)
३३- देखिए `दा न्यू डिक्शनरी आव थाट, टी० एडवर्ड (सम्पादक)।
३४- -वही-।

भाषा :-

भाषा और शैली का पारस्परिक सम्बन्ध गहन और अटूट है। भाषा ध्वनि संकेतों का वह समूह है जिसके माध्यम से हम अपने विचारों अन्य लोगों तक सफलता सहित प्रेषित करते हैं। भाषा एक ऐसा माध्यम है कि जिसे विचारों की अपेक्षा कम महत्व नहीं दिया जा सकता। साधारण विचार भी उत्तम भाषा तथा उपयुक्त शब्द-चयन तथा शब्द-योजना द्वारा असाधारण होने का भ्रम पैदा कर सकता है। इसी तरह असाधारण विचार भी भाषा के अधिकार के बिना लुप्त हो जाने की सम्भावना करता है।

भारतीय आचार्यों ने वर्ण्य के अनुरूप भाषा के दो रूप माने हैं-- स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति। आचार्य दण्डी[३५] ने स्वभावोक्ति, के तीन लक्षण बतलाए हैं--

क: स्वभावोक्ति वस्तु के साक्षात् अथवा यथार्थ व्यवस्था को प्रदर्शित करती है।

ख: जाति क्रिया, गुण काव्य का नैसर्गिक वर्णन ।

ग: शास्त्रों और काव्यों में इसका प्रयोग होताहै।

इसके विपरीत जब किसी विषय को अवास्तविक या अलौकिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तब वह अतिशयोक्ति कहलाता है। वैसे अतिशयोक्ति को अलंकारों की जननी कहा गया है। काव्य में इसे एक दोष भी स्वीकार किया जाता है और विशेषता भी। संस्कृत आचार्यों भामह, दण्डी, रुद्रट और अभिनव गुप्त आदि द्वारा अतिशयोक्ति को ` लोक-सीमा का अतिक्रमण , लोक मर्यादा का उल्लंघन, लोक का उल्लंघन तथा लोकोत्तर माना गया है। ^ सामान्यत: इसके (लोकोत्तरता) दो अर्थ लगाये जा सकते हैं---

१- जन साधारण (लोक) की भाषा से भिन्न भाषा का प्रयोग या

३५- काव्यादर्श : परिच्छेद २, श्लोक ८ ।

२- लोक-व्यवहार में प्रचलित रूप से भिन्न रूप में भाषा का प्रयोग।[३६] वास्तव में पूर्व हो या पश्चिम, भाषा के स्तर पर दो मानदण्ड माने गए हैं। एक जन-सामान्य की सामान्य भाषा , जिसमें जीवन की सरलता और शुचिता होती है, दूसरी साहित्य की भाषा, जिसमें काव्य-वैशिष्ट्य होता है। इसी दृष्टि से हम भाषा के दो रूप-- सामान्य और विशिष्ट - मान सकते हैं। अंग्रेजी के डिमिट्रियस ने कहा है--" उसमें शब्द, अर्थ, एवं वाक्य-रचना सम्बन्धी अनेक गुणों और अलंकारों का समन्वय होता है।[३७] इसी तरह डा० नगेन्द्र ने कालरिज के मत को उद्धृत करते हुए बताया है कि उसमें चित्रमयी और मूर्ति विधायिनी भाषा का प्रयोग अधिक होता है।[३८]

शब्द-शक्तियाँ :-

काव्य की जितनी भी प्राचीन परिभाषाएं उपलब्ध हैं उन सब में शब्द और उसके अर्थ के ` अदोष` तथा` गुण सहित` आदि पर विशेष बल दिया गया है। जैसे काव्य-प्रकाश में कहा गया है कि ` दोषरहित, गुण सहित और अलंकृतकभी-कभी अनलंकृत भी शब्द तथा अर्थ को काव्य कहते हैं।[३९] इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ का वह वाक्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध है-ही--" वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" ( रसयुक्त वाक्य ही काव्य है)। इसी तरह पंडितराज जगन्नाथ के प्रसिद्ध महावाक--` रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्` को कौन नहीं जानता। इन सभी में शब्द और उसके अर्थ पर विशेष बल दिया गया है। अर्थ के बिना शब्द की कोई सार्थकता नहीं है। " अर्थ तीन प्रकार का होता है-- वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। और इन अर्थों का बोध कराने वाली शक्तियाँ

३६- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त : साहित्य विज्ञान, पृष्ठ २४८ ।

३७- डिमिट्रियस, आन स्टाईल, पृष्ठ २०५ ।

३८- डा० नगेन्द्र : भारतीय काव्य-शास्त्र, पृष्ठ १४३ ।

३९- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन: क्वापि । काव्यप्रकाश १, सूत्र १ ।

क्रमश: अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहलाती हैं।"[४०]

अभिधा :-

" शब्द में मुख्य अर्थ का बोध (संकेत संग्रह) कराने वाली शक्ति। ' संकेत ' प्रथम और प्रमुख अर्थ को कहते हैं। इस शक्ति की बौद्धिक प्रक्रिया का नाम शक्तिग्रह या संकेतग्रह है।"[४१] इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं कि भाषा की जिस शक्ति से शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का बोध होता है, वह अभिधा शक्ति कही जाती है।

लक्षणा :-

" मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के कारण जिस श शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसे लक्षणा कहते हैं।"[४२]

इससे पता चलता है कि अभिधामूलक अर्थ या मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ तक पहुंचने के लिए हमें मुख्यार्थ की बाधा, रूढ़ि या प्रयोजन तथा मुख्यार्थ के लक्ष्यार्थ से सम्बन्ध तक की यात्रा करनी पड़ती है। यह भी ध्यान रखना होगा कि लक्षणा में मुख्य अर्थ से और कोई भिन्न अर्थ नहीं निकलता, बल्कि मुख्य अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उसके लक्षण के आधार पर संक्षिप्त शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

व्यंजना-शक्ति :-

काव्य-प्रकाश के कर्ता आचार्य मम्मट का मत इस विषय में दर्शनीय है--" अनेक अर्थ वाले शब्द का जब संयोगादि के द्वारा वाचकत्व नियत हो

४०- रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य), रस मीमांसा, पृष्ठ ३०४ ।

४१- -वही- पृष्ठ ३०४ ।

४२- रामदहन मिश्र, काव्यदर्पण, पृष्ठ २१ ।

जाता है, तब भी उस शब्द के किसी और अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है, वैसे ज्ञान के उत्पन्न करने वाले व्यापार का नाम व्यंजना है।"[४३]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं--" व्यंजना शक्ति ऐसे अर्थ को बतलाती है जो अभिधा, लक्षणा या तात्पर्यवृत्ति द्वारा उपलब्ध नहीं होता। व्यंजना व्यापार का नाम ध्वनन, गमन, और प्रत्यायन भी है।"[४४]

उपर्युक्त परिभाषाओं से व्यंजना के स्वरूप का निदर्शन नहीं होता। इसका बोध प्राप्त करने के लिए हमें व्यंजना की कतिपय विशेषताएं देखनी चाहिए :--

क: अभिधा में एक अर्थ विद्यमान रहता है। लक्षणा में एक अर्थ " अन्य अर्थ " में परिवर्तित हो जाता है, वही व्यंजना में एक साथ दो अर्थों का बोध करवाती है।

ख: लक्षणा में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ परस्पर सम्बंधित रहते हैं, व्यंजना में दोनों अर्थ एक दूसरे से असम्बद्ध और स्वतन्त्र रहते हैं।

ग: व्यंजना शक्ति अलग-अलग शब्दों और वाक्यों के स्थान पर प्रसंग में लक्षित होती है।

अब हमने यह देखना है कि रस के साथ शब्द-शक्तियों का क्या सम्बन्ध है। तथा रस के साथ किस शब्द-शक्ति का उपयोग शास्त्र-सम्मत है ? इसके लिए तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों का तुलनात्मक विवेचन करना होगा। इन शब्द-शक्तियों को श्रोत तथा अर्थ की दृष्टि से देखा जाए तो अभिधा का सम्बन्ध सामान्य, स्थिर एवं निश्चित या रूढ़ अर्थ होता है, जबकि लक्षणा और व्यंजना का अर्थ असामान्य, अस्थिर या अनिश्चित से सम्बन्ध रखता है।

४३- काव्य प्रकाश , पृष्ठ २८ ।

४४- रस-मीमांसा, पृष्ठ ३१२ ।

इस सम्बन्ध में ही हमें `ध्वनि` पर भी विचार करना होगा। ध्वनि शब्द का व्यवहार चार पृथक्-पृथक् अर्थों में होता है--

१- जहां व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ से अतिशयता हो, अर्थात् उत्तम काव्य,
२- जिसके द्वारा व्यंग्यार्थ व्यंजित हो, अर्थात् प्रधान कव्यंय ,
३- रसादि की व्यंजना,
४- व्यंजित रसादि । [४५]

स्पष्ट है कि काव्य में ध्वनि के पहले अर्थ को ही स्वीकार्य किया जा सकता है, क्योंकि जो उत्तम काव्य है, वही सर्वोत्तम है। उत्तम काव्य में ही व्यंग्यार्थ की अतिश यता या विशिष्टता है। यह विशिष्टता ही है जो काव्य को रसात्मक बनाती है और व्यंग्यार्थ इसमें और भी सहायता करता है। अत: रस का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यंग्यार्थ से ही माना जाएगा।

` नैयायिक और मीमांसक व्यंजना को पृथक वृत्ति नहीं मानते। अलंकार-शास्त्री इसे स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य वृत्त्यिों के कार्य कर चुकने पर इसी वृत्तिसे रस, अलंकार या वस्तु व्यंग्यार्थ के रूप में व्यंजित होते हैं।` [४६]

मुहावरे लोकोक्तियां :-

भाषा में इनका भी एक विशिष्ट स्थान है। इनके प्रयोग से भाषा में एक नवीन तथा विशिष्ट परिवर्तन आ जाता है। ` लोहे के चने चबाना` एक मुहावरा है जिसका अर्थ है लोहे के चने खाना परन्तु लोहे के चने तो होते नहीं अर्थात् इसका लक्ष्यार्थ कठिन कार्य करना हुआ। ` जलते पर नमक छिड़कना` का भाव जले हुए भाग पर नमक छिड़कना से आराम नहीं आयेगा,

---

४५- रस मीमांसा, पृष्ठ ३१८ ।
४६- -वही- पृष्ठ ३३१ ।

इसका अर्थ हुआ दुखी को और दुखित करना।

लोकोक्तियाँ मुहावरों की अपेक्षा कुछ विस्तृत होती हैं। इसमें कोई न कोई विचार पूर्ण रूप से दिया जाता है जैसे ' न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी ' किसी काम के लिए ऐसा बहाना कि वह काम ही असम्भव हो जाए। इसी तरह ' अध जल गगरी छलकत जाये ' भाव आधा भरा हुआ पानी का घड़ा हमेशा छलकता रहता है। इसका लाक्षणिक अर्थ है अल्प ज्ञान हमेशा ही प्रदर्शन करता है।

अत: मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी अपने लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का द्योतन कराने के कारण सहृदय को रसास्वादन में विशेष सहायता करते हैं। जिनके कारण काव्य अनुशीलन में इनका विशिष्ट महत्व है।

रीति एवं गुण-योजना :-

शैली के लिए हमारे यहाँ रीति, प्रवृत्ति, वृत्ति, शैली, गुण, कविमार्ग, आदि अनेक पद प्रयुक्त किये गए हैं, मगर इनमें ' रीति ' शब्द इन सबमें अधिक प्रचलित रहा है। एक विचार के अनुसार रीति शब्द ' रास' धातु से निसृत है। जिसका अर्थ गति, चाल या प्रवाह है। एक अन्य मतानुसार रीति की व्युत्पत्ति संस्कृत के ' री' (री - रीयते) धातु से मानी जाती है। 'री' का अर्थ है-- बहना, उमड़ना, टपकना आदि। संस्कृत के शब्द-कोष के अनुसार ' रीति ' के अनेक अर्थ हैं--- १- गति या बहाव, २- नदी या श्रोत, ३- रेखा या सीमा , ४- मार्ग, पद्धति, प्रणाली, ५- ढंग, नियम आदि । किन्तु हिन्दी इसके प्रारम्भिक तीन अर्थ लुप्त हो गए हैं तथा अन्तिम दो वर्गों के अर्थ-मार्ग, पद्धति, प्रणाली, ढंग, नियम आदि-- ही प्रचलित हैं।[४७]

क्या ये सभी शब्द वे अर्थ दे सकते हैं जो शैली के किए जाते हैं?

४७- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यविज्ञान, पृष्ठ २१७ ।

क्या ` रीति` को ` शैली` का पर्यायवाची शब्द मान लेना चाहिए ? इस विषय में हिन्दी के विद्वान में तीन मत प्रचलित हैं--- १- दोनों में समानता अवश्य है, मगर वे समानवाची नहीं हैं, २- एक अर्थ वाले दो एक-से शब्द, ३- आंशि रूप से समानार्थक हैं। पहले मत में आचार्य सीता राम चतुर्वेदी तथा पं० करुणापति त्रिपाठी का नाम लिया जा सकता है-- कुछ लोगों में यह भ्रम पैदा हो गया है कि भारतीय साहित्य-शास्त्र में आया ` रीति ` पद ही आधुनिक साहित्य में शैली के संकल्प का सूचक है।[४८]

इसके विपरीत डा० बलदेव उपाध्याय और मुन्शी गुलाब राय प्रभृति आलोचक दोनों को एक मानते हैं--- ` शैली शब्द का अर्थ कुछ संकुचित हो गया है और ` स्टाईल` का अर्थ प्रसार पा गया, अब दोनों शब्द लगभग पर्याय रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। संस्कृत शब्द रीति, शैली और `स्टाईल` दोनों से अधिक व्यापक है।[४९]

परन्तु डा० नगेन्द्र दोनों का मध्य-मार्ग अपनाते हैं और कहते हैं कि ` रीति और शैली का वस्तु-तत्व एक है, भारतीय रीति में व्यक्ति-तत्व को मूलत: झुठलाया नहीं जा सकता, तो भी वर्तमान रूप में शैली में व्यक्ति तत्व का जितना महत्व है, वैसा भारतीय रीति में कभी नहीं रहा। अत: रीति और शैली के वर्तमान रूप में व्यक्ति-तत्व की मात्रा का अन्तर अवश्य है।[५०]

रीति पर संस्कृत काव्य-शास्त्र में व्यापक विचार किया गया है। दण्डी का यह प्रिय विषय रहा है। उनसे पूर्व आचार्य भरतमुनि ने रीति की बात तो की है, मगर उसे ` प्रवृत्ति ` का नाम दिया है। धरती के नाना-वेश, भाषा और आचार-विचारों का निर्णय करने वाली प्रवृत्ति होती है।[५१]

४८- करुणापति त्रिपाठी : शैली, पृष्ठ ११९-२० ।
४९- गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृष्ठ २३३ ।
५०- डा० जेकब पी० जार्ज: आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार, पृ० ३१।
५१- उच्यते पृथिव्यां नाना देश भाषाचारवारता: स्थापयतीति प्रवृत्ति: ।

उन्होंने भाषा के लिए ही नहीं, अपितु हर प्रकार के रहन-सहन को भी प्रवृत्ति कहा है। आचार्य दण्डी इसे `कवि-मार्ग` की संज्ञा देते हैं। कवियों के कहने के मार्ग या ढंग अनेक होते हुए भी उनमें कुछ साझे गुण होते हैं। कवि या व्यक्ति भी वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। इसी तरह शैलियों (मार्गों) के भी वर्ग होते हैं। विभिन्न कवियों में उन मार्गों के जितने भेद हो सकते हैं, वे वर्णन नहीं किये जा सकते, जैसे गन्ने, दूध और गुड़ की मिठास में अन्तर अवश्य होता है, मगर उनका वर्णन स्वयं सरस्वती भी नहीं कर सकती।"[५२]

वामन ने विशिष्ट पद-रचना को रीति कहा है और विशेष का अर्थ गुण किया है।[५३] इसका अर्थ हुआ कि गुण सम्पन्न वह पद-रचना, जो शब्द और अर्थ के सौन्दर्य से युक्त हो, रीति है। आनन्दवर्धन ने इसे कवि गमन-मार्ग कहा है और `वचनों` का चयन तथा उ व्यवस्था को रीति माना है।[५४]

इस बात का निर्णय हम आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में इस प्रकार करेंगे--" रीति और शैली शब्दों में बहुत सीमा तक समानार्थकता है। रीति और शैली का जो विषयगत सरूप शुरू में प्रचलित था उसमें तो कोई विशेष अन्तर है ही नहीं, आधुनिक युग में कवि की शब्द-भाषागत व्यवस्था के विवेचन में भी रीति और शैली शब्द एक अर्थ में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इससे आगे बढ़कर जब कवियों और लेखकों की व्यक्तिगत और स्वभाव-गत विशेषताओं के विषय में विचार शैली में होने लगा तो रीति शब्द का प्रयोग कम होता गया, चाहे `रीति` शब्द में वह सामर्थ्य है कि हम चाहें तो कवियों-लेखकों की रूपगत व्यक्तिगत विशेषताओं तक रीति का प्रयोग कर सकते हैं।[५५]

५२- उद्धृत, गुलाब राय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृष्ठ २३४ ।

५३- विशिष्टा पद रचना रीति: (काव्यालंकार)।

५४- वचन विन्यास क्रमोरीति: ।

५५- रीति और शैली निबन्ध से ।

काव्य शैली या रीति या कवि-मार्ग की चर्चा संस्कृत आचार्यों से लेकर अब तक बराबर होती रही है, जिन्हें भारतीय आचार्यों ने `गुण` कहा है और पाश्चात्य विद्वानों ने गुण (क्वालिटी) कहा है। गुणों की चर्चा परिचय की अपेक्षा भारतीय काव्य-शास्त्र में अधिक हुई है। वामन ने स्पष्ट कहा -- काव्य शोभाया: कर्तारो धर्मा: गुणा:"[५६] अर्थात् काव्य में शोभा उत्पन्न करने वाले धर्म गुण हैं। डा० नगेन्द्र ने `गुण` की परिभाषा इस प्रकार की है," गुण काव्य के उन उत्कर्ष साधक तत्वों को कहते हैं जो मुख्य रूप से रस के और गौण रूप से शब्दार्थ के नित्य-धर्म हैं।"[५७]

परन्तु इन सब परिभाषाओं से गुण के विशेष स्वरूप का बोध नहीं होता साधारणतया `गुण` शब्द का प्रयोग किसी भी पदार्थ की अन्तरंग सूक्ष्म विशेषता के लिए किया जाता है। गुण सारे पदार्थ में व्याप्त रहता है। इन गुणों के अभाव में कोई भी भाषा शैली चाहे वह विज्ञान में प्रयुक्त हो या साहित्य में अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकती।

गुण-योजना का क्षेत्र बहुत व्यापक है, इसी व्याप्ति शब्दार्थ से लेकर काव्य तक बताई गई है। गुणों का सम्बन्ध काव्य में स्थायी होती है। आचार्यों ने गुणों को अचल, नित्य और स्थायी माना है।

गुणों का क्या लक्ष्य है ? गुणों का लक्ष्य है काव्य में निर्दोषता बनाये रखना । काव्य में स्वच्छता, स्पष्टता, शुद्धता आदि का संचार करना परन्तु वे कोई नये सौन्दर्य का संचार नहीं करते। वे सौन्दर्य को रक्षा करते हैं किन्तु उसके उत्पादक नहीं माने जा सकते।

काव्य में गुणों के विषय में हमारे विद्वान् एकमत नहीं हैं, भरतमुनि ने इनकी संख्या दस मानी है-- श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदार, कान्ति।[५८] पश्चात् आनन्दवर्धन

५६- हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति: सं० डा० नगेन्द्र, भूमिका, पृष्ठ ६१ ।
५७- -वही- पृष्ठ ६३ ।
५८- -वही- पृष्ठ ६७।

मम्मट, विश्वनाथ प्रभृति आचार्यों ने गुणों की संख्या केवल तीन-- प्रसाद, माधुर्य और ओज-- तक ही सीमित कर दी थी।[५९]

पश्चिमी विद्वानों में भी इस विषय पर सहमति है। अरस्तु ने प्रारम्भ में मुख्यत: दो गुणों-- औचित्य और स्पष्टता का उल्लेख किया है जबकि परवर्ती आचार्यों ने इनके अतिरिक्त सामंजस्य, समास, सजीवता, उदात्तता, शक्ति, शोभा, सुकुमारता, प्रवहणशीलता, मसृणता, अलंकृति, कांति, सरलता, श्रुति माधुर्य आदि गुणों की भी चर्चा की।[६०] एफ० एल० ल्यूकस ने स्पष्टता, संदिप्तता, विविधता, सरलता, व्यंग्यात्मकता, मधुरता, शुद्धता, शक्तिमत्ता, अलंकृति आदि गुण माने हैं।[६१]

इन सब गुणों में से शुद्धता, स्पष्टता और संदिप्तता सर्वमान्य गुण हैं। शेष सभी गुण इन्हीं में आ जाते हैं। रसास्वादन के लिए सर्वथा उपयुक्त गुण कान्ति है। अत: शुद्धता, स्पष्टता और संदिप्तता के साथ कान्ति-- इन गुणों में ही काव्य के सभी गुण आ जाते हैं। रस सम्प्रदाय को छोड़कर अन्य सभी सम्प्रदायों ने अपने अपने मत को प्रमुखता देते हुए क्रमश: अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य को ही काव्य की आत्मा सिद्ध करने का प्रयास किया है। वस्तुत: उनकी उक्तियों से ही प्रमाणित हो जाता है कि अलंकार, रीति, ध्वनि आदि सभी तत्व काव्य में सौन्दर्य, शोभा, चारुता, रमणीयता आदि के उत्पादन के साधन मात्र हैं--उनका साध्य तो सौन्दर्य, शोभा, चारुता, रमणीयता आदि का उत्पादन है। वस्तुत: ये सभी शब्द भी एक ही तत्व की विभिन्न विशेषताओं के द्योतक हैं, अत: इन सब के स्थान पर किसी एक सामान्य संज्ञा का प्रयोग करते हुए इनमें समन्वय स्थापित किया जा सकता है। हमारे विचार से जिस वस्तु में हमें आकर्षित

५९- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त : साहित्य-विज्ञान, पृष्ठ २७३ ।

६०- हिन्दी काव्यलंकार सूत्रवृत्ति: (सं०) डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १०० ।

६१- एफ०एल० ल्यूकस, स्टाईल, पृष्ठ ५० ।

करते की क्षमता होती है उसी को हम सुन्दर मानते हैं, वही हमें चारु प्रतीत होता है और उसी में हमारी प्रवृत्तियाँ रमती हैं। अत: सौन्दर्य, शोभा, चारुता, रमणीयता आदि के स्थान पर केवल `आकर्षण शक्ति` का प्रयोग करते हुए कहा जा सकता है कि साहित्य की आत्मा या मूल गुण उसकी आकर्षण शक्ति है।[६२]

बिम्ब-योजना :-

काव्य के अनुशीलन में बिम्ब, प्रतीक व चिन्हों आदि का विशेष महत्व है। बिम्ब शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के इमेजरी (Imagery) शब्द के पर्याय के रूप में प्रचलित हुआ है। `इमेज` का अर्थ `मूर्ति` होता है और `इमेजरी` का शाब्दिक अनुवाद `चित्रावली` हुआ। इसका अर्थ शब्द-चित्र (word-picture), रूप, आकृति और प्रतिमा आदि भी किया जाता है। हमारे मत की पुष्टि अंग्रेज़ी के विद्वानों की परिभाषाओं से भी होतीहै--

(क) "अपने सामान्य रूप में, यह एक शब्द-चित्र है।"[६३]

(ख) बिम्ब को वस्तु की वास्तविक प्रतिलिपि मात्र न मानकर, ऐन्द्रिक विशेषता पर ध्यान केन्द्रित करने वाला विचार है।[६४]

वास्तव में बिम्ब एक ऐसा शाब्दिक विवरण होता है जो हमारे मानस बिम्बों को उदित करता है। चित्रात्मकता, शब्द-रूपात्मकता, ऐन्द्रिकता, भावोत्पादन तथा आरोपन का अभाव आदि पाँच लक्षण बिम्ब के लिए माने गए हैं।

६२- गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्य-विज्ञान, पृष्ठ ४२-४३ ।

६३- "In its simplest form, it is a picture made out of words." C. D. Lewis, Poetic Image. P.18.

६४- Image must not be conceived as material copy of a thing but merely as the content of thought in which attention is centered on sensory quality of some sort." J.E. Dawney, Creative Imagination, P.112

बिम्ब के भेद :-

कार्य की दृष्टि से बिम्ब के दो भेद किये गए हैं, जैसे-- १- अलंकरणात्मक बिम्ब (डैकोरेटिव इमेज), २- क्रियात्मक बिम्ब (फंकशनल इमेज)[६५] प्रभाव तथा उपयोगिता के आधार पर भी दो भेद हैं-- सजीव बिम्ब (The living image) तथा (२) खण्डित बिम्ब (The broken image)[६६]। बिम्बों के भेद तो और भी किये गए हैं, मगर सब से अच्छा वर्गीकरण मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर किया ही है, क्योंकि बिम्ब मुख्यत: ऐन्द्रिक वस्तु ही है। इस आधार पर (१) दृश्य-बिम्ब, (२) गन्ध-बिम्ब, (३) स्पर्श बिम्ब, (४) नाद बिम्ब आदि नाम देना ही अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

प्रतीक-योजना :-

` प्रमाणिक हिन्दी शब्द कोश ` में प्रतीक के अर्थ हैं-- चिन्ह, लक्षण, आकृति, किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई वस्तु। अंग्रेज़ी श बद-कोषों में भी इनसे मिलते-जुलते अर्थ प्रतीक के पर्याय (सिम्बल) के किए गए हैं। शिपले ने इसे ` एक विशेष प्रकार का संकेतात्मक शब्द ` कहा है।[६७]

प्राय: देखा गया है कि बिम्ब और प्रतीक को एक ही अर्थ में प्रयुक्त कर लिया जाता है। मगर दोनों मे पर्याप्त अन्तर है-- (१) बिम्ब प्रस्तुत विषय के रूप का बोध कराते हैं जबकि प्रतीक केवल प्रभाव-साम्य उत्पन्न करते हैं। २- बिम्ब एकार्थ हैं, प्रतीकों में दो अर्थ एक साथ निहित होते हैं, ३- बिम्ब का लक्ष्य चित्रात्मकता है जबकि प्रतीकों में गुण-धर्म का अंकन होता है, ४- बिम्ब स्वाभाविकता पर आधारित होते हैं, जबकि प्रतीक वक्रोक्ति

६५- रोबिन स्कैल्टन , दा पोयटिक पैटर्न, पृष्ठ ६३ ।

६६- सी०डी० लीवस, दा पोयटिक इमेज, पृष्ठ ६० ।

६७- शिपले, डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिट्रेरी टर्मज, पृष्ठ ४०५ ।

एवं चमत्कार पर आधारित होते हैं। (५) बिम्बों के माध्यम से ऐन्द्रिक आकर्षण उत्पन्न होता है जबकि प्रतीकों का लक्ष्य बौद्धिक आकर्षण को उद्दीप्त करने का रहता है।[६८]

अप्रस्तुत योजना :-

प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत सामग्री का जुटाना ही अप्रस्तुत योजना है। इसके अनुसारी किसी मूल वस्तु की साज-सज्जा के लिए बाहर से अन्य चित्र लिए जाते हैं। इसके लिए प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की प्रत्यक्ष उपस्थिति आवश्यक है। चरणकमल के स्थान पर केवल `कमल` का प्रयोग हो तो `कमल` अलंकार न बनकर चरण का प्रतीक बन जाएगा। अलंकार और वक्रोक्ति का भी गहरा सम्बन्ध है, परन्तु दोनों में अन्तर है। अलंकार में प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत का समावेश होता है तो वक्रोक्ति में प्रस्तुत को ही वक्र भंगिमा के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

अनेक ग्रीक और रोमानी आचार्यों ने शैली को अधिक महत्ता देते हुए अलंकृति को ही काव्य का सर्वप्रमुख तत्व स्वीकार किया है।

डिमिट्रियस महोदय ने लिखा है--"प्रायः विषय तो स्वभाव से अनाकर्षक एवं विकर्षक होता है लेखक के द्वारा उसमें दीप्ति आ जाती है।"[६९] यह दीप्ति मुख्यतः शब्दालंकारों, अर्थालंकारों एवं विभिन्न अन्य गुणों के प्रयोग से आती है।

होमर ने भी अलंकारों के बल पर अपने काव्य को आकर्षक और रोचक बनाया था।[७०] अलंकारों का जितना अधिक चयन होगा अभिव्यक्ति

६८- गणपतिचन्द्र गुप्त: साहित्य विज्ञान, पृष्ठ ३२५ ।

६९- "Often the subject matter is naturally unattractive and even repulsive but a touch of brightness is added by the writer." On Style, P.134.

७०- On Style, P.108.

में उतनी ही दक्षता प्राप्त होती है।

काव्य की द्युति, दीप्ति, कान्ति, शोभा और आकर्षण की सृष्टि अप्रस्तुत योजना से सम्भव हो सकती है।

पाश्चात्य और भारतीय आचार्यों के अनुसार अलंकारों को आठ प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है-- १- शब्दालंकार, २- सादृश्य-मूलक, ३- विरोधमूलक, ४- श्रृंखलामूलक, ५- तर्क न्यायमूलक, ६- वाक्य-न्यायमूलक , ७- लोक-न्यायमूलक, ८- गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक।

मगर व्यवहार में आज दो ही प्रकार के अलंकारों की कल्पना की जाती है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। इनमें से अर्थालंकारों की योजना करने वाला ही काव्य शब्दालंकार-युक्त काव्य से श्रेष्ठ माना जाता है।

छन्द-योजना :-

छन्दोबद्ध रचना का नाम ही कविता है। उसकी सरसता के लिए भावों के तारतम्य के साथ संगीतात्मकता, सुव्यवस्था तथा क्रमानुकूलता भी आवश्यक है। ये सारे गुण छन्दोबद्धता में आ जाते हैं। वास्तव में काव्य और कविता में भी यही अन्तर है। काव्य को जब छन्दबद्ध कर दिया जाता है, तभी वह कविता बनती है। छन्द-योजना कविता की सर्वप्रमुख विशेषता है।

छन्द शब्द `छद्` से बना है। यास्क ने `छन्दसि छादनात` (नि ७।११) लिखकर छन्द में छद् धातु ध्वनित की है। छद् धातु का अर्थ होता है प्रसन्न करना, झुसलाना, आच्छादन करना, बाँधना, आह्लादित करना इत्यादि। इन्हीं अर्थों के आधार पर छन्द शब्द का अर्थ सामान्यतया प्रसन्न करने वाली वस्तु, इच्छा, आच्छादन, बन्धन आदि लिया जाता है।[७१] छन्द शब्द बहुत समय तक वेद के लिए भी प्रचलित रहा है।

७१- डा० गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग २, पृ पृष्ठ १ ।

महर्षि पिंगल के छन्द-शास्त्र के कारण इसका नाम ही पिंगल शास्त्र पड़ गया। हिन्दी के रीति काल के छन्द शास्त्र की ओर हमारे आचार्यों का विशेष ध्यान गया। केशवदास की छन्दमाला, मतिराम का `छन्दसार पिंगल`, भिखारीदास का `छन्दार्णव, विशेष महत्व रखते हैं। आधुनिक काल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में जगन्नाथ प्रसाद भानु रचित `छन्द प्रभाकर,` रामनरेश त्रिपाठी की `पद रचना` आदि।

छन्द शब्द के प्राचीन अर्थ कुछ भी रहे हैं, साहित्य में यह एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। एक परिभाषा इस प्रकार है--

मतवरण गति यति नियम अन्तहिं समता बन्द ।
जा पद रचना में मिलें भानु भनत स्वच्छन्द ।।[७२]

अर्थात् जिस कविता में मात्राओं और वर्णों के क्रम, गति और यति के नियम तथा चरणान्त की समता पाई जाती है, उसे छन्दबद्ध कविता कहते हैं। इस परिभाषा से छन्द के तीन अंग निश्चित होते हैं--- १- मात्राओं तथा वर्णों का विशेष क्रम, २- गति और यति के विशेष नियम, ३- चरणान्त की समता।

छन्द में मात्रा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। लघु वर्ण से सम्बन्ध मात्रा लघु तथा दीर्घ से सम्बद्ध दीर्घ मात्रा कहलाती है। मुख से निकलने वाली छोटी से छोटी ध्वनि, जिसके खण्ड न किये जा सकें, वर्ण कहलाती है। वर्ण, स्वर तथा व्यंजन-- दो प्रकार के होते हैं। इन्हें क्रमशः लघु , गुरु भी कहा जाता है। गति का सम्बन्ध लय से है, हर छन्द की एक विशेष लय होती है। उसी के अनुरूप गति का नियोजन होता है। ध्वनियों के आरोह-अवरोह के मध्य में विराम को यति कहते हैं। पद छन्दों की हर पंक्ति को कहते हैं इसी के चरण

७२- जगन्नाथप्रसाद भानु, छन्द प्रभाकर ।

भी कहते हैं। चरणान्त का दूसरा नाम अन्त्यानुप्रास है।

छन्द और लय :-

लय या कर्ण-रस यदि कविता में नहीं तो उसे कविता नहीं कहा जा सकता। दोनों में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लय के बिना छन्द की गति ही नहीं मानते--" छन्द वास्तव में बन्धी हुई लय के, भिन्न-भिन्न ढाँचों का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है।"[७३] डा० त्रिगुणायत ने लय की परिभाषा इस तरह की है--" नाद की सुसंगति और सुषमामय अभिव्यक्ति को लय कहते हैं। हमारे यहाँ नाद का बहुत बड़ा महत्व माना गया है। उसे ब्रह्म का पर्यायवाची तक कहा गया है---- लय केवल बाह्य वस्तु नहीं है। वह हमारी आत्मा की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है। जैसी जिसकी आत्मा होती है, वैसा ही उससे उद्भूत लय का स्वरूप होगा।"[७४]

छन्द-भेद :-

छन्दों के दो भेद हैं-- १- मात्रिक या जाति, २- वार्णिक या वृत्त। जहाँ मात्राओं के आधार पर लय तथा संगीत की योजना की जाती है, उसे मात्रिक और जहाँ वर्णों के आधार पर की जाती है उसे वार्णिक छन्द कहते हैं।

प्रमुख मात्रिक छन्दों में से तोमर, चौपाई, दोहा, सोरठा, रोला हरिगीतिका, कुण्डलिया, छप्पय, लावनी, वीर या आल्हा आदि हैं।

वार्णिक भाग में प्रमुख छन्द हैं-- विद्युन्माला, इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र-वज्रा, भुजंगप्रभात, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूल-विक्रीड़ित, सवैया, (४८ भेदोपभेद सहित) तथा कवित्त।

आधुनिक काव्य में श्रीखण्ड छन्द(ब्लैंक वर्स) तथा मुक्तछन्द (फ्री वर्स) दो रूप अधिक प्रचलित हैं। श्रीखण्ड में मात्राओं की गिनती सम रहती है।

७३- काव्य में रहस्यवाद, पृष्ठ १२५ ।

७४- डा० गोविन्दनारायण त्रिगुणायत: शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, भाग पृष्ठ २ ।

परन्तु उनके चरणांत में अनुप्रास नहीं रहता। यह प्राय: मध्य में यति पर रहता है। मुक्तछन्द में गीत पद्धति तथा निच्छन्द रचना के दो प्रकार आते हैं।

(ख) ऐतिहासिक परिवेश एवं शोध सीमा

वीर रसात्मक काव्य : विकास के चरण

१- संस्कृत साहित्य में वीर-रस का स्वरूप :-

भारतीय साहित्य का उद्भव स्थान संस्कृत साहित्य को ही माना जाता है। इसको हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं---

१- वैदिक काल,

२- लौकिक संस्कृत काल।

प्रथम काल में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय काल में महाकाव्य, पुराण तथा नाटकादि को समाविष्ट किया जा सकता है।

१- वैदिक काल :-

ऋग्वेद भारतीय साहित्य का मूल स्रोत है। इसमें अनेक वीर-कथाएं भरी पड़ी हैं। इसके एक सूक्त में वृत्सु वंश के राजा सुदास की विजय का वर्णन है तो दूसरे सूक्त में दिवोदास द्वारा साम्बर को पराजित करने का चित्रण है। ऋग्वेद में और भी अनेक सूक्त इस प्रकार के हैं, परन्तु वीर रस का सर्वप्रथम वर्णन हमें ` शतपथ ब्राह्मण ` में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्र की वीरता की भी प्रशंसा को वर्णन यत्र-तत्र मिलता है।

प्रसिद्ध जर्मन लेखक विंटरनित्ज ने लिखा है--` उनकी (वेद के प्राचीन भाष्यकारों की) दृष्टि से यदि इन्द्र एक महान् शक्तिशाली अधिदेवहै

तो वृत्र उतना ही भयानक एक दैत्य है जिसे वे श्यामवर्ण आदिवासियों के रूप में भी चलता फिरता पाते हैं, क्योंकि इन्द्र के ये युद्ध वेदों में केवल वृत्र के साथ ही नहीं अन्यान्य दैत्यों के साथ भी होते हैं। (इन्द्र और वृत्र के) ये संग्राम जैसे आर्यों और अनार्यों के बीच हुए युद्ध की ही एक प्रतिच्छाया हों। इन्द्र, सो, योद्धाओं का, वीरों का देवता है और ऋग्वेद में आई उसकी कम-से-कम २५० स्तुतियों में यदि हम उसका कुछ सही सजग रूप पा सकते हैं तो इसी एक युद्ध-प्रिय देवता के रूप में ही।[७५]

ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरुरवा और उर्वशी का आख्यान (शतपथ ब्राह्मण), तथा देवासुर संग्राम की कथा (शतपत ब्राह्मण एवं तैतिरेय ब्राह्मण) आदि कथाओं में वीर भावना का पुट मिलता है।

महाभारत में वीर काव्य के गायक `सूत` और `मागधों` द्वारा राजाओं की प्रशंसा का वर्णन कई स्थानों पर उपलब्ध होता है। वे लोग राजाओं की वीरता का वर्णन करते थे। इनकी कविता में सरसता भी थी। दीर्घ काल तक इस वीर-काव्य की मौखिक परम्परा चलती रही। स्वामी शंकराचार्य वृहदारण्यक के भाष्य में `पुराण` शब्द की व्याख्या करते हुए लिखते हैं--- `वेदों में उर्वशी और पुरुरवा के कथोपकथन आदि सृष्टि के प्रक्रिया चरित वृत्तान्त का नाम पुराण है।` इससे सिद्ध होता है कि पुराणों की कथाएं वीर भावना से ओतप्रोत थीं।

लौकिक संस्कृत में रामायण और महाभारत का विशिष्ट स्थान है। रामायण आदर्शवादी वीर काव्य है। इसमें इन्द्र का रूप राम में और वृत्र का रूप रावण में परिवर्तित हो गया। महाभारत में शुद्ध मानव-संघर्ष की कहानी है परन्तु अर्जुन की वीरता कृष्ण के बिना अधूरी है। वैसे रामायण को करुण रस का काव्य और महाभारत को शान्त रस का काव्य कहा गया है,

---

७५- प्राचीन भारतीय साहित्य: विंटरनित्ज, (अनुवादक- लाजपतराय), पृष्ठ ६३ ।

परन्तु उसमें युद्धों के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलते हैं।

रामायण में आदर्शवाद का अधिक सहारा लिया गया है तथा महाभारत में धरा की बात की गयी है। रामायण में वीरत्व का उल्लास और वीर-रस का परिपाक होता है, मगर वह भक्ति रस में कुछ अधिक ही दब गया है। इसके विपरीत ` महाभारत ` नाम ही कलह, युद्ध और विवाद का है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस विषय में ठीक कहते हैं--- " आर्य सभ्यता के विकास में जब देव-दानवों का (अर्थात् देव और असुर संस्कृतियों का) संघर्ष हो रहा था तब महर्षि वाल्मीकि ने देव पक्ष का विजयघोष करने वाले रामायण महाकाव्य का निर्माण किया । वेद व्यास ने द्वापर के अन्त में कुरुक्षेत्र संग्राम का स्मारक महाभारत ग्रन्थ रचा, जो कलियुग का अग्रदूत, अत्यन्त दुखांत सृजन है। महाभारत के गीत प्रकरण में महाकवि ने आँसू पोंछने की चेष्टा न की होती तो उसका अध्ययन करने का साहस एक व्यक्ति भी न कर सकता।----- रामायण और महाभारत के महाकाव्य हमारे विचार से, जगत्तत्व के दो विपरीत चक्र हैं, विपरीत होते हुए भी समान, तराजू के तुले हुए पलड़ों की भाँति। ये दोनों चक्र क्रमश: आशा-निराशा, विकास-ह्रास और उत्पत्ति प्रलय के हैं जो दोनों विपरीत किन्तु सम हैं। सम न होते तो सृष्टि चक्र न चलता। रामायण सृष्टि की आशा है, महाभारत निराशा।"[७६]

महाकवि कालिदास का साहित्य में अमर स्थान है परन्तु वीर रस का उत्तम वर्णन करने मे वे असफल ही सिद्ध हुए हैं तो भी ` रघुवंश ` में आए सभी राजा लोग आदर्श पात्र हैं जो वीर भी हैं।

अर्थ गौरव की दृष्टि से महाकवि भारवि की रचना का संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उनके ` किरातार्जुनीय ` में द्रौपदी युधिष्ठर

७६- नन्द दुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य- २० वीं शताब्दी, पृष्ठ ४२।

के उत्साह और क्रोध को जागृत करने के लिए अत्यन्त तीव्र शब्दों में कहती है---

अथ दामामेव विरस्तविक्रम -
श्चिराय पर्याप्तमिदं सुखस्य साधनम्
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्माकार्मुकम्
जटाधरस्सम्जुहुधीह पावकम् ।। [७७]

यदि पराक्रम रहित आप दामा को ही शाश्वत् सुख का साधन समझते हैं तो विष्णु के चिह्न धनुष को छोड़कर और जटा बढ़ा कर अग्नि में आहुति दिया करें।

इस तरह प्रलय के समान भयंकर गाण्डीवधारी अर्जुन किरात से युद्ध करने जा रहे हैं। उनके बाणों के कारण दिशाएं विदिप्त हो जाती हैं, सूर्य प्रभावहीन हो जाता है, वायु व्याकुल हो उठताहै और पर्वतों के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान हो जाती है। इस प्रकार अर्जुन का भयंकर युद्धक रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है---

दिश: समूहन्निव विदिपन्निव
प्रभारवेराकुलयन्निवानिलम् ।
मुनिश्चचाल सायकाल दारुणान्
जाति सशैलां चलयन्निवे बुमि: ।

संस्कृत नाटकों में भी स्थान-स्थान पर वीर रस का सुन्दर वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से भट्टनारायण कृत `वेणी संहार` को रख सकते हैं। प्रथम अंक में भीम क्रोध से सहदेव की ओर देखकर कहते हैं---

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपा -
दुद्:शासन स्य रुधिरं पिबाम्युरस्त:

७७- उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृष्ठ ११ ।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु
संधि करोतु भवतां नृपति: पणेन ।।[७८]

अर्थात् , मैं रण में क्रुद्ध होकर सौ कौरवों का विनाश न करूंगा और न दु:शासन के हृदय का रक्त ही पान करूंगा, अपनी गदा से सुयोधन की दोनों जंघाओं को भी चूर्ण न करूंगा। युधिष्ठर पण से सन्धि कर लें। वीर रस में गर्वोक्तियों का भी अपना विशिष्ट स्थान है जिसका वर्णन यत्र-तत्र मिलता है। उक्त उदाहरण वास्तव में भीम की गर्वोक्ति ही तो है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में वीर रसात्मक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं-- १- धर्म क्षेत्र में प्रतिष्ठित वीरों का गुण करते समय स्वत: ही वीरत्व का भी वर्णन, २- राजागणों के पारस्परिक युद्धों का वर्णन है, ३- गर्वोक्ति परम्परा का अच्छा खासा प्रचलन हो गया था। तो भी यह बात भी स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में किसी एक कवि को रस का कवि नहीं कहा जा सकता। अन्यान्य काव्यों एवं नाटकों में प्रसंगानुकूल रूप से ही वीर रस के छींटे यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं।

२- हिन्दी काव्य में वीर-रस का स्वरूप :-

(क) वीर-गाथाकालीन हिन्दी काव्य :-

सम्राट हर्षवर्धन के राज्यकाल में ही लोक भाषाओं को महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था। सातवीं और आठवीं शताब्दी में बौद्ध तथा जैन धर्म में अवनति आरम्भ हो गयी थी और शाक्त धर्म का बोल-बाला हो गया थाजिसमें शिव पूजा को बल दिया गया था। गांधार, कश्मीर तथा पंजाब से लेकर मथुरा तक बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रभुत्व स्थापित हो गया था, कालांतर में इसकी भी दो शाखाएं हो गई थीं-- एक महायान और दूसरी वज्रयान।

शास्त्रीय कला अपने पूर्ण शिखिर को प्राप्त कर चुकी थी, जिस में गुप्त काल की ओजपूर्ण भावना का नाम-निशान न था। वैदिक काल से गुप्त

तक अनेक गणराज्यों की स्थापना हुई परन्तु उनमें कोई भी टिका नहीं। कोई कानून-व्यवस्था न थी। जाति-जाति का बोलबाला हो गया था। मन्दिरों की ललित कलाओं पर अधिक बल दिया जाता था और उन पर विपुल धन-राशि व्यय की जाती थी।

यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जैसी विचारधारा का प्रचलन होता है, साहित्य भी उसी का प्रतिनिधित्व करता है। इस काल में सिद्धों की कविता उपलब्ध है और इनकी संख्या चौरासी बताई जाती है। इनमें सिद्ध सरहपा तथा `कण्हपा` का विशेष स्थान है। इन दोनों का समय ७६६ से ८८६ ई० तक माना जाता है और `कण्हपा` का ८०६-८८६ ।[७६]

ये कवि रहस्यवादी थे और इनकी भाषा को विद्वानों ने `संध्या-भाषा` की संज्ञा दी है। आगे चलकर इन सिद्धों की विचारधारा ने सन्त कवियों की वाणियों में शुद्ध, सात्विक एवं प्रेमाभक्ति की सहज साधना के रूप में विकास किया।

हिन्दी साहित्यकारों ने सं० १०५० से १४४० ई० तक के समय को `वीर गाथा काल` कहा है।[८०] परन्तु इस समय में जो रचनाएं रखी गई हैं, उनके समय के बारे में मत-भेद है। `पृथ्वीराज रासो`, `खुमान रासो`, अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं, जो प्रतियां मिलती हैं, उनमें भी संस्करण और प्रकाशक के अनुरूप स्पष्ट अन्तर पाया जाता है।

इस सन्दर्भ में अपभ्रंश साहित्य पर भी एक दृष्टि डालना असंगत

६- ७८- उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृष्ठ ११ ।

७६- -वही- पृष्ठ १५ ।

८०- (क) अगर चंद नाहटा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक ३, १६६८।

(ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३२ ।

न होगा । यद्यपि इस काल की रचनाओं में श्रृंगार, वीर और शान्त रस का प्राधान्य है तथापि शान्त रस का निरूपण सर्वाधिक है। इस काल में अनेक महापुरुषों की चरित कथाएं मिलती हैं परन्तु सबमें प्रेम का ही वर्णन है वीर रस की स्थिति आंशिक रूप में है। वीर रस की जो भी अभिव्यक्ति हुई है उसके लिए मुक्त छन्द अपनाया गया है।

शारंगधर का `हम्मीर रासो` वीर रस का श्रेष्ठ काव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में कुछ उदाहरण देते हैं जो उन्हें प्राकृत डिंगल सूत्र में देखने को मिले।[८१]

इस काल की भाषा अपभ्रंश है जो कि हिन्दी के अधिक निकट है। इसका प्रभाव डिंगल और पिंगल भाषाओं पर भी पड़ा है।

वीर काव्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में रासो ग्रन्थों का विशुद्ध स्थान है। इनमें कुछ मुक्तक हैं और कुछ प्रबन्ध काव्य। रासो शब्द की व्युत्पत्ति `रसायण` शब्द `से मानी जाती है।[८२] काव्य में उद्गम `रास` शब्द से हुआ। जैन कवियों ने भी अनेक रास ग्रन्थों की रचना की है। `रास` एक अत्यन्त प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है, जिसका सम्बन्ध कृष्ण लीला में है। इस समय में जो नाटक रचे गए अथवा छन्द शास्त्र, वहां `रास` शब्द का ही प्रयोग मिलता है। तत्कालीन हिन्दी काव्यधारा पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। रासो में हिन्दी और अपभ्रंश की दोनों रचनाएं मिलती हैं। इन में बीसलदेव रासो, खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो प्रमुख हैं।

रासो ग्रन्थों में सर्वप्रथम दलपतिविजय कृत `खुमान रासो` का उल्लेख मिलता है, इसमें चित्तौड़ के खुमाजा के युद्धों का वर्णन है। श्री अगरचन्द

८१- हिंदी साहित्य का इतिहास, १८वां संस्करण, संवत् २०३८, पृष्ठ-१८.

८२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३६ ।

नाहटा ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में इसके बारे में कुछ तथ्यपूर्ण सामग्री दी है। उनके अनुसार इसमें राणा खुमाण का वर्णन विस्तृत है इसलिए इसका नाम खुमाण रासो पड़ा। इसकी भाषा राजस्थानी तथा इसके रचयिता दौलत विजय हैं जिनका दीक्षा से पूर्व का नाम दलपति था। ग्रन्थ का रचना काल सं० १७३० से १७६० के मध्य का है। इस प्रकार ` खुमान रासो ` को आदि रासो ग्रन्थ की संज्ञा नहीं दी जा सकती।[८३]

इसके अतिरिक्त बीसलदेव रासो ` तथा ` पृथ्वीराज रासो ` का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बीसलदेव के रचयिता नरपति नालह और पृथ्वी राज रासो के रचयिता चन्दबरदाई हैं। इन ग्रन्थों में वीर रस का समुचित वर्णन हुआ है। ये दोनों ग्रन्थ नि:सन्देह वीर काव्य में प्रमुख ग्रन्थ हैं।

` आल्हा खण्ड ` के रचयिता जागनिक का भी विशेष स्थान है। इसकी भाषा कन्नौजी है और इसे अवधी तथा भोजपुरी क्षेत्रों में भी गाया जाता है। वर्तमान रूप में आल्हा-खण्ड को किसी भी प्रकार ` वीर-गाथा काल ` की रचना मानना युक्ति-युक्त न होगा।[८४]

इस काल के काव्यों में वीर-रस के साथ-साथ श्रृंगार रस का भी वर्णन मिलता है। इस काव्य में राजस्थान की नारियों का भी विशिष्ट स्थान है। इस युग के राजा, सेनापति, शूर तथा वीर होते थे। सिंध में दाहिर और उनकी रानियों के युद्ध, पंजाब में अजयपाल और अनंगपाल के युद्ध, तुर्कों और अफगानों का चौहान राजाओं के युद्ध का विस्तृत वर्णन है।

भक्ति व रीति काल का वीर-काव्य :-

हिन्दी भक्ति काल और रीति काल में वीर रस परिपूर्ण

८३- नाहटा : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक ४, पृष्ठ १९९६ ।

८४- उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृष्ठ २३ ।

रचनाओं का अभाव रहा है। फिर भी हम कुछ कवियों की कृतियों को वीर रस की कोटि में रख सकते हैं। उदाहरणत: केशव का वीरसिंह देव चरित, मान का `राजविलास`, भूषण का शिव राज भूषण, लाल का `छत्र प्रकाश` सूदन का `सुजानचरित` आदि अनेक ग्रन्थ वीर काव्य सम्बन्धी मिलते हैं। परन्तु भक्ति काल के अन्त और रीतिकाल के प्रारम्भ में श्री गुरु गोबिन्दसिंह ने भक्ति रस व श्रृंगार रस के साथ-साथ प्रचुर वीर रसात्मक काव्य की सर्जना करके भारतीय जनमानस में जिस विशेष, वीरत्व, स्फूर्ति और उत्साह को जन्म दिया, उससे संकीर्णता, प्रान्तीयता तथा लिपि सम्बन्धी सीमाओं के फलस्वरूप हिन्दी जगत् अपरिचित ही रहा। फलत: प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इस उपेक्षित काव्य-धारा का मूल्यांकन करने का विशेष प्रयास है।

गोस्वामी तुलसीदास जी का `रामचरित मानस` भी एक उत्कृष्ट रचना है। उसे हम शान्त रस (या भक्ति रस) की कोटि में रख सकते हैं परन्तु कहीं-कहीं और विशेषत: युद्ध-प्रसंगों में वीर रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है। राम रावण युद्ध में राम के क्रोध का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है--

> भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोनसायक कसमसे ।
> कोदंड धुनि अति चंडसुनि मनुजाद सब मारुतग्रसे ।
> मंदोदरी उर कंपकंपति कमठ भू भूधर त्रसे ।
> चिक्करहि दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हसे। [८५]

इसी तरह तुलसीदास जी ने राम और खरदूषण युद्ध में तथा राम और रावण युद्ध में विशेषतया तथा लंका काण्ड में सामान्यत: वीर रस का अच्छा निरूपण किया है।

मध्य युग में वीर रस के सम्बन्ध में फुटकर रचनाएं भी लिखी

८५- लंका काण्ड , पृष्ठ ८२७ ।

गई हैं, जिनके रचियता प्राय: राज्याश्रित कवि ही थे। इस काल में तुर्कों के युद्ध का भी वर्णन मिलता है। इस्लाम का प्रचार हो रहा था। बहुत से लोगों को परिस्थितिवश इस्लाम अपनाना पड़ा। इनमें अनेक कवि उदय हुए, कुतुबन, मंझन, जायसी, रहीम, रसखान आदि। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना की झलक मिलती है। मगर वीर रस के दर्शन कहीं भी नहीं होते, सिवाय जायसी के `पद्मावत` में छुट-पुट उद्धरणों के ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी के आदि काल तथा वीरगाथा काल में वीर-रसात्मक सम्पूर्ण रचनाओं का सृजन होता रहा है, परन्तु भक्ति काल में यह काव्य-धारा बहुत सीमित हो गई। तथापि उनमें वीर रसात्मक सुन्दर स्थल अवश्य उपलब्ध हैं। यही अवस्था भक्ति काल की काव्य-धारा की भी है। रीति काल में कुछ कवियों को छोड़कर शेष का मन वीर-रस में उस तरह नहीं रमा जिस तरह भूषण या गुरु गोबिंद सिंह का। अत: विशुद्ध वीर-रस की दृष्टि से हम हिन्दी के किसी भी अन्य कवि की रचना प्रस्तुत नहीं कर सकते।

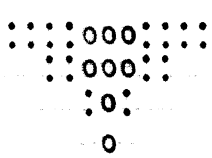

द्वितीय अध्याय

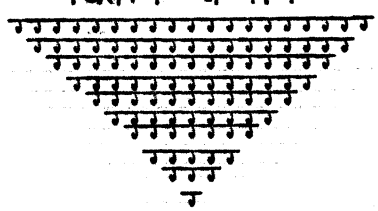

गुरु गोबिन्दसिंह: युग- परिस्थितियाँ

गुरु गोबिन्दसिंह : युग परिस्थितियाँ

राजनैतिक परिस्थितियाँ :-

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब भी होता है और प्रतिनिधि भी। वह साहित्य जो अपनी समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का अवलोकन नहीं करता, कभी भी विश्व में चिरस्थायी नहीं रह सकता। गुरु गोबिन्दसिंह जी के काव्य में इसकी झाप स्पष्ट दिखाई देती है। वे युगद्रष्टा, मनीषी, कवि एवं योद्धा थे। उन्होंने अपने काल की माँग को पहचाना था और निरीह तथा कायर प्राणियों में वीर भावना का संचार किया था। अब हम उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों पर एक दृष्टि डालेंगे जिसके फलस्वरूप गुरु जी ने अपने अनुयायियों को माला के साथ कृपाण को भी चिरसंगिनी बना दिया और उनकी नसों में उष्ण रक्त का संचार करने के लिए वीर रसात्मक काव्य की रचना की।

मुगल शासन के साथ ही सिक्ख पंथ अस्तित्व में आया। सिक्ख पंथ में जहाँगीर के समय से एक बहुत बड़ा परिवर्तन आने लगा।

सत्रहवीं शताब्दी का आरम्भ जहाँगीर के राज्याभिषेक (सन् १६०५ ई० में होता है। जहाँगीरी पंजाब की प्रथम महत्वपूर्ण घटना है गुरु अर्जुनदेव का बलिदान (सन् १६०६)। इस घटना के पश्चात् पंजाब दीर्घकाल के लिए-युद्ध-

लिए युद्ध, विप्लव, आक्रमण, लूटमार एवं उत्पीड़न का शिकार रहा। जहांगीर के राज्याभिषेक से रणजीतसिंह के राज्याभिषेक (सन् १८०१) तक शांति और सुरक्षा का एक दशाब्द भी पंजाबियों के भाग्य में न था। जहांगीर के समय में सिक्खों और मुगलों के बीच कोई युद्ध तो न हुआ, किन्तु सिक्खों द्वारा सुरक्षार्थ गढ़-रचना, सैन्य-संगठन एवं सैन्य-प्रशिक्षण आदि का श्रीगणेश अवश्य हुआ।"[१]

अकबर सब धर्मों के प्रति उदार था, इसलिए उसे अकबर महान् की उपाधि दी गई थी। जहांगीर धार्मिक दृष्टि से इतना उदार न था और उसने सिक्खों के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुनदेव को अनन्त मानसिक व शारीरिक यातनाएं दी थीं। इसके बाद शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुआ और वह धर्म के प्रति अपने पिता से भी अधिक कट्टर था। १६३२ ई० में उसने यह ढिंढोरा पिटवा दिया था कि अब आगे से नए मन्दिर नहीं बनवाए जाएंगे। गो-वध की जो मनाही अकबर के काल से चली आ रही थी, उस पर भी पाबन्दी हटा ली गई थी।[२] इसके बाद औरंगज़ेब सिंहासनारूढ़ हुआ जो कि अपनी धर्मान्धता और कट्टरता के लिए प्रसिद्ध था। वह हिन्दुओं पर कठोर अत्याचार करता था। हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य किया जाता था। धर्म न कबूल करने पर निरीह सन्तान को अपने माता-पिता के सामने मार दिया जाता था। जज़िया कर लगा हुआ था। ऐसे समय में दो ही राष्ट्र नायक थे-- एक दक्षिण में शिवाजी और दूसरे हिन्दूपति पंजाब केसरी गुरु गोबिन्दसिंह। पंजाब में मुसलमानों के विरुद्ध बदले की अग्नि अन्दर-ही-अन्दर धधक रही थी। हिन्दुओं की दीनावस्था देखकर तथा अपने पिता की क्रूर हत्या से कलबल होने के कारण गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने हाथ में तलवार धारण की। उन्होंने अपने ज़फ़रनामा में लिखा है ---

---

१ - डा० हरिभजनसिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ ६ ।

२- रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ३०८ ।

चूंकार अज़ हमह हीलते दरगुज़शत ।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त ।।[3]

इसका अर्थ है कि जब सब साधन विफल हो जाएं तो खड्ग धारण करना ही सर्वथा उचित है।

बुन्देलखण्ड में महाराज छत्रसाल बुन्देला, नारनौल के सतनामी सम्प्रदाय के वैरागी लोग, राजस्थान के वीर दुर्गादास तथा महाराजा राजसिंह और हिन्दु पद पातशाही की स्थापना करने वाले छत्रपति शिवाजी का मुग़ल शासन विरुद्ध प्रारम्भ किया गया अभियान श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी अपने शैशव, बाल्य तथा युवा काल में अवश्य सुन चुके होंगे। चारों तरफ ढाए जा रहे जुल्म-सित्म, हाहाकार तथा चीत्कार ने उनके वीरोचित उत्साह को अवश्य जगाया होगा। मगर काश्मीर के पंडितों के लिए किए गए पिता श्री गुरु तेग़ बहादुर के बलिदान ने उन्हें एक बाल-वीर-सैनिक के रूप में अग्रसर होने की भावना को बलवती किया होगा।

औरंगज़ेब ने अपने पूर्वजों को मात कर दिया। उसने सिक्खों पर अत्याकार करने शुरु किये। पंजाब में सरहिन्द का नवाब गुरु गोबिन्दसिंह का कट्टर शत्रु हो गया। औरंगज़ेब ने दीर्घ आयु प्राप्त की। उसके समय में सिक्खों के पांच गुरु-साहेबान हुए-- गुरु हरगोबिन्द, गुरु हरि राय, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेग़बहादुर और गुरु गोबिन्दसिंह।[4]

भारत में सर्वत्र भय और कायरता का राज्य था। भारतीय जनता अपने क्रूर शासकों की धार्मिक कट्टरतासे निराश हो चुकी थी। उसे कोई भी राह नहीं सूझ रहा था। ऐसे विकट और संकटाकीर्ण समय में गुरु गोबिन्दसिंह जी

३- ज़फ़रनामा श्री गुरुवाक पातिशाही १०, ।२२, पृष्ठ १३८६ ।

४- सर जादुनाथ सरकार , ए शार्ट हिस्ट्री आव औरंगज़ेब, पृष्ठ १५५ ।

ने वीरता और बल की भावना का मन्त्र भारतीय जन-जीवन में फूंका। उन्होंने जन-जागरण किया, जनता का मनोबल तैयार किया और उन्हें बाहु बल से काम लेने की शिक्षा दी। उन्होंने जनता को बताया कि डर कर कुछ नहीं बनेगा, वीर बनो और शत्रु से टक्कर लो। इसके लिए उन्होंने बाद में १६९९ में खालसा पंथ की नींव डाली। `खालसा मेरो रूप है खास` कहकर उन्होंने सेवा और त्याग की भावना के साथ-साथ उसे साहस और वीरता का जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० गोकुलचन्द नारंग के शब्दों में-- "गुरु गोबिन्दसिंह ने साधारण कृषक को अद्भुत वीर बना दिया और उसमें अत्याचारी सिंह को उसकी मांद में ललकारने और पकड़ने की शक्ति भर दी।"[५]

मध्य प्रदेश में हिन्दू राजे मुग़लों से परास्त हो रहे थे। उनके सामने मुग़लों की पराधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता न था। उस समय पंजाब में गुरु गोबिन्दसिंह जी शक्तिशाली सैन्य निर्माण और सांस्कृतिक आन्दोलन का संचालन कर रहे थे, जिसको बन्दा बैरागी ने आगे बढ़ाया परन्तु बन्दा वैरागी की मृत्यु के पश्चात् सिक्खों के दमन का कार्य तीव्रता से चलता रहा।

बहादुरशाह (१७००), फरुखसियर (१७१६), खान बहादुर(१७३५-४५), लखपतराय (१७६३) आदि ने समय-समय पर सिक्खों पर तलवार चलाने का आदेश दिया, उनके शीश और केशों के लिए बड़े-बड़े इनाम रखे गए। मुसलमानी सेना सदा ही इनका पीछा करती रहती थी, परन्तु सिक्खों ने भी इसका बराबर मुकाबला किया और अपने आपको अमर रखा। बाद में सशक्त मिसलें भी स्थापित हुईं, जिसको महाराजा रणजीतसिंह ने सुदृढ़ किया।

सिक्खों के इस सारे कार्य में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। राष्ट्र के प्रति चेतनता थी और धर्म की रक्षा करना उनका अपना धर्म

५- डा० गोकुलचन्द नारंग : ट्रांसफरमेशन आफ सिखिज़्म , पृष्ठ २६३ ।

था। देश को क्रूर आततायियों से स्वतन्त्र करने का उन्होंने बीड़ा उठा रखा था। उन्हें अपने अतीत पर गर्व था और इसके लिए प्राणों की बाज़ी लगाना ही श्रेष्ठ समझते थे।

सांस्कृतिक परिस्थितियां :-

भारत मूलत: धर्म प्रधान देश है। हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म की ही महत्ता रही है। इसकी छाप वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन, नैतिक आदर्श, राजनैतिक विधान एवं कला-कौशल में भी रही है। भारतीय संस्कृति को हम एक विशाल पेड़ की संज्ञा दे सकते हैं, जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। अनेक मतों, पन्थों, सम्प्रदायों, चिन्तन-धाराओं अथवा साधना-पद्धतियों का यहां प्रचार और विकास हुआ और कालान्तर में वे लुप्त भी हो गईं। भारतीय चिन्तन-धारा तो भी अजस्र रूप से चलती रही, विभिन्न मत-मतान्तरों का उत्थान या ह्रास इसकी मूल धारा में कोई व्यवधान न डाल सका। यही है हमारी महान् आर्य संस्कृति। वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिक्ख एवं शैव सब उसकी शाखायें हैं।

समय की गति का चक्र चलता रहता है। वह सदा एक-सा नहीं रहता। भारतीय संस्कृति ने भी अनेक आक्रमणों और आन्तरिक कलह का सामना किया, परन्तु वह मूल रूप से अविच्छिन्न रही।

भारतीय जीवन का आदर्श, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रहा है। प्रत्येक व्यक्ति, जाति, वर्ण और व्यवसाय के लिए धर्म की भावना, कर्त्तव्यों का पालन ही लक्ष्य रहा है। भगवान् कृष्ण ने धर्म की महत्ता ऐसे बतलाई है--

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजा: ।
एतत धनंजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदर: ।।[६]

६- राधाकमल मुखर्जी : भारत की संस्कृति और कला, पृष्ठ १७ ।

अर्थात् धर्म ही हमारे क्रिया-कलापों और लक्ष्यों को निर्धारण और नियन्त्रण करता है।

वैदिक युग में कर्म को ही श्रेष्ठ समझा जाता था। उपनिषदों में ज्ञान पर बल दिया जाता था। बौद्धों ने कर्म-काण्ड की भर्त्सना की और साधारण जीवन जीने का राह दिखाया। परन्तु कुछ काल उपरान्त भागवत-धर्म ने बल पकड़ लिया जिसमें ईश्वर के अवतारवाद की व्याख्या की गई। इसके फलस्वरूप मन्दिरों का निर्माण हुआ। इसमें सिद्धों, नाथों, शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, वेदान्तियों, ज्ञानमार्गियों, कर्म-काण्डियों का इतिहास भरा पड़ा है। इसी समय भारत में उत्तर-पश्चिम से इस्लाम धर्म का एक ज़ोरदार हमला हुआ। इसका सामना करने के लिए अनेक धर्म-प्रवर्त्तकों ने दर्शन की आधारभूमि पर भक्ति के एक शक्तिशाली मार्ग का प्रदर्शन किया। जब इस धर्म का उत्तर भारत में विकास हुआ उस समय हिन्दू धर्म विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के कारण जीर्ण हो चुका था। मुगल भी हिन्दू धर्म पर कुठाराघात कर रहे थे। मन्दिरों को तोड़ा जा रहा था। मूर्तियों को खण्डित किया जा रहा था। धर्म नेताओं को जीवित अग्नि को भेंट दे दिया जाता था। या तलवार से मौत के घाट उतारा जा रहा था। उस समय कबीर, गुरु नानक, तुलसी जैसे महान् समन्वयवादी लोक-नायकों ने जन्म लिया और भटकती हुई जनता को बाह्याडम्बर, पाखण्ड, कर्म-काण्ड के चक्करों में न पड़कर भक्ति के सरल और सुगम मार्ग का अनुसरण करने का निर्देशन किया। तुलसी ने `रामचरित मानस` की रचना कर राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप जनता के सामने रखा। इस प्रकार अगर हम कहें कि जब-जब धर्म की हानि होती है कोई न कोई महापुरुष अवतार धारण कर धर्म की रक्षा करता है, जैसा कि गीता में कहा गया है--

`यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।`[७]

७- श्रीमद्भगवद्गीता, ४।७ ।

अर्थात् जब जब धर्म की हानि होती है, तभी धर्म के उत्थान हेतु मैं जन्म लेता हूं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति अनेक थपेड़े खाकर भी जीवित रही।

पंजाब भारतीय संस्कृति का जन्मदाता है तथा विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल भी। यहीं वेदों, श्रुतियों एवं स्मृतियों की रचना हुई और यहीं गीता का अमर सन्देश कृष्ण ने अर्जुन को दिया था। नाथों एवं सिद्धों का धर्म प्रचार का केन्द्र भी यही रहा। चौरंगीनाथ, बालनाथ, जालन्धरनाथ सब पंजाब के ही रहने वाले थे। गुरु नानक ने यहीं जन्म लेकर इस भूमि को कृतार्थ कर दिया। उन्होंने जनता को कर्म करने, मिलकर रहने, सत्य पर चलने का उपदेश दिया। आगे चल कर गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर ने भी हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। जब हिन्दू धर्म पर मुगल आततायियों द्वारा अत्याचार हो रहा था, तब पंजाब से ही श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी ने भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान किया। इनके नेतृत्व में सोया हुआ भारत पुन: जाग पड़ा। उन्होंने भयभीत जनता को निडर, साहसी, और शक्तिशाली बनाया। आत्मिक शक्ति को प्रोत्साहन दिया। एक-एक व्यक्ति में अद्भुत बल का संचार किया। अल्प धन और सैनिक शक्ति होते हुए भी मुगलों की अपार सेना से मुकाबला किया।

इस युग की वीर भावना, सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति-`दशमग्रन्थ` में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त और भी साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है, जिसमें भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्व पुष्ट हो सकते हैं। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं--- `सर्वलोह महिमा प्रकाश`, `गुरु विलास पा० १०`, `गुरु विलास पातशाही छ:`, `गुरु नानक विजय`, `गुरु नानक प्रकाश`, `सिंह सागर, गुर कीरत प्रकाश` तथा `गुरु प्रताप सूरज` आदि। इसके अतिरिक्त भारत के अन्य भागों में भी वीर रस सम्बन्धी रचनाएं हुई हैं परन्तु उनमें राष्ट्रीय भावना, सांस्कृतिक चेतना का अंश नहीं दिखाई देता अपितु उनमें अपने आश्रयदाताओं की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा

है। उन्हें हम चारण काव्य की कोटि में रख सकते हैं। उत्तर भारत में अन्यत्र सांस्कृतिक चेतना के कोई विशेष चिह्न नहीं दिखाई देते, यह सौभाग्य पंजाब को प्राप्त है। पंजाब ने सांस्कृतिक उत्थान में अपना सहयोग दिया और विषम परिस्थितियों में भी इस को जीवन रखने का भरसक प्रयत्न किया। यहां पर ऐसे साहित्य की रचना हुई, जिसमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तृत वर्णन है।

धार्मिक परिस्थितियां :-

मुग़ल शासन के प्रारम्भ से ही धर्म का ह्रास होना शुरु हो गया था। इस सम्बन्धी बहुत से उदाहरण हमें श्री गुरु नानकदेव के काव्य में मिल जाएंगे। मुसलमानों के आगमन से पूर्व भारत वर्ष में सत्य और धर्म का प्रायः लोप हो गया था। बाह्याडम्बर और पाखण्ड का बोलबाला था। सारी धार्मिक क्रियाएं दिखावा मात्र थीं।[८] पाषाणों की पूजा होती थी। पाखण्ड का राज्य था।[९] मुसलमानों ने मूर्ति खण्डन प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार हिन्दू जनता का मूर्तियों से विश्वास उठता जा रहा था। अनेक मत-मतान्तरों

८- सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ फिरे परधानु वे लालो ।
काज़ीआ बामणां की गलि थकी, अगद पढ़े सैतानु वे लालो ।।
जाति सनाती होरि हिंदवाणीआ एहि भी लेखे लाए वे लालो ।
खून के सोहिले गावहिं नानक रतु का कंगु पाई वे लालो ।।
-- श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग महला १, पृष्ठ ६२२-२३ ।

९- पढ़ि पुस्तक संधिया बादं ।
सिल पूजसि बगुल समाधं ।
मुखि मूठ बिभूखण सारं ।
९- श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा महला १ , पृष्ठ ८६० ।

का बोलबाला था। सिद्ध नाथों के धर्म का ह्रास भी धीरे-धीरे होने लगा क्यों-कि इनकी वाणी अटपटी भाषा में होने के कारण साधारण जनता की समझ से परे थी। इन सम्प्रदायों से प्रभावित होकर जनता सत्य मार्ग त्याग कर जन्त्र-मन्त्र में उलझने लगी और कर्म क्षेत्र से दूर हो गई।

इस प्रकार उस युग में जब चारों ओर धर्म का ढोल पूरे ज़ोर से बजाया जा रहा था। धर्म के वास्तविक स्वरूप की हत्या करना ही सबसे बड़ा धर्म समझा जा रहा था, नैतिक तथा बौद्धिक ह्रास के इस युग में धर्म की उदात्त भावना पूर्ण रूप से लुप्त हो गयी थी।[१०]

कलियुग में राजे कसाई के समान हैं। धर्म पंख लगाकर न जाने कहाँ उड़ गया है अर्थात् धर्म का कहीं भी नाम-निशान नहीं है। चारों ओर असत्य रूपी अमास्या घनघोर अन्धकार है और उसमें सत्य का चन्द्रमा उदय हुआ दिखाई नहीं देता है। जिज्ञासु भटक रहा है, उसे कोई राह सूझ नहीं रहा है।[११]

गुरु नानक देव जी के इन शब्दों में कितनी सत्यता और स्पष्टता है तथा उस समय के समाज एवं धर्म की सजीव झलक भी।

मुसलमानों का उस समय दबदबा सारे भारत पर था। अकबर हिन्दू धर्म के प्रति उदार था, पर शाहजहाँ तथा औरंगजेब धर्म के प्रति इतने उदार न थे।

शताब्दियों के आक्रमण और विदेशियों के शासन से प्रजा कराह उठी थी। वह अपने धर्म को अपनाने में स्वतन्त्र न थी। निरर्थक रीतियाँ,

---

१०- डा० महीपसिंह, गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृ० ७ ।

११- कलिकाती राजे कासाई, धरमु पंख कर उड़रिया ।
कूड़ अमावस सचु चंदरमा, दीसै नहिं कहु चड़िया ।
-- वार माझ, महला १ ।

पतित अंध-विश्वास, पुरोहितों और महन्तों की स्वार्थ-बुद्धि का ही सर्वत्र राज्य था। सच्चे धर्म का रूप कर्म-काण्ड ने ले लिया था और हिन्दू धर्म का उच्च आध्यात्मिक रूप मत-मतान्तरों के झूठे रूप के नीचे दब गया था।[१२]

औरंगज़ेब ने गद्दी पर बैठते ही हिन्दू धर्म पर कठोर अत्याचार किये। अपने शासन में उसने आदेश दिया था, जिसमें कटक से लेकर मेदनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के स्थानीय हाकिम को सारे मन्दिर गिराये जाने का आदेश दिया था। ऐसे मन्दिर जिनको बने अभी १० या १२ साल ही हुए थे।[१३] ६ अप्रैल, १६६६ को उसकी आज्ञानुसार हिन्दुओं के सब २१ अणालय मन्दिर गिराने का हुक्म दिया। इस आदेश के अनुसार सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस में विश्वनाथ जी के मन्दिर, मथुरा में केशवराय के मन्दिरों को भी गिराया गया।[१४] हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों और मेलों परभी सन् १६६४ में रोक लगा दी गयी।[१५]

भक्ति काल में भक्ति को जो महत्व दिया गया था वह भक्ति, श्रद्धा, प्रेम और प्रतिष्ठा लोप हो चुके थे। डा० हरिभजनसिंह ने इस काल को 'धर्मान्धपूर्ण उत्पीड़न' का नाम दिया है:-- " इस काल के युद्धों का पूर्वचर, सहचर और अनुचर था धर्मान्ध उत्पीड़न, जिसके कारण युद्ध समाप्त होकर भी समाप्त न होता था। भय और आतंक जन-जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। पंचम गुरु की निर्मम हत्या (सन् १६०६) हिन्दु जन-साधारण को आतंकित करने का प्रथम प्रयास था। तदुपरान्त गुरु काल में छठे गुरु को कारावास का दण्ड(सन् १६१४ से कुछ पूर्व) एवं नवम गुरु (सन् १६७५) तथा दशम गुरु के

१२- जी० सी० नारंग : ट्रांसफारमेशन आफ सिज़्म, पृष्ठ ३१ ।

१३- यदुनाथ सरकार : औरंगजेब (हिन्दी संस्करण), पृष्ठ १६३ ।

१४- -वही- पृष्ठ १६४ ।

१५- -वही- पृष्ठ २०० ।

सुपुत्रों (सन् १७०४) की अभूतपूर्व यातनापूर्ण हत्यायें इसी धर्मान्धि उत्पीड़न का प्रमाण है।[१६]

गुरु गोबिन्दसिंह का काल रीति काल का युग है (सन् १६५० से १८५०)। गुरु गोबिन्दसिंह जी का कार्य काल सन् १६६६ ई० से १७०६ तक है।

मुगल शासक विलासितापिय थे। सर्वत्र नायक-नायिका भेद तथा श्रृंगार वर्णन ही प्रधान था। कवि अपने आश्रयदाताओं की विलास वृत्तियों को शान्त करने के लिए ही काव्य रचना करते थे। उनके सामने कोई महान् आदर्श न था।[१७]

इस प्रकार इस काल के कवि श्रृंगार को रसराज सिद्ध करने में व्यस्त थे। वे नायक और नायिका के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों की व्याख्या कर रहे थे। लक्षण ग्रन्थों का विकास हो रहा था। भूषण, लाल, सूदन जैसे कवि भी उस से अपना पीछा नहीं छुड़ा सके। रीति काल के प्रमुख कवि चिन्तामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव सभी औरंगजेब के समय के श्रेष्ठ कवि थे। इनकी रचनाओं में कहीं भी राजनैतिक दशा का वर्णन नहीं मिलता।

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने धार्मिक विश्वासों तथा धर्म के बाह्य-आडम्बरों को समीप से देखा था। बचित्र नाटक में उन्होंने उस समय के प्रचलित धर्म की व्याख्या की है---

(क) किते नास मूदे भये ब्रह्मचारी ।
किते कंठ कंठी जटा सीस धारी ।।
किते चीर कानम् जुगीसं कहायम् ।
समै फोकटम धरम काममून आयम् ।।[१८]

१६- डा० हरिभजनसिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ ७ ।
१७- डा० नगेन्द्र , रीति काल की भूमिका, पृष्ठ १४६ ।
१८- बचित्र नाटक, श्री काल जी की उसतति, प्रथम अध्याय, छंद ६३ ।

तथा- (ख) जे जे जग को डिंभ दिखावै ।।
लोगन मूंड अधिक सुख पावै ।।
नासा मूंद करे प्रणामम ।।
फोकट धरम न कऊड़ी काममम।।५०।।

फोकट धरम जिते जग करहीं ।।
नरक कुण्ड भीतर ते परहीं ।।
हाथ हलाए सुरग न जाहू ।।
जो मनु जीत सका नहीं काहू ।।[१९]

यह था उस समय का धर्म, जिसकी सजीव झलक स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है। कहीं कनपटे साधु हैं, कहीं कोई समाधिस्थ है, कोई प्राणायाम तथा अन्यान्य मुद्रायें कर रहा है। मगर अधिकांश मेषाज थे, पाखंडी थे।

निर्गुण भक्ति परम्परा के संचायक अपने युग की परिस्थितियों से भली भांति परिचित थे। उनका जीवन सादा तथा संयमी था। सत्रहवीं शताब्दी में सतनामी, कालदासी, नारायणी और सिक्ख पंथ उत्तर भारत में प्रमुख थे। पहले तीनों समाज के निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते थे और चौथा मध्य श्रेणी से।

इनमें सिक्ख पंथ का अपना विशिष्ट स्थान था। गुरु गद्दी के वैभव को देखते हुए उसके बहुत से दावेदार उत्पन्न हो गए थे, परन्तु ऐसे ईर्ष्यालु लोग गुरु गद्दी पर विराजमान न हो सके। गुरु नानक ने अपने दोनों पुत्रों को गुरुगद्दी के उत्तराधिकारी न बनाकर अपने शिष्य को गद्दी का अधिकारी समझा। गुरु अंगद देव ने भी अपनी सन्तान को महत्व न देकर अपने शिष्य अमरदास को गद्दी का मालिक बनाया था। चौथे गुरु रामदास से गुरुगद्दी

१९- बचित्र नाटक- मम आज्ञा काल जग प्रवेश करन, षष्टम अध्याय, छंद- ५७-५८ ।

455372

पैतृक हो गयी थी। परन्तु इसके लिए भी योग्य पुत्र अथवा सन्तान का चुनाव किया जाता था।

इनका प्रभाव भारत में सर्वत्र फैला हुआ था। उत्तर से दक्षिण त क और पूर्व से पश्चिम तक। श्री जदुनाथ सरकार के शब्दों में-- " सत्रहवीं शताब्दी में सिक्ख अपनी बन्धुत्व भावना और एक दूसरे के प्रति प्रेम के कारण प्रसिद्ध थे।[20] अब तक समाज में हिन्दू तथा मुसलमान दो ही जातियां थीं, अब एक तीसरी शक्ति पैदा हो गई थी। वह शक्ति थी सिक्ख मत की, जो हिन्दू धर्म का एक भाग होते हुए भी अपना अलग अस्तित्व धारण करती जा रही थी।

सामाजिक परिस्थितियां :-

जहां राजनीति, धर्म-कर्म, आचार-विचार तथा नैतिकता एवं संस्कृति के सभी मापदण्ड समाप्त हो गए थे, जहां के ` खतरीआ त धरम छोडिया मलेच्छ भाखा गही` के कारण चारों ओर अनादर, दुराचार तथा अत्याचार का बोल-बाला हो, जहां किसी मां-बहन की इज्जत न हो, जहां के राजा लोग ही पक्षपाती, धर्मान्ध, पापी तथा अत्याचारी हों, वहां कोई भद्र समाज पैदा हो सकेगा, इसकी कल्पना करना भी भ्रम होगा। अत: कहा जा सकता है कि देश की सामाजिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। समाज में सर्वत्र अविश्वास, घृणा और वैमनस्य का राज्य था।

वैदिक युग से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। वर्ण का निर्णय कर्म से नहीं, जन्म से होने लगा था। जाति-पाति की भावना इस हद तक बढ़ गई कि छूत-अछूत का विचार होने लगा। एक ओर से राज्य की दमन नीति थी तो दूसरी ओर ब्राह्मण व क्षत्रिय आदि उच्च वर्ग के लोगों ने निम्न वर्गों की नाक में दम कर रखा था। स्वार्थ, लोभ, आत्मप्रशंसा,

---

२०- ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृष्ठ १८७ ।

दम्भ, मानव-समाज आवश्यक अंग बन गए थे। क्षत्रीय वर्ग भी छोटे-छोटे अनेक वर्गों में विभाजित हो गया था। उनमें ऊपरी मान-मर्यादा, यश-लाभ की होड़ा-हाड़ी शुरु हो गयी थी। समाज में इन सभी प्रकार के दोषों के कारण एकता और आत्मीयता की भावना जाती रही थी। एक जाति दूसरी जाति वालों को घृणा की दृष्टि से देखती थी।

समाज हिन्दू और मुसलमान नाम के दो धार्मिक गुटों में तो बंटा हुआ था ही, उसमें उच्च शासक वर्ग तथा निम्न शासित के नाम से भी भेद बढ़ता जा रहा था। उच्च शासक वर्ग नैतिक पतन का शिकार हो चुका था। इस वर्ग में पर-स्त्री गमन, स्वेच्छाचारिता तथा अन्यान्य अनेक बुराईयां घर कर चुकी थीं। यहां तक कि स्वयं औरंगजेब के पुत्र आदि भी इससे अछूते न रहे।[२१] समाज के सभी वर्ग बुरी तरह से वहमों और भ्रमों में फंसे थे। ज्योतिष का मोह अमीर और ग़रीब वर्ग में समान रूप से था। मढ़ी-मसानों की पूजा का आम रिवाज़ था। गुरुड़म तथा महन्तशाही में साधारण जनता अधिक विश्वास रखती थी। यत्र-तत्र नर-बलि भी प्रचलित थी। भारतीय समाज में नैतिक और मानसिक पतन इस सीमा को पहुंच गया था कि माता-पिता अकाल-स्थिति में या ऋण चुकाने के लिए अपने बच्चे तक बेच डालते थे। कुछ वर्गों में दण्ड की यही विधि थी कि जिसे दण्ड देना है, उसे गुलाम समझकर खुले बाज़ार नीलाम कर दिया जाता। सरकारी कर्मचारियों में घूंस-खोरी का प्रचलन था।[२२]

समाज के इस उच्च वर्ग के घृणित चित्र को देखकर ऐसा विचार नहीं बनाना चाहिए कि समाज में गन्दगी, अन्धकार, बुराई तथा पतन ही सब कुछ था। इसके विपरीत यह मानना होगा कि लक्षावधि भारतीय जनता का घरेलू जीवन शुद्ध था तथा उसमें सरलता, सादगी तथा प्रसन्नता भी थी।

२१- सर जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग ५, पृष्ठ ३५२-५३ ।

२२- -वही- पृष्ठ ३५५-५६ ।

रामायण की कथा जन-मानस पर बहुत गहरा प्रभाव रखती थी जिसने समाज को विनष्ट होने से बचाए रखा।[२३]

गुरु गोबिन्दसिंह अपने भारतीय समाज में आए विकार और पतन के प्रति पूरी तरह सजग थे। उन्होंने अपने समाज का गहन अध्ययन किया तथा मनन करने के पश्चात् उसमें सुधार के लिए अनेक पग उठाए। समाज के दोषों, विकारों और दुर्बलताओं को उन्होंने पहचान लिया था, इसका उदाहरण उनकी रचनाओं में मिलता है जहां तात्कालीन समाज का मार्मिक विवेचन किया गया है। उनका सर्वस्व समाज का ही तो था,

साहित्यिक परिस्थितियां :-

हमारे अध्ययन-क्षेत्र का समय रीतिकाल कहलाता है। इस समय की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति श्रृंगारिक होने के कारण अन्य प्रवृत्तियों को बहुत कम कवियों ने अपनाया। तो भी यह बात भी निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि इस काल में प्रमुख प्रवृति श्रृंगार की होते हुए भी, वीर-काव्य का सृजन प्रचुर एवं प्रखर रूप से हुआ। इस समय तक आते-आते मुगल-शासन पतनोन्मुखी हो चुका था, पंजाब, महाराष्ट्र, बुन्देलखण्ड, राजस्थान तथा दिल्ली के आस-पास के अन्य क्षेत्रों में स्वत्व को पाने के लिए राष्ट्रीयता की भावना जागृत होने लगी थी। छत्रपति शिवाजी, गुरु गोबिन्दसिंह, महाराजा छत्रसाल, राजा राम, प्रभृति जन-नायक जन-मानस में एक नया सन्देश, नई स्फूर्ति और नया उत्साह भर रहे थे। इनके आश्रय में रहने वाले कतिपय कवियों ने वीरत्व को जागृत करके जन-जागरण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

परन्तु यह बात भी बड़े दु:ख से कहनी पड़ती है कि हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने जहां भूषण, बनवारी, जोधराज, सबलसिंह चौहान, रघुनाथ, लाल कवि, सूदन, खुमान बन्दी जन आदि अपेक्षातया लघु

२३- सर जदुनाथ सरकार , हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब, भाग ५, पृष्ठ ३५६

(भूषण को छोड़कर) तथा अपरिचित कवियों का उल्लेख किया है, वहां गुरु गोबिन्दसिंह का नाम तक भी नहीं लिया गया है, जबकि इतिहास और साहित्य साक्षी हैं कि इनका काव्य न केवल गणना की दृष्टि से ही अपितु गुणात्मक दृष्टि से भी श्रेष्ठ है।

रीतिकाल के साहित्य-सृजन में कवियों का ध्यान अधिक 'स्वान्त: सुखाय' पर रहा, पर-जन-हिताय' का लक्ष्य बहुत कम देखने को मिलता है। केशवदास, बिहारी, पद्माकर तथा देव आदि कवियों का मन जितना राधा-कृष्ण की श्रृंगार-लीला में रमा, उतना किसी और विषय में नहीं। समाज तथा इसकी दीन-हीन अवस्था की ओर इनका ध्यान गया ही नहीं। इस काल के कवियों ने जहां एक ओर संस्कृत के काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसरण पर लक्षण ग्रन्थों की रचना की, वहां दूसरी ओर रचनात्मक मौलिकता का भी परिचय दिया।

रीतिकाल में प्रधान काव्य-प्रवृत्ति श्रृंगारिक होने के कारण कवि-जन नायिका भेद, केलि-क्रीड़ा, तथा ऊहा-पोह में ही फंसे रहे। इस युग के जिन कवियों ने वीर-रस का वर्णन किया है, उनमें से अधिकांश ने अपने आश्रय-दाताओं की स्तुति में उनकी दानशीलता, वीरता तथा पराक्रम आदि का वर्णन किया है। यथार्थत: इस काव्य में औपचारिकता और कृत्रिमता अधिक होने के कारण इसका महत्व कम हो जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कुछ अंशों में यह कविता शुष्क तथा मात्र प्रथापालन के रूप में होने के कारण ही जनता में अधिक आदर न पा सकी।[२४] इन प्रशस्तियों का महत्व तब और भी कम हो जाता है, जब केवल नामों का बदल-फेर करके छत्रसाल की जगह शिवाजी आदि कर दिया जाता है, जैसाकि भूषण कवि में प्राय: मिलता है।

पंजाब प्रदेश में हिन्दी काव्य में भक्ति काल से ही एक काव्य-धारा गुरु नानक के निर्गुण-काव्य की भी प्रचलित हुई थी। इसमें पहली बार

२४- प्रतापनारायण टण्डन, हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, प्रथम खंड पृष्ठ २५६ ।

`राजे शींह मुकद्दम कुत्ते`[२५] कहकर शासक-वर्ग की भर्त्सना की गई। उसमें भारतीय मूल्यों तथा चिन्तन के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं। नानक का यह भक्ति-मार्ग, समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के कारण क्षात्र धर्म का उन्नायक बनता गया और यही नानक-काव्य गुरु गोबिन्दसिंह तक आते-आते पूर्णतया वीर रसात्मक हो गया। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव पर ढाए गए अत्याचार छठे गुरु श्री हरिगोविन्द की क़ैद, नवें गुरु की शहीदी ने इस काव्य को वीर मार्ग दे दिया था। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म ही धर्म की रक्षा करने, सन्तों का उद्धार करने तथा दुष्ट दलन करते हेतु हुआ था।[२६]

गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने उद्देश्य की उपलब्धि में पौराणिक कथाओं का अवगाहन किया। देवों की दानवों पर विजय द्वारा उन्होंने निरीह हिन्दू जनता को स्पष्ट किया कि भलाई का पक्ष सदैव विजयी होता है। राम तथा कृष्ण के लोक-नायक रूप उन्होंने वीर रसात्मक वाणी में भारतीय जनता के सामने रखे, ताकि इनसे प्रेरणा लेकर वह तात्कालीन क्रूर शासन से लोहा ले सकें।

हिन्दी कवियों को एक ओर संस्कृत के परम्परागत साहित्य से जुड़े रहना होता था और दूसरी ओर शाही दरबारों के उर्दू-फ़ारसी प्रभाव से भी दो-चार होना पड़ता था। संस्कृत की परम्परा से जुड़े हुए कवि नायिका-वर्णन, नख-शिख वर्णन, ऋतु वर्णन आदि में विशेष अभिरुचि रखते थे।

यह काल राजनैतिक अशान्ति, युद्धों तथा अव्यवस्था का काल था।

२५- राजा-गण शेर हैं और उनके दरबारी कुत्ते हैं। -- गुरु नानक।

२६- याही काज धरा हम जन्मं ।।
समझ लेहु साधू सब मनमं ।।
धरम चलावन संत उबारन।।
दुसट सभन को मूल उपारन ।। बचित्र नाटक, षाष्टम अध्याय, छन्द ४३।

ऐसे समय में साहित्य-सृजन कर पाना कितना भारी जोखिम का काम है। मगर इस से भी बढ़कर खेद का विषय तो यह है कि इस काल का असीम साहित्य समय के संक्रान्ति-चक्र में लुप्त-प्राय: ही हो गया--

" ऐसे अव्यवस्थित वातावरण में ग्रन्थों की सम्भाल भी ठीक तरह न हो सकती थी। आदिग्रन्थ की प्रथम प्रति, दशम ग्रन्थ का बहुत बड़ा भाग, दरबारी कवियों द्वारा रचित विद्यासागर नामक ग्रन्थ और महाभारत के कतिपय अनूदित पर्व शत्रु-सेना से लड़ते समय सदा के लिए काल-कवलित हो गए।"[२७]

नरेश ही नहीं छोटे-छोटे तालुकेदार और ज़मीदार तक ऐसी रचना के शौकीन थे। कवि कर्म करने वालों को ये ही तो आश्रयदाता थे। मुसलमानी दरबारों में फारसी या उर्दू प्रेम का बन्धा बंधाया रूप लेकर चलती थी। इसके जोड़ में हिन्दी कवियों ने श्रृंगार या नायक-नायिका भेद की रचना सामने की। उधर वे शेर पढ़ते या ग़ज़ल गाते थे इधर से ये कवित्त, सवैया या दोहा कहते थे। भक्त की रचना के आधिपत्य का प्रमुख कारण यह दरबारी ही हैं क्योंकि मुक्तक द्वारा ही दोहों में रस के छींटे उछाले जा सकते थे। दरबारी कवियों ने प्रबन्ध छुआ तक नहीं, उनका काम मुक्तक से चल जाता था।[२८]

श्रृंगारिकता का प्रभाव इस काल के प्रत्येक कवि पर पड़ा। गुरु गोबिन्दसिंह भी इससे अछूते न रह सके। कृष्णावतार ग्रन्थ रास-क्रीड़ा, ऋतुओं एवं परिधानों का वर्णन है, परन्तु अन्य रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा उनका श्रृंगार रस वर्णन संयमित है।

केशव, देव, पदमाकर दास आदि को आचार्यों की कोटि में रखा जा सकता है। रीतिकालीन साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा अधिक मिलती है। इस काल के साहित्य पर फारसी साहित्य का भी प्रभाव पड़ा। प्रिय के

२७- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ ११ ।
२८- बिहारी, विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ ९-१० ।

तन की शोभा देखने या और अपने शारीरिक उछल-कूद की मुद्राएं दिखाने के अभिलाषी अधिक थे।" प्रेम की चरमावस्था का निरूपण इस दोहे में व्यक्त होता है--

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि ।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझ अति रिझवारि।।[२९]
(बिहारी)

रीतिबद्ध रचनाओं में संयोग और वियोग के प्रत्येक छोर को कवि गण देख आए हैं। उनमें संयोग की मांसलता है तथा वियोग की विरहाग्नि । शरीर का सौन्दर्य उनके लिए आत्मा के सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक आकर्षण रखता है। यह प्रेम तथा सौन्दर्य वर्णन यहां तक गिर गया था कि इससे राधा और कृष्ण ऐसे इष्ट भी सामान्य नायिका-नायक बन कर ही रह गये।

देश में सर्वत्र धर्मान्धता, कट्टरता और नैतिकता का बोलबाला था और इससे टक्कर लेने के लिए महाराष्ट्र, पंजाब और बुन्देलखण्ड से हिन्दू वीर उठ खड़े हुए। भूषण, लाल और सूदन कवियों को इस कोटि में रखा जा सकता है। गुरु गोबिन्दसिंह जी अपने समय के युग निर्माता थे। इनकी रचनाओं में भक्ति, श्रृंगार और वीर रस का वर्णन मिलता है।

"वे किसी रूढ़ि-पद्धति, रीति-परम्परा के कायल नहीं थे। वे स्वच्छन्द साधक थे। श्रृंगार काल अथवा रीति काल की भावनात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव उनमें होते हुए भी वह रीतिबद्ध कवियों में नहीं आते।"[३०]

मुक्तक रचनाओं में कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा, बरवै आदि छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए। संस्कृत छन्दों को अपनाया गया। नीति

२९- बिहारी, विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ ३० ।

३०- डा० प्रसन्नी सहगल, गुरु गोबिन्दसिंह और उनका काव्य, पृ० ३१ ।

सम्बन्धी रचनाओं के लिए दोहे, सवैये और कृप्पय इतिवृत्तात्मक प्रकार की कविता के लिए चौपाई, सोरठा और श्रृंगार आदि की रचना के लिए कवित्त, सवैया आदि का सहारा लिया गया। शान्त रस के साथ रौद्र, वीर, बीभत्स आदि रसों की अभिव्यक्ति कुछ स्थलों पर हुई है।

इस काल की भाषा शैली में भी विकास हुआ। पहले वीर गाथाएं राजस्थानी भाषा में और भक्ति सम्बन्धी रचनाएं ब्रज और अवधी में लिखी जाती थीं। गुरु गोबिन्दसिंह जी को संस्कृत, फारसी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था। इन की रचनाओं में दोहा, चौपाई और पद, भुजंग प्रयात, नाराच आदि काव्य शैलियों का वर्णन मिलता है। उपाख्यान चरित्र, नाम स्तुति, मुक्तक, प्रबन्ध आदि विविध काव्य शैलियों का प्रयोग इन के काव्य में है। इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह जी का ज्ञान विस्तृत था। उन्होंने अपने काव्य में उस समय की काव्य पद्धतियों का वर्णन करते हुए भी अपने उद्देश्य में विचलित नहीं हुए हैं। उनका उद्देश्य मानव जाति को एक नयी दिशा देना था, जिसमें वह आत्म-सम्मान का जीवन जी सके। यही उनकी राष्ट्रीय चेतना थी और वीर भावना जिसको उन्होंने कविता द्वारा जन-जन के प्राण में फूंक दिया था।

सारांश यह कि राजनैतिक दृष्टि से यह युग घोर अशान्ति, कलह और पक्षपात का युग था, देश मे सर्वत्र अस्थिरता, अविश्वास और अनिश्चितता की स्थिति थी। इस युग के समाज में अनेकानेक भ्रम-जाल, अन्ध-विश्वास और कुत्सितताओं तथा कुरीतियों का बोलबाला था। नारी को शूद्र का सा दर्जा था, वर्ण व्यवस्था पूरे ज़ोर पर थी। साहित्य के क्षेत्र में एक ओर पांडित्य-प्रदर्शन तथा दूसरी ओर निकृष्ट श्रृंगारिकता का प्राधान्य था। पुराने विश्वास धराशायी हो रहे थे और नए कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे थे। पंजाब, महाराष्ट्र, बुन्देलखण्ड, राजस्थान व हरियाणा के कतिपय क्षेत्र भारत की वीर-भूमि होने का नया स्वर लेकर इस धरा पर उभर रहे थे। पंजाब में श्री गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनके आश्रय में रहने वाले कवि पौराणिक गाथाओं को लेकर भारत, भारतीयत तथा शौर्य व वीर्य का मन्त्र हमारी निराशा, विपथगामी व पतनोन्मुख जनता में फूंक रहे थे।

---oo--

तृतीय अध्याय

दशम ग्रन्थ की कृतियों का आलोचनात्मक सर्वेक्षण

दशम ग्रन्थ की कृतियों का आलोचनात्मक सर्वेक्षण

(अ)- वीर रसात्मक काव्य का मूल निवेश

जब देश, धर्म और जाति पर बाह्य आक्रमण होताहै या ऐसे ही किसी संकट का काल उपस्थित होता है, जब गरीबों, निर्धनों, अबलाओं, ब्राह्मणों और गौ पर या देश के अन्य मान-चिन्हों पर आघात होता है, तो कौन वीर-हृदय है जो मचल नहीं पड़ता, कौन युवक है जिसकी तरुणाई उमंगें भरने नहीं लगती है और जब कोई वीर-नायक वीरता का सिंह-नाद करता है, तब देश का कलमकार भी क्या पीछे रहेगा ? संयोग से गुरु गोबिन्दसिंह में वीर सैनिक तथा साहित्यकार दोनों ही रूपों का चरमोत्कर्ष एवं संगम था। अत: उनका काव्य, या उनसे प्रेरित काव्य वीर रसात्मक क्यों न होता। वीर-काव्य के मूल निवेश के सम्बन्ध में विभिन्न मत इस प्रकार हैं---

" वीर काव्यों का जन्म युग के यथार्थ परिप्रेक्ष्य में होताहै और युग का यथार्थ अपने समय के संघर्ष में होता है, चाहे वह फिर सामाजिक संघर्ष हो, धार्मिक संघर्ष हो या राजनैतिक संघर्ष हो। इसलिए वीर काव्य का नायक युग के आलोड़नों-विलोड़नों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाला होता है।"[१]

१- डा० राजमल बोरा, भूषण और उनका साहित्य, पृष्ठ १८५ ।

" हमारे उद्देश्य, आदर्श, मूल्य और परमार्थ इतिहास के माध्यम से प्रकट होते हैं। इतिहास का ज्ञान आध्यात्मिक प्रेरकों का ज्ञान है। इतिहास का जानना अपने को जानना है और इससे बढ़कर किसी ज्ञान का मूल्य नहीं। इतिहास की खोज आत्मा की जिज्ञासा है।"[२]

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इतिहास किसी भी युग का सजीव दर्पण है और वीर काव्यों में पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है।

" भारतीय वीर काव्यों की यह विशेषता है कि उसके प्रणयन में ऐतिहासिक तथ्यों का सहारा लिया जाता है और इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वीर काव्य की पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक सामग्री पर कल्पना का आवरण बढ़ाया गया है।"[३]

वीर काव्य का मूल निवेश कर्म है। कर्म समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करता है। अत: इससे स्पष्ट ही परिलक्षित होता है कि वीर काव्यों का लक्ष्य समाज का सुधार है। शुक्ल जी के शब्दों में--" वीर काव्य आनन्द की साधनावस्था का काव्य है।"[४] आगे वे धर्म की व्याख्या करते हैं-- " वह व्यवस्था या वृत्ति जिससे लोक में मंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है, धर्म है।"[५]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि वीर भावना का मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण है और इसी से देश की उन्नति तथा विकास सम्भव है। वीर ही देश का निर्माण करते हैं। दशम ग्रन्थ वीर रस भावना से ओतप्रोत है।

१- डा० ताराचन्द , इतिहास और साहित्य, पृष्ठ १६४ ।
३- डा० उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृष्ठ २ ।
४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , रस-मीमांसा, पृष्ठ ५६ ।
५- -वही- पृष्ठ ६० ।

इसमें समस्त रचनाएं वीरतापूर्ण हैं क्योंकि इसमें अधिकतर युद्ध वर्णन है। गुरु गोबिन्दसिंह जी वीर और साहसी युग नेता थे। उन्होंने अपने युग की आवाज़ को पहचाना था और उसी के अनुकूल अपनी काव्य रचना की।

बचित्र नाटक में इसके कर्ता ने अपनी जीवनी लिखते हुए अपने जीवन का लक्ष्य इस प्रकार बताया है--

` हम एह काज जगत मो आए । धर्म हेत गुरु देव पठाए ।।
जहां तहां तुम धरम बिथारो। दुष्ट देखीअन पकरि पछारो।।
याही काज धरा हम जन्मं । समझु लेहु साधु सब मनमं ।।
धरम चलावन सन्त उबारन । दुष्ट सभन को मूल उपारन ।। [६]

उन्होंने स्वयं को क्षत्री का पुत्र माना है और इस पृथ्वी पर धर्म की रक्षा करना तथा सन्तों की रक्षा करना ही अपना धर्म माना है--

क्षत्री को पूत हौं बामन को नहिं,
कै तपु आवत है जु करो ।।[७]

उन्होंने सदा ही उस अकाल पुरुष से यही वरदान मांगा है--

अब रीझ है देहु वहै हम कउ ।
जोउ हउ बिनती कर जोर करो ।।
जब आउ की अउध निदान बनै,
अति ही रन मैं तब जूझ मरौं ।।[८]

उन्होंने अपनी रचना का उद्देश्य ` धर्म-युद्ध ` माना है।

६- बिचित्र नाटक, अध्याय ७, पृष्ठ ४१ ।
७- कृष्णावतार । २४८६, पृष्ठ ५७० ।
८- - वही- ।

`अवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध के चाए`-- में उन्होंने अपना यह उद्देश्य कितने सुस्पष्ट शब्दों में व्यक्त है---

`दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाए ।
अवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध के चाए ।।[८]

दशम ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर युद्ध में सर्वस्व अर्पण करने की भावना ही दृष्टिगोचर होती है। वे अपने इष्ट से यही वरदान मांगते हैं--

१- देह सिवा बर मोहि इहै, सुभ करमन ते कबहूं न टरौं ।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं, निसचै कर अपनी जीत करौं ।।
अरु सिख हौ आपने ही मन को, एहलालच हउ गुन तउ उचरौं ।
जब आव की अउध निदान बनै, अत ही रन मै तब जूझ मरौं ।।२३१।[९]

२- अउर सुनो कछु जोग बिखै, कहि कउन इते तप कै तनु तावै ।।
जूझ मरो रन में तजि मै, तुम ते प्रभु स्याम इहै वरु पावै ।।१६०१।[१०]

३- हे रवि, हे ससि, हे करुणानिधि, मेरी अबै बिनती सुनि लीजै ।।
अउर न मांगत हउ तुम ते कछु, चाहत हउ चित्त मै सोई कीजै ।।
ससजन सिउ अति ही रन भीतर, जूझ मरो कहि साच पतीजै ।।
संत सहाइ सदा जग माइ कृपा करि स्याम इहै बरु दीजै ।।[११]

वीरता में आद्यन्त स्नात हमारे सन्त-सिपाही, कविवर प्रभु से अपने लिए ही युद्ध में लड़ने, बल-पराक्रम दिखलाने, और धर्म की जय-विजय के डंके बजाने का वरदान नहीं मांगते अपितु उनके इष्टदेव भी वीरता की साकार

८- कृष्णावतार : २४६१, पृष्ठ ५७० ।
९- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ६६ ।
१०- -वही- पृष्ठ ४६५ ।
११- -वही- पृष्ठ ४६५ ।

मूर्ति है। वह काल ही सब प्रकार की युद्ध-सामग्री, शस्त्रास्त्रों एवं वीरोचित वेश वाले हैं। उन्हें प्रभु के अन्य रूपों की अपेक्षा उनका वीर-रूप अधिक प्रिय है-

१- वीर तुही, सैथी तुही, तुही तबर तरबार ।
नाम तिहारो जो जपै भर सिन्धु भव पार।।
काल तुही काली तुही, तुही तेग अरु तीर ।।
तुहीं निसानी जीत की, आजु तुही जगबीर ।।[१२]

२- खल दल बल हरणं दुसट बिड़रणं ।
अस रण सरणं अमित गतं ।।
चंचल चरव चारण मच्छ बिड़ारण,
पाप प्रहारणं अमित मतं ।।
- - - - - - - - - - -
अति बलिसट दल दुसट निकंदन ।।
अमित प्रताप सगल जग बंदन ।।
सोहत चार चित्र कर चंदन ।।
पाप प्रहारण दुसट दल दंडन ।।[१३]

" ऐसा प्रतीत होता है कि ' धर्म-युद्ध का चाय ' की भावना से ग्रन्थ-सृजन करने वाले गुरु गोबिन्दसिंह ने भगवती चण्डिका को युद्ध की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्वीकार किया है। " मैं न गनेसहि प्रथम मनाऊं " कहने वाले लेखक ने कई रचनाओं के आरम्भ में भगवती चण्डी का स्मरण किया है--- गुरु गोबिन्दसिंह ने युद्ध-कार्य के लिए तो भगवती का आवाहन किया ही है, ग्रन्थ-रचना के लिए भी उन्होंने भगवती चण्डी की ही वन्दना की है। देवी सरस्वती को साधारणत: उन्होंने स्मरण ही नहीं किया, जहां किया है वहां भगवती चण्डिका के पश्चात्।"[१४]

१२- दशमग्रन्थ , पृष्ठ ५१७ ।
१३- -वही- पृष्ठ १३० ।
१४- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २०५ ।

यही नहीं, इससे भी स्पष्ट शब्दों में आपने असि, कृपाण, खण्डा, खड्ग, बन्दूक, गंडासा, तीर आदि को अपने ` पीर ` माना है---

- अस किरपान खंडो खड्ग, तुपक तबर अरु तीर ।।
सैफ सरोही सैहथी यहै हमारै पीर ।। [१५]

युद्ध में विजय वही प्राप्त कर सकता है जिसके हृदय में युद्ध की बात सुनकर चाव पैदा होता है। युद्ध-वीर का चित्र देखिए--

धन्न जीओ तिह्को जग मै, मुख ते हरि चित्त मै जुधु बिचारै ।। [१६]

जिसके मुख पर हरि का नाम है तथा चित्त में सदा युद्ध का विचार (या उमंग) रहता है, वही जीव धन्य है, जग में उसी का जीवन सार्थक होता है।

उपर्युक्त उद्धरणों से वीर काव्य के तीनों पक्ष सामने आते हैं। पहला पक्ष है प्रभु से वीरत्व का वरदान मांगना, दूसरा पक्ष है प्रभु को ही वीर-वेश में चित्त में धारण करना तथा तीसरा पक्ष मानव-जीवन के लक्ष्य का है। ये तीनों पक्ष दशम ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर प्रसंग के अनुकूल भरे पड़े हैं अत: दशम ग्रन्थ की मूल भावना वीर भावना है।

(आ) दशम ग्रन्थ में वीर रस परिपूर्ण रचनाएं

क: पूर्णतया वीर-रस पूर्ण रचनाएं :-

गुरु गोबिन्दसिंह जी की समस्त रचनाओं का सृजन अपने काल की राजनैतिक-धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ। उस समय जनता अनपढ़ थी

१५- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ७१७ ।
१६- -वही- पृष्ठ ५७० ।

परन्तु उसका धर्म अटूट विश्वास था। राम और कृष्ण उनके आदर्श महापुरुष थे। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने उन्हीं आदर्श महापुरुषों का सहारा लिया तथा विधर्मियों और आततायियों से हिन्दू धर्म की रक्षा की। सच पूछा जाए तो समूचा दशम ग्रन्थ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। अब हम इसमें संकलित रचनाओं का वर्गीकरण करेंगे। डा० प्रसिन्नी सहगल ने दशम ग्रन्थ की रचनाओं को पांच भागों में बांटा है--

१- भक्ति तथा आध्यात्मिक भावना,
२- शृंगार तथा प्रेम,
३- वीर तथा अथ सहकारी रस,
४- नीति उपदेश
५- बाह्य दृश्य चित्रण ।[१७]

उनके मतानुसार गुरु जी ने अपनी रचनाओं में भक्ति और वीर भावना का मिश्रण किया है। चण्डी चरित्र के तीनों ग्रन्थों में शक्ति, उपासना और भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

इसी प्रकार राम और कृष्ण अवतारों में वीर भाव और भक्ति-भाव का सम्मिश्रण है। पाख्यान चरित्र में भी अधिक कथाएं धार्मिक एवं वीर भावों से अनुप्रेरित और ओतप्रोत हैं।

डा० हरिभजनसिंह ने गुरु गोबिन्दसिंह जी की कविता को चार भागों में बांटा है--

१- भक्ति काव्य : जापु, अकाल उस्तति, स्फुट सवैये, स्फुट विष्णु पद।
२- पौराणिक : बचित्र नाटक, जिसमें अपनी कथा, चण्डी चरित्र,

१७- डा० प्रसिन्नी सहगल, गुरु गोबिन्दसिंह और उनका काव्य, पृ० १६०-१६१

(उक्ति विलास), चण्डी चरित्र, चौबीस अवतार, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार, पारसनाथ, रुद्रावतार, चरित्रोपाख्यान।

३- ऐतिहासिक : (बचित्र नाटक- अपनी कथा)।

४- प्रेम प्रबन्ध (चरित्रोपाख्यान)।[१८]

डा० जयभगवान गोयल ने दशमग्रन्थ में संकलित रचनाओं को तीन भाग भागों में विभक्त किया है--

(क) भक्ति प्रधान एवं आध्यात्मिक विचारों से युक्त रचनाएं-- जापु, अकाल स्तुति, ज्ञान प्रबोध, श्री मुखवाक सवैये आदि ।

(ख) वीर रसात्मक रचनाएं : बचित्र नाटक, अपनी कथा, चौबीसअवतार, क कथाएं, चण्डी चरित्र, उक्ति विलास, चंडी चरित्र द्वितीय, चण्डी दी वार (पंजाबी) शस्त्र नाम माता, एवं ज़फ़रनामा (फारसी)।

(ग) चरित्रोपाख्यान : जिसमें नारी के प्रेम, शौर्य और प्रवंचना का विशब क्ष वर्णन करते हुए उसके चरित्र का उद्घाटन किया है।[१९]

डा० हरिभजनसिंह का अनुसरण करते हुए डा० रत्नसिंह जग्गी ने दशम ग्रन्थ में संकलित पौराणिक रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है---

१- बृहद् प्रकथनात्मक कृतियां ,

२- लघु प्रकथनात्मक कृतियां,

३- उपाख्यान।[२०]

१- बृहद् प्रकथनात्मक कृतियां :-

इन कृतियों में चरित्र नायक के जीवन का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। दशमग्रन्थ में इस प्रकार की दो हुई कृतियां केवल दो हैं--- (अ) कृष्ण-

---

१८- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ५७, २०१, २४८ ।

१९ डा० भयभगवान गोयल; गुरु गोबिन्दसिंह का वीर काव्य, पृ० १२ ।

२०- डा० रत्नसिंह जग्गी, दसमग्रन्थ दा पौराणिक अध्ययन, पृष्ठ ६४ ।

वतार, (आ) रामावतार (चौबीस अवतार प्रसंग में से)।

२- लघु प्रकथनात्मक कृतियां :-

इनमें चरित्र नायक का चरित्र नायिका का सम्पूर्ण जीवन विवरण न होकर उसके जीवन के केवल एक पक्ष का ही चित्रण है। दशमग्रन्थ में इस प्रकार की कृतियां हैं---

क- चण्डी चरित्र (उक्ति विलास)
ख- चण्डी चरित्र द्वितीय,
ग- वार दुर्गा की,
घ- निहकलंकी अवतार (चौबीस अवतार प्रसंग में से),
ङ- दन्त अवतार (रुद्र अवतार में से)
च- पारसनाथ अवतार (रुद्र अवतार में से)।

३- उपाख्यान :-

इनमें चरित्र नायक या चरित्र नायिका के जीवन की किसी विशेष घटना का विवरण दिया जाता है।

उपर्युक्त विद्वानों के वर्गीकरण से यह भली भांति ज्ञात होता है कि दशमग्रन्थ की रचनाओं का विभाजन विषय वस्तु की दृष्टि से हुआ है न कि रस की दृष्टि से। हम यहां रस की दृष्टि से वर्गीकरण करेंगे।

गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित 'दशमग्रन्थ'[२१] में कुल १५ रचनाएं हैं। इन में से अधिकांश कृतियों के कृतित्व को संदिग्ध भी माना जाता है परन्तु हमारा प्रतिपादन वीर रस की दृष्टि से दशमग्रन्थ का अध्ययन प्रस्तुत करना है, न कि इस की प्रमाणिकता जैसे जटिल प्रश्न में पड़ना। दशमग्रन्थ के कर्तृत्व के सम्बन्ध में चल रहे विवाद में पड़ना न हमारा उद्देश्य है, और न ही यह हमारे विषय की

२१- प्रकाशक, भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह एण्ड को० भाई सेवा अमृतसर, कुल पन्ने १४२८, सम्वत् २०२४ (सन् १ ९६७)।

सीमा के अन्तर्गत आता है। इस ग्रन्थ की रचनाएं विशेष रूप से श्री गुरु गोबिन्दसिंह की सिद्ध हों या न हों, परन्तु यह बात सर्वविदित है कि इस ग्रंथ की वीर-वाणी में जिस वीरत्व का संचार किया गया है तथा वीर रस की जो निष्पत्ति हुई है, उस भावना के प्रेरणा स्रोत मात्र दशम गुरु जी हैं। अत: दशम ग्रन्थ की विशेष रचना किसी कवि की भी क्यों न हो, उसकी भावना अवश्य ही गुरु जी से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित है। और हमारी यह स्थापना सुस्पष्ट है कि दशम ग्रन्थ की वीर भावना का अध्ययन करना वस्तुत: गुरु गोबिन्दसिंह जी की भावना का विवेचन करना है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए हमने उपर्युक्त एक मात्र उपलब्ध दशमग्रन्थ को आधार बनाया है। इसके कुल पन्ने १४२८ हैं, और यह दो जिल्दों में मिलता है। प्रकाशक के अनुसार इस ग्रन्थ का सम्पादन शोधक कमेटी की रिपोर्ट पर आधारित शुद्ध पाठ को सामने रखकर किया गया है। १४२८ पृष्ठों के इस बृहदाकार ग्रन्थ में वाणी-क्रम इस प्रकार है--

१- जाप
२- अकाल उसतुत ।
३- बचित्र नाटक (अपनी कथा),
४- चण्डी चरित्र (उक्ति विकास)
५- चण्डी चरित्र (द्वितीय)
६- चण्डी दी वार,
७- ज्ञान प्रबोध ,
८- चौबीस अवतार (मच्छ, कच्छ आदि तथा मीर महंदी)
९- ब्रह्मा अवतार,
१०- रुद्रावतार,
११- स्फुट पद और सवैये ,
१२- शस्त्रनाम माला,
१३- चरित्रोपाख्यान
१४- ज़फ़रनामा,
१५- हिकायतें ।

वीर रस की दृष्टि से दशम ग्रन्थ की रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है--

क: विशुद्ध वीर रसात्मक कृतियाँ :-

बचित्र नाटक, चण्डी चरित्र (उक्ति विलास), चण्डी चरित्र (द्वितीय), चण्डी दी वार, चौबीस अवतार में से (कृष्णावतार तथा रामावतार)

ख: आंशिक वीर रसात्मक कृतियाँ :-

निष्कलंकी अवतार, पारसनाथ-रुद्रावतार, शस्त्रनाम माला, ज़फ़रनामा, चरित्रोपाख्यान ।

ग: वीर रसात्मक शैली एवं पृष्ठभूमि पर विरचित कृतियाँ :-

चौबीस अवतार में से नरसिंघ अवतार, रुद्रावतार, परसराम अवतार, नरावतार, मनु अवतार, सूर्यावतार, जालन्धरावतार, अरहंतदेव अवतार ज्ञानप्रबोध में महाकाल की उपासना, युधिष्ठिर के बल पराक्रम और युद्ध वीरता का वर्णन, परीक्षित, राजा जनमेजय के शौर्य का वर्णन, महाभारत के अन्यान्य वीरों की वीरता का वर्णन।

दशमग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति में युद्ध की ध्वनि सुनाई पड़ती है और प्रत्येक शब्द वीर रस की भावना से ओत-प्रोत है। उनके हृदय में सदा ही अपने देश कल्याण की भावना की प्रचंड अग्नि सुलगती रहती थी। उन्होंने हिन्दुओं के हृदय से कायरता का भाव दूर किया और वीर भावना का अमर संगीत भर दिया। उन्होंने जाति-पाँति का भेद भुला कर प्रत्येक व्यक्ति को अपना शिष्य बनाया और हाथ में कृपाण दी और आह्वान किया कि अपनी वीरता से शत्रु के छक्के छुड़ा दो तथा अपने धर्म की रक्षा करो। यह था उनका अमर सन्देश समाज के लिए, जाति के लिए और देश के लिए। उनके नाम से यह जयघोष अभिहित किया जाता है--

सवा लाख से एक लड़ाऊँ,
तबै गोबिन्दसिंह स नाम क धराऊँ ।।

कितना उच्च आदर्श था उस महान् आत्मा के सामने जिसको उन्होंने अपने जीवन काल में साकार कर दिखलाया। अपने पिता तथा चार पुत्रों का अमर बलिदान देकर सर्वस्व न्योछावर करने के बाद उन्होंने 'खालसा पंथ' का नया पंथ चलाया, 'पांच प्यारे' तथाकथित परिगणित जातियों यथा धोबी, कुम्हार, नाट, क्षींबा तथा नाई-- में से चुने। वीर रस से परिपूर्ण रचनाओं के जनक मानों वीरत्व को व्यावहारिक जीवन में वाणी दे रहे थे। जब सारा कवि समाज श्रृंगारिकता की मादकता में विभोर हो, तब अपने युग-परिवेश की अवहेलना कर युग-बोध को नए वीरोचित अर्थ प्रदान करना दशमग्रन्थ के रचयिता के ही वश की बात थी।

पंजाब भारत की वीर भूमि है। मुसलमान आक्रमणकारियों के मार्ग में पड़ने के कारण यहां के निवासियों ने सदा ही अत्याचार का डटकर सामना किया है और यही कारण है कि वे वीर और साहसी हैं। निरन्तर आक्रमणों के कारण सामान्य जनता हतोत्साहित हो गयी थी। उसके सामने कोई आदर्श न था। मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर अत्याचारों के फलस्वरूप वह भयभीत हो गई थी और अपनी आत्मिक शक्ति नष्ट कर बैठी थी। ऐसे समय गुरु गोबिन्दसिंह जी ने जनता में वीरता के प्राण फूंक दिये। वैसे वीर गाथाएं पंजाब में वार काव्य रूप में प्रचलित थीं।[२२] विजयदशमी के अवसर पर रामायण की वीर कथा बड़े उत्साह से गायी जाती थी। शक्तिवाहन की ये वीर कथाएं भी लोकगीतों के माध्यम से गाई जाती थीं।

ऊपर हमने दशमग्रन्थ की रचनाओं को तीन भागों में रखा है। इनमें से पहले दो प्रकार की रचनाओं का यहां स्वतन्त्र विवेचन किया गया है। तीसरे भाग को 'युद्ध-वर्णन' के अन्तर्गत रख कर उनका अध्ययन कियागया है।

२२- लोक परंपरा है कि 'हनुमन्नाटक' उस समय एक सर्वप्रिय रचना थी, जिस का अभिनय भी किया जाता था और पाठ भी। कहा जाता है कि गुरु गोबिन्दसिंह जी हनुमन्नाटक की एक प्रति अपने संग रखते थे।

क: विशुद्ध वीर रसात्मक कृतियाँ :-

अब हम दशमग्रन्थ की विशुद्ध वीर रसात्मक कृतियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं :--

१- बचित्र नाटक (आत्मकथा):

काव्य रूप में रचित यह एक अद्भुत वीर काव्य है। इसमें एक ओर गुरु जी की अपनी आत्मकथा है तो दूसरी ओर किसी देवता, देवता या अन्य वीर पुरुषों के चरित्र में वीरता, साहस और उत्साह की भावना भर कर उस का अद्भुत वर्णन किया गया है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की रचना विरल है। इस रचना का उद्देश्य केवल आत्माभिव्यक्ति अथवा अपने बारे में कुछ बताना ही नहीं है अपितु वह सिद्ध करना है कि वे एक वीर पुत्र थे, वीर पिता की सन्तान थे। उन्होंने इसकी रचना निराश और दुर्बल हिन्दु जनता में देश-प्रेम भरने के लिए की थी। इसका आदर्श अपने धर्म की रक्षा करना तथा अपनी जाति और देश के गौरव को अक्षुण्य न रखना था।

इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए उन्होंने कहा है कि मुझे गुरुदेव ने धर्म-स्थापना करने के लिए भेजा है। जहाँ भी दुष्टों को देखा, मार गिराओ।[२३] उन्होंने भारतीयों को यह बताया कि -- " मैं मुग़लों के अन्याय और अत्याचार का बदला लेने आया हूं। यह धर्म युद्ध है।"[२४]

तत्कालीन भारतीय जनता अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों में ग्रस्त थी,

२३- हम एहि काज जगत में आयो। धरम हेत गुरुदेव पठाए ।
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो । दुष्ट दोखियन पकरि पछारो ।।
-- बचित्र नाटक : षष्ठम अध्याया, ४२, पृष्ठ ५७ ।

२४- दशम कथा भगौत की भाखा करि बनाए ।
अवर वासना नाहिं प्रभु धर्म-युद्ध का चाए ।।
-- २४९१, पृष्ठ ५७० ।

धर्म के सच्चे स्वरूप को न पहचान कर बाह्याडम्बरों में फंसी हुई थी। सर्वत्र आलस्य और कर्म विमुखता की भावना छायी हुई थी। गुरु गोबिन्दसिंह ने इसमें अकर्मण्यता, आलस्य तथा कापुरुषता का शिकार हुए भारतीय समाज को उसी प्रकार से कर्म करने का उपदेश दिया जैसे गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था।

वास्तव में गुरु गोबिन्दसिंह जी एक वीर सेनानी, साहसी योद्धा शूरवीर, देश प्रेमी, निर्भीक, दुष्टों का दलन करने वाले, दृढ़ प्रतिज्ञ और युग नेता के रूप में प्रकट होते हैं। वे मुगल शासकों के समाज या राज्य के भोगी नहीं थे, वरन् जनता में कर्म की महत्ता बताने वाले कर्म योगी थे।

काव्य सौष्ठव:-

इस रचना में कुल १४ अध्याय हैं, जिनमें से आठ में युद्ध वर्णन है। इसमें कुल ३७० पद्य हैं।

प्रथम खण्ड में अपने इष्ट देव ` श्री काल जी ` का स्तवन किया गया है। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने युद्ध भावना को प्रमुखता देते हुए ईश्वर के वीर-प्रतीकों की कल्पना ही अधिक की है। ये प्रतीक हैं--- महाकाल, रुद्र, भगवती या चण्डी। उन्होंने प्रथम अध्याय में शत्रुओं और आततायियों का नाश करने वाली खड्ग की वन्दना ही की है।---

नमस्कार श्री खड्ग को करौ सुहित चित लाए ।
पूरन करौ ग्रन्थ इह तुम मुहि करहु सहाए ।। [२५]

दूसरे पद में कवि ने खड्ग के काल रूप का वर्णन किया है --

खग्ग खंड बिहंडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं ।
भुज दंड अखंडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भान प्रभं ।।

२५- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ३६ ।

सुख संता करणं दुर्मति दरणं किलविख हरणं अस सरणं ।
जै जै जग कारण स्रिस्ट उबारन मम प्रति पारन जै तेगं ।।[२६]

इसमें इष्ट के जो गुण-लक्षित होते हैं, उनसे सिद्ध है कि कवि अपने लक्ष्य की सम्पूर्ण चेतना लिए आगे बढ़ रहा है। वह टुकड़े करने वाला, शत्रु का नाश करने वाला, अखण्ड भुजदण्डों वाला, शक्तिमान् प्रचंड, तेजयुक्त, सूर्य की ज्योति को फीका कर देने वाला, सन्तों को सुख प्रदान करने वाला, जग की रचना करने वाला, सृष्टि का उद्धार करने वाला और मेरी प्रतिज्ञाओं की पूर्ति करने वाला। वास्तव में यह तलवार उनके उद्देश्य पूर्ति का साधन है।

प्रथम अध्याय में १०१ छन्द हैं जिनमें उस परम पुरुष की स्तुति की गई है। इनमें भी उसके वीर रूपकों का ही चित्रण अधिक है। यथा--

करं बाम चाप्यं कृपाणं करालं ।। महातेज तेजं बिराजै बिसालं ।।
महादाढ़ दाढ़ं सु सौहं अपारं ।। जिनै चबीयं जीव जगयं हजारं ।।१८।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वे अपने इष्ट, कृपाणधारी की ही आराधना करते हैं जो अपरम्परा शक्ति के भण्डार हैं। उन्हें अपने प्रभु का वीर रूप ही सर्वाधिक प्रिय है।

बचित्र नाटक की कथा का आरम्भ गुरु जी के पूर्व जन्म की कथा से होता है जिसमें वह इस लोक में आने के उद्देश्य का भी वर्णन करते हैं।

प्रस्तुत कृति में भंगाणी, नादौन, आदि कतिपय युद्धों का वर्णन है। इस सम्बन्ध में सविस्तार विश्लेषण हमारे आगामी अध्यायों का विषय है।

गुरु गोबिन्दसिंह की सभी रचनाओं में उनका सामयिक परिवेश सुस्पष्ट है। वे जनता में आत्मविश्वास की भावना भर कर शत्रु पर विजय प्राप्त

२६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६ ।

करना चाहते थे। बड़े-बड़े राजा भी इस काल के सम्मुख नहीं टिक सके। वे अपने शिष्यों को उसी की आराधना करने को कहते हैं --

कृपाण पाण जे जपै ।। अनन्त थाट ते थपै ।।
जितेक काल घ्याए हैं ।। जगत्ति जीति आए हैं ।।७६।।

आत्मकथा के इन १०१ पद्यों का कथा से कोई सम्बन्ध नहीं । इस अध्याय के अन्तिम दस सवैया छन्दों में प्रभु के प्रति विनय के भाव प्रकट किए गए हैं--

मेरु करो तृण ते मुहि जाहि, गरीब निवाज न दूसर तोसो ।।
भूल छिमो हमरी प्रभु आप न, भूलनहार कहूं कोऊ मोसो ।।
सेव करी तुमरी तिनके सभ, ही गृह देखियत द्रव्य भरोसो ।।
या कल में सब काल कृपाण के भारी भुजान को भारी भरोसो।।९२

द्वितीय अध्याय में ३६ पद्य हैं और दोहा, चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रथम आठ पद्यों में इष्ट देव की पुनः स्तुति की गई है। नवें पद्य से `अपनी कथा` आरम्भ होती है। काल ब्रह्म ने ओंकार शब्द के उच्चारण से सृष्टि उत्पन्न की और प्रसार किया।[२७] आगे की कथा पुराणाधारित है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति, राक्षसों की उत्पत्ति, उनका विनाश, देवताओं और असुरों की परिभाषा दी गई है।[२८]

इसके बाद सोढी वंश की कथा इस प्रकार दी गई है। दक्ष प्रजापति की चार पुत्रियां वनिता, कद्र, दिति और अदिति का विवाह कश्यप ऋषि से हुआ। अदिति से सूर्यादि देवताओं का जन्म हुआ और सूर्य वंश की

२७- प्रथम काल जब करा पसारा।। ओंकार ते सृष्टि उपारा।।१०।।पृ०४०।।

२८- साध करम जे पुरख कमावै ।। नाम देवता जगत कहावै ।।
कुकृत करम जे जग मै करही ।। नाम असुर तिन को सभ धरही ।।१५।।
पृष्ठ ४८ ।

परम्परा स्थापित हुई। इसी वंश में रघु नाम के राजा हुए जो रघुवंशीय कहलाए। उनके पुत्र अज थे जो बड़े योद्धा और महारथी थे। जब वे वन को गए तो अपना राजपाट दशरथ को दे गए। राजा दशरथ बहुत वीर थे। इनकी तीन रानियाँ थीं जिनसे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। इन्होंने बहुत समय तक राज्य किया। फिर स्वर्ग लोक सिधार गए। सीता के पुत्र लव और कुश हुए। उन्होंने मद्र देश (पंजाब) की राजकुमारियों से विवाह किये। इनके नाम से दो नगर बसे। एक का नाम कुशपुर (कसूर) और दूसरे का नाम लवपुर (लाहौर) पड़े। इनके पुत्र और पौत्रों ने भी दीर्घ काल तक राज्य किया।

इसी वंश परम्परा में कुश-वंशीय कसूर का शासन कालकेतु और लव वंशीय लाहौर का शासक कालराय हुए। इनके भी आगे अगणित पुत्रादि हुए। कालकेतु बड़ा बली था। उसने काल राय को नगर से निकाल दिया। वह भाग कर सनौढ़ देश चला गया और वहाँ उसकी कन्या से विवाह किया। उसके पुत्र का नाम सोढ़ी राय रखा गया, जिससे उसके वंशज सोढ़ी कहलाए। इस प्रकार इस वंश ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की और अन्त में इनमें भी पतन आ गया।[२६]

तृतीय अध्याय : पद्य-संख्या ५२ है। लाहौर से भागे लववंशीय राजे ने अपना राज्य कुश-वंशीयों से प्राप्त करने के लिए अनेक युद्ध किये और विजय प्राप्त की। कुशवंशीय राज्य त्याग कर काशी वेदाध्ययन के लिए चले गए।

चतुर्थ अध्याय :- पद संख्या १० है। कुश वंशीयों ने काशी में आकर वेदाध्ययन किया और वे वेदी कहलाए। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। लव वंशीय सोढ़ी राजे ने उन्हें अपने यहाँ निमन्त्रण दिया। सभी वेदी मद्रदेश (पंजाब) आ गए। वहाँ उन्होंने वेद पाठ किया जिससे सोढ़ी राजे अत्यन्त प्रभावित हुए। सोढी राजा ने उन्हें राजपाठ दे दिया और आप बनवा

२६- तिहते पुत्र भयो जो धामा।। सोढीराय धरा तिहि नामा ।।
बंस सनौढ़ त दिन ते थीआ।। परम पवित्र पुरख जो कीआ।। २६, पृ०४६।

बनवास चले गए। वेदी राजा ने राजा सोढ़ी को वरदान दिया कि कलयुग में हम गुरु नानक के रूप में जन्म लेंगे और तुम्हें विशिष्ट स्थान देंगे। हम तीन जन्म धारण करेंगे और चौथे में तुम्हें गुरु बना देंगे।[३०]

पंचम अध्याय:- इसमें कुल १६ पद्य हैं। आगे वेदियों में कलह उत्पन्न हुई गई। उन का राजपाट छिन्न गया और बीस गांव रह गए। इतनें में गुरु नानक के जन्म का समय आ गया।[३१] उन्होंने धर्म की रक्षा की और सबको ज्ञान उपदेश दिया। नानक के बाद अंगद और अमरदास हुए। इसके बाद सोढ़ी वंशीय रामदास को चतुर्थ गुरु गद्दी प्रदान की। रामदास ने अर्जुन को और अर्जुन ने अपना स्थान हरिगोविन्द को दिया। हरिगोविन्द ने अपना स्थान हरिराय को दिया। फिर उनके पुत्र हरिकृष्ण हुए और इसके पश्चात् गुरु तेगबहादुर गुरुगद्दी पर बैठे। गुरु तेगबहादुर ने हिन्दू धर्म की रक्षा की और अपना बलिदान दिया।[३२]

षष्ठम अध्याय :- इसमें कुल ६४ पद्य हैं। इसके बाद कवि अपनी कथा कहता है। कवि ने देह धारण करने का उद्देश्य बताया है कि पार-ब्रह्म की तरफ से उन्हें कलियुग में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा हुई।[३३]

३०- तीन जनम हमहूं जब धरि है।। चौथे जनम गुरु तुहि करि है। द०ग्र०पृ०५३

३१- बीस गांव तिन के रहि गए।। जिन मो करत किसानो भए।।
बहुत काल यह भांति बितायो।। जनम सभै नानक को आयो। द०ग्र०५३।

३२- तिलक जंजू राखा प्रभु ताका। कीनो बडो कलू महि साका ।।
साधनि हेति इती जिनि करी।। सीसु दीआ परु सिरर न दीआ। द०ग्र० पृ०५४।

३३-(क) हम एक काज जगत मो आए।। धरम हेत गुरदेव पठाए ।।
जहां जहां तुम धरम बिथारो।। दुसट दोखीअनि पकरि पछारो।।
द०ग्र०,पृ०५७((

(ख) हरि हरि जन दुइ एक है बिन विचार कुछ नाहि ।।
जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि।। द०ग्र० पृष्ठ ५६।।

सप्तम अध्याय :- केवल तीन पद्यों में कवि ने अपने पिता की तीर्थ यात्रा का वर्णन किया है और पटना नगर में अपना जन्म बताया है। इसके बाद उन्हें मद्रदेश (पंजाब) लाया गया जहां पर उनकी शिक्षा हुई और इसके बाद पिता परलोक सिधार गए।

अष्टम अध्याय :- ३८ पद्यों के इस वर्णन में वीरता की पृष्ठ-भूमि अंकि है जो कि ऐतिहासिक तथ्य है।[३४]

नवम अध्याय :- २४ पद्यों के इस अध्याय में द्वितीय युद्ध ` नादौन युद्ध ` है। इसमें आपने पहाड़ी राजाओं की सहायता की। मीयां खान और अलफखान (मुगल सरदार) पहाड़ी राजाओं से कर वसूल करने आए थे। घमासान युद्ध हुआ और इसमें गुरु जी ने स्वयं भाग लिया और मुग़ल सेनाएं युद्ध का मैदान छोड़कर भाग निकलीं। इसके युद्ध वर्णन के उदाहरण अगले अध्याय में दिये गए हैं।

दशम अध्याय :- इसमें लाहौर का सूबेदार दिलावर खां अपने पुत्र को गुरु जी से युद्ध करने के लिए भेजता है। परन्तु पराजित होकर भागता है। रास्ते में ` बरवा ग्राम` को लूट लेता है। इसमें १० पद्य हैं।

एकादश अध्याय :- इस अध्याय को हुसैनीयुद्ध ` कथन` शीर्षक दिया गया है। यह अध्याय अन्य अध्यायों से बड़ा है। इसमें ७१ पद्य हैं।

जब दिलावर खां का पुत्र पराजित होकर भाग जाता है तब उस का सेनापति हुसैनखान अपनी बड़ी सेना के साथ गुरु जी पर आक्रमण करता है। जिन पहाड़ी राजाओं ने कर नहीं दिया था उन पर भी उसने आक्रमण किया। पहाड़ी राजा भीमचन्द हुसैनी से जा मिला। गुलेर के राजा गोपाल ने गुरु जी की सहायता से हुसैनी से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। युद्ध में ` हुसैनखान`

३४- राज साथ हम पर जब आयो।। जथा सकत तब धरम चलायो ।।
भांति-भांति बन खेल सिकारा।। मारे रौद्र रोझ मंझारा।। द०ग्र०पृ० ६०।

काम आया और मुग़ल सेना तितर-बितर हो गई। (इसका युद्ध वर्णन अगले अध्याय में वर्णित है।)

द्वादश अध्याय : यह अध्याय १२ पद्य में है। इसमें दिलावर खां रुस्तम खां को पहाड़ी राजाओं पर आक्रमण करने को भेजता है जो कि गुरु जी के मित्र थे। पर जसपाल का राजा गजसिंह उसे पराजित कर देता है।

त्रयोदश अध्याय :- इसमें २५ पद्य हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने अब तक अनेक युद्ध लड़े थे, कुछ युद्धों में उनकी हार हुई हुई और कुछ में विजय, परन्तु हार के बावजूद भी उनका दृढ़ मनोबल, स्वातन्त्र्य चेतना, स्वाभिमान, युद्धोल्लास एवं बाहु बल पर अपार विश्वास, स्वत्व एवं पौरुष किसी भी कदर समाप्त नहीं हुआ था। `अपनी कथा` के तेरहवें अध्याय में वे औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जम[३५] (बहादुरशाह प्रथम) के आगमन का वर्णन करते हैं। यहां पर गुरु जी ने धर्मयुद्ध की महत्ता स्थापित करने हेतु एवं गुरु-शिष्य के मध्य खालसा मत-सम्मत व्यवहार के विषय में भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। शहज़ादे का आगमन सुनकर सर्वत्र आतंक फैल गया और बहुत से गुरु सिक्ख गुरु जी का साथ छोड़कर अधिक सुरक्षित स्थान की तलाश में `जाय बसे गिरवर जह मारे`। औरंगजेब के जो हलकारे वहां आए उन्होंने उन भगौड़े `मूजीअन` एवं विमुखों के घर बार गिरादिये। यहां सिख सिद्धान्त का `बेमुख` या मनमुख तथा `गुरुमुख` का जो भेद स्पष्ट किया गया है, वह दर्शनीय है---

जे अपने गुर ते मुख फिरहै ।। इहां ऊहां तिनके गृहि गिरिहै ।।
इहां उपहास न सुरपुर बासा।। सभ बातन ते रहै निरासा ।। ५।।

३५- (क) ~~सलन्धर~~ शहज़ादा मुअज्ज़म १६६६ ई० में लाहौर आया था, जिसमें मिर्ज़ा बेग एक भारी सेना लेकर आनन्दपुर की ओर आया। इसमें उसे घोर पराजय हुई---` देखिए- गुरुचरणसिंह-सुरजीतसिंह गांधी-` पंजाब का इतिहास (१५००-१८५८ ए०डी०), १९६८, गुरदास कपूर एंड संज,जालन्धर पृष्ठ २५०-५१ ।

(ख)- बचित्र नाटक : तेरहवां अध्याय, १-२५ ।

दूख भूख तिन को रहे लागी।। संत सेब ते जो है तिहासी ।।
जगत बिखै कोई काम न सरही ।। अंतहि कुंड नरक की परही।।६।।
तिन का सदा जगत उपहासा।। अंतहि कुंड नरक को बासा ।।
गुर पग ते जे बेमुख सिधारे।। इहाँ ऊहाँ तिनके मुख कारे।। ७।।
पुत्र पौत्र तिनके नहीं फरै ।। दुख दै मात पिता को मरै ।।
गुर दोखी सग को मित्र पावै ।। नरक कुंड उभे पछुतावै ।।८।।[३६]

इसके विपरीत गुरमुख का चरित्र इस प्रकार से वर्णन किया है--

जे जे गुर चरनन रत ह्वै हैं ।। तिनको कसटि न देखन पैहैं ।।
रिद्ध सिद्ध तिन के गृह माहीं ।। पाप ताप छ्वै सकै न छाहीं।।१४।।
-- -- -- -- -- --
मिरजाबेग हुतो तिह नामं ।। जिन ढाहे बेमुखन के धामं ।।
सम सनमुख गुर आप बचाए ।। तिनके बार न बांकन पाए।।१६।।[३७]

चतुर्दश अध्याय :- इसमें कविवर एक बार पुन: अपने जीवन-लक्ष्य का वर्णन करते हैं। इस अध्याय में कवि अपनी-रचनाओं का भी किंचित परिचय देता है। एक चण्डी-चरित्र लिखे जाने के बारे में पता लगता है और दूसरे चण्डी-चरित्र लिखे जाने का संकेत मिलता है---

पहले चण्डी चरित्र बनायो।। नखसिख ते क्रम भाख सुनायो ।।
छौर कथा तब प्रथम सुनाई।। अब चाहत फिरि करौ बड़ाई।।११।।[३८]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह अधूरी आत्मकथा है। इसमें गुरु जी ने अपने ३२ वर्ष की आयु तक की घटनाओं का उल्लेख किया है।

३६- दशमग्रन्थ , पृष्ठ ७१।
३७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ७२ ।
३८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ७३ ।

२- चण्डी चरित्र (प्रथम) उक्ति विलास :-

दशम ग्रन्थ में चण्डी सम्बन्धी तीन प्रबन्ध रचनाएं हैं। दो चण्डी-चरित्र ब्रज एवं अवधी भाषा में और एक पंजाबी में है। वीर काव्य के अनुरूप आरम्भ में प्रभु की स्तुति है, चण्डी का गुण-गान है। कवि की आधार भूमि दुर्गा-सप्तशती है परन्तु इसी रचना में कवि की मौलिकता सर्वत्र लक्षित होती है। यहाँ आरम्भ में प्रभु की स्तुति और चण्डी का गुणगान किया गया है, जबकि दुर्गा सप्तशती में चमत्कार और अतुल शक्ति का प्रदर्शन किया गया है जिस से श्रद्धा की भावना तो जागृत होती है किन्तु वीरता की प्रेरणा नहीं मिलती। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने इसी रचना अपने काल की परिस्थितियों के फलस्वरूप की। वे धर्म युद्ध के प्रेरक थे और जनता को भी इसी रंग में रंगना चाहते थे। कवि को कोई न कोई आधार लेकर उसके सामने एक आदर्श उपस्थित करना था जो उन्होंने चण्डी चरित्र की रचना द्वारा किया। इसमें कुल २३३ पद्य हैं और इसको सात अध्यायों में बांटा गया है।

प्रथम अध्याय के १२ पद्यों में अकाल पुरुष का स्मरण किया गया है और तदनन्तर देवी की वन्दना की है।

द्वितीय अध्याय में ४० पद्य में देवताओं का महिषासुर के साथ युद्ध तथा उसके वध का वर्णन है। उसके साथ ऐसा भयंकर युद्ध हुआ कि सारी पृथ्वी पर रुधिर की नदी बह उठी। शेष देवता कैलाश पर्वत पर जाकर देवी की आराधना करते हैं तो वहां देवी प्रकट हो जाती है। एक दिन दुर्गा स्नान करने बाहर आई। वहां इन्द्रादि देवताओं ने अपनी व्यथा सुनाई। इस घटना का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण के ८५ वें अध्याय में मिलता है। चण्डी चरित्रों के रचयिता के सम्मुख इस कथा की पौराणिक पृष्ठभूमि एवं संलग्न अनेक कथाएं इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितनी इस कथा के मूल स्वर। इसलिए कवि पौराणिक चर्चा को सूत्र रूप में वर्णन कर तुरन्त मूल विषय पर आ जाता है। इन पौराणिक प्रसंगों के देशी भाषा में वर्णन की पृष्ठभूमि पर तत्कालीन जनता में वीर भावों की सृष्टि का महत् उद्देश्य था इसलिए कवि के लिए

इन कथाओं के मूल स्वर-- युद्ध प्रसंगों का विस्तृत वर्णन का चित्रण ही अभिप्रेत था।[३९] डा० रत्नसिंह जग्गी भी इसी मत से सहमत हैं--" प्रस्तुत चण्डी चरित्र में युद्ध का अधिक वर्णन हुआ है और अमानवीय शक्तियों का अस्तित्व न होने के कारण यह युद्ध स्वाभाविक अधिक है।"[४०] इस अध्याय का नाम स्वयं कर्त्ता ने ` महषासुर वध ` रखा है।

दुर्गा देवताओं की व्यथा सुनकर युद्ध के लिए तैयार हो जाती है और राक्षसों के साथ युद्ध करती है। युद्ध वर्णन के पद्यों की संख्या २५ है। इसमें महिषासुर को मार देती है और इन्द्र को राज्य प्राप्त हो जाता है।

तृतीय अध्याय : इस अध्याय में कुल ४८ पद्य हैं। इनमें शुंभ-निशुंभ राक्षसों के साथ देवी का युद्ध वर्णन है। इसमें देवी के सौन्दर्य पर शुंभ का मन मोहित होना , धूम्रलोचन दैत्य को देवी को पकड़ने के लिए भेजना परन्तु इस कार्य में सफलता न मिलना तथा अन्त में उसका मारा जाना है। कर्त्ता ने स्वयं इस अध्याय का नाम ` धूम्रनैन वध` रखा है। इसी अध्याय में काली की उत्पत्ति का भी वर्णन है--

१- भाल को फोर कै काली म ई लखि ता छवि को कवि को मनभीनो ।।
दैत समूहि बिनासन को जम राज ते मृत मेनो मकलीनो ।। ६४।।

चतुर्थ अध्याय : (चण्ड मुण्ड वध) धूम्रलोचन के वध के बाद चण्ड और मुंड नामक राक्षस दुर्गा से युद्ध करने के लिए आते हैं। दोनों राक्षस अपनी अपार सेना द्वारा देवी से युद्ध करते हैं और अन्त में दोनों ही देवी की तलवार का शिकार हो जाते हैं। इसमें कुल १६ पद्य हैं।

पंचम अध्याय : (रक्तबीज वध) पद्य संख्या ५६ है। चण्ड-

३९- डा० महीपसिंह, गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता,पृ० १०८।
४०- दशम ग्रन्थ का पौराणिक अध्ययन: पृष्ठ ११२ ।

मुण्ड सेनानियों की मृत्यु के पश्चात् शुम्भ और निशुंभ ने रक्तबीज को एक विशाल सेना देकर युद्ध करने के लिए भेजा। कवि ने चण्डी चरित्र में अलौकिकता का समावेश कम ही किया है। इसका प्रमाण हमें युद्ध में उस युग के अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग द्वारा मिलता है। एक उदाहरण देखिए---

वीरन के करते छुट तीर सु चंडका सिंघनि जिउ मभकारी ।।
लै करि बान कमान कृपान गदा गहि छुरी अउ कटारी।।१३२।।[४१]

रक्तबीज को यह वरदान प्राप्त था कि जितनी भी उसके रक्त की बून्दें पृथ्वी पर गिरती थीं उतने ही रक्तबीज और उत्पन्न हो जाते थे। दुर्गा ने अपने मस्तक से ज्वाला प्रकट करके काली को जन्म दिया और काली को कहा कि मैं रक्तबीज का वध करती हूं, उसका रक्त पी लो+ और इस प्रकार चण्डी और काली ने मिलकर रक्तबीज का संहार कर दिया--

चण्डी दिओ विदार सऊन पान काली करिउ ।।
छिन मै डारिउ मार प्रउनत बिंद दानव महां ।।[४२]

षाष्ठ अध्याय : (निसुंघ वध) पद्य संख्या ३० । रक्त बीज की मृत्यु को सन्देश सुंभ और निसुंभ के पास भेज दिया। सुंभ-निसुंभ बहुत क्रुद्ध हुए और अपनी शक्तिशाली सेना लेकर वे चण्डी और काली से स्वयं युद्ध करने आए। दैत्यों की सेना से चण्डी और काली ने बड़ा भयंकर युद्ध किया--

चण्डका लै बान अउ कमान काली कृपान,
छिन मधि कै कै बल सुंघ की हनी अनी ।।
उरत जि खेत महां प्रेत कीने, बानन सो बिचलै बिथर ऐसे भाजगी
अनी कनी ।

४१- दशम ग्रन्थ :पृष्ठ ८६ ।

४२- -वही- पृष्ठ ६१ ।

जैसे बारु थल मै सबूह बहै पउन झूके,
घूर उड़ि चलै हुकै कोटिक कनी कनी ।।[४३]

इतना घमासान युद्ध हुआ कि दोनों देवियों की शक्ति उन राक्षसों के सामने कम प्रतीत होने लगी। विष्णु ने चण्डी की सहायता के लिए देवताओं की शक्तियों को रणभूमि में भेजा। ये सारी शक्तियां आकर देवी में समा जाती हैं। देवी का निसुंभ के साथ बड़ा भयंकर युद्ध होता है और अन्त में चण्डी उसका अपनी तलवार से वध कर देती है।

सप्तम अध्याय :(सुंभ वध) पद्य संख्या ६ । निशुंभ का वध हो जाने पर पराजित राक्षस शुंभ को उसके भाई की मृत्यु की सूचना देते हैं। शुंभ की क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह अपार सेना लेकर युद्ध करने चल पड़ा। युद्धभूमि में अपने भाई के मृतक शव को देखकर वह बड़ा ही दुखी हुआ। (यह प्रसंग दुर्गा सप्तशती में उपलब्ध नहीं है। इसकी योजना कवि ने स्वयं की है।) दुर्गा सप्तशती में सर्वत्र चमत्कार आलौकिकता का पुट मिलताहै और इसमें कवि की मौलिक विचारधारा।) इसका स्पष्टीकरण करते हुए डा० महीपसिंह लिखते हैं---"दुर्गा सप्तशती एक इस प्रकार की पौराणिकता के गुणों से भरपूर रचना है जिसमें चमत्कार, आलौकिकता का आश्रय सर्वत्र लिया गया है। वह अलौकिकता भक्तों की श्रद्धा को तो सन्तुष्ट करती है, किन्तु वीरों की वीरता को प्रेरित नहीं करती। गुरु गोबिन्दसिंह की इस रचना की सृष्टि का उद्देश्य चण्डी के भक्तों की सन्तुष्टि न होकर तत्कालीन परिस्थितियों में धर्म युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे वीरों में वीर भाव का निर्माण करना है। इसलिए कवि ने इस रचना में चण्डी की अलौकिकता को यथाशक्ति दूर रखा है+ और सम्पूर्ण वर्णन में तत्कालीन परिस्थितियों का परिप्रेक्ष्य दूर नहीं होने दिया।"[४४] अन्तत: हार शुंभ की ही होती है।

४३- दश म ग्रन्थ, पृष्ठ ६२ ।

४४- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ ११३ ।

अष्टम अध्याय :- अन्तिम अध्याय में देवी की महत्ता बताई गई है। देवी सन्तों की रक्षा तथा असन्तों का नाश करती है। सब देवता देवी की सुतुति करते हैं। देवी का यश तीन लोकों में व्याप्त है। वास्तव में कवि की यह रचना अद्भुत है। वह इस रचना द्वारा जनता को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। वे देश में एक नवीन क्रांति लाना चाहते हैं। उसका युद्ध केवल युद्ध नहीं है-- धर्म युद्ध है। इस युद्ध की तैयारी के लिए उसे सैनिक चाहिए, स्वयं सेवक चाहिए, धन चाहिए, अस्त्र-शस्त्र चाहिए, हाथी घोड़े चाहिए, रसद सामग्री, तम्बू-कनात चाहिए, अनेकानेक वस्तुएं चाहिए। किन्तु ये तो बाह्य-उपकरण हैं, क्या सैनिकों, शस्त्रों, हाथी घोड़ों, धन और रसद पानी से युद्ध जीते जाते हैं? चण्डी चरित्र का रचयिता जानता था कि इन बाह्य उपकरणों की उपस्थिति में भी युद्ध हारे जा सकते हैं और इन उपकरणों के अभाव में भी युद्ध जीते जा सकते हैं और वह वस्तु जो संघर्ष में विजय प्राप्त करती है, इन बाह्य उपकरणों में न होकर हृदय में होती है।[४५]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट विदित होता है कि कवि जनताकी सोयी हुई भावना को जागृत करना चाहता था।

चण्डी चरित्र में भी कवि भारत जन-आन्दोलन को एक नई दिशा देते हैं। इसीलिए वे कहते हैं कि इस ग्रन्थ ग्रन्थ को जो जिस भावना से पढ़ेगा उसकी भावना अवश्य पूर्ण होगी। देवी-शक्ति का भण्डार है और युद्ध में विजय दिलवाने वाली है।

जाहि नमित पढ़े सुनिहै नर, सो निसचै करि ताहि दई है।।२३२[४६]

कवि इस रचना में अपनाउद्देश्य भी स्पष्ट करता है जिसके लिए उसने इसकी रचना की। वह स्वयं शक्तिशाली है और देवी से भी शक्ति की याचना

४५- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ ११५।

४६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६६।

करता है। वह अत्याचारी मुगल शासकों से बदला लेना चाहता है और रण-भूमि में निश्चय ही अपनी विजय चाहता है। उसे शान्ति तभी प्राप्त होगी जब वह युद्ध करते-करते अपने प्राणों की बलि दे देगा। देखिए कितने सुन्दर शब्दों में कवि ने इन भावों की व्यंजना की है---

देहु शिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं ।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं, निसचै करि आपुनि जीत करौं ।।
अरु सिक्ख हौं आपने ही मन को, इह लालच हउ गुन तउ उचरौं।।
जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरौं ।।[४७]

३- चण्डी-चरित्र (द्वितीय)

इसमें आठ अध्याय और २६२ पद्य हैं। इसकी काव्य शैली प्रथम चण्डी-चरित्र से सर्वथा भिन्न है। प्रथम में केवल सवैया छन्द का ही प्रयोग हुआ है+ जबकि इसमें कवित्त, दोहा, चौपाई आदि का प्रयोग है। इसमें कवि ने युद्ध की तीव्र, अत्यधिक तीव्र तथा मन्द गति के लिए छन्दों में कई बार परिवर्तन हुअ+ किया है। इसमें कुल १७ छन्दों का प्रयोग किया गया है और ५७ बार परिवर्तन हुआ है। इसमें म ो आठ अध्याय हैं। प्रथ अध्याय में ६ पद्यों में ब्रह्मा की स्तुति, बाद में चण्डी की स्तुति है। राजा सुरथ राजसत्ता खो बैठता है। वह मेधस कृषि के आश्रम में जाकर कर देवी की कथा सुनता है। प्रथम में मंगलाचरण किया गया है परन्तु इसमें ऐसा नहीं है।

प्रथम अध्याय :- महिषासुर राक्षस से इस की कथा आरम्भ होती है। यह राक्षस अत्यन्त बली है जिसने इन्द्र पर भी विजय प्राप्त करके तीनों लोकों में अपना राज्य स्थापित कर लिया। सभी देवता भयभीत हो गए और अपनी व्यथा दुर्गा को सुनाई। देवी ने देवताओं पर दया की और वह

४७- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६६ ।

युद्ध के लिए तैयार हो गई। यहाँ वीर रस के दया वीर की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। स्थायी भाव दया में उत्साह है जो देवी सहसा युद्ध के लिए तत्पर हो गई। दया के पात्र देवता हैं जो आलम्बन हैं। उनकी दीन दशा ही उद्दीपन है। अनुभाव सांत्वना के वाक्यादि हैं। संचारी कृति, मति रोमांचादि हैं। देखिए भवानी युद्ध के लिए चल पड़ी--

तबै देवीअं पाण बाणं संभारं ।।
हुनिया दुसट के धारए सीसं मझारं ।।
गिरियो झूम भूमं गए प्राण छुटटं ।।
मनो मेर को सातवों सृंग छुटटं ।।२४।।[४८]

इस अध्याय में महिषासुर के वध का प्रसंग आया है। इसमें ३८ पद्य हैं।

द्वितीय अध्याय : (धूम्रनैन वध) पद संख्या २६ । महिषासुर की मृत्यु के बाद सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई। देवता प्रसन्न रहने लगे। बहुत समय बाद शुंभ और निशुंभ नामक राक्षस उत्पन्न हुए। उन्होंने अपार शक्ति अर्जितकर ली और देवताओं को पराजित कर दिया। शेषनाग को अपने मुकुट की मणि से भी हाथ धोना पड़ा। देवता चिन्तित हो गए। उन्हें कोई भी मार्ग नहीं सूझता था। अन्त में वे अपनी व्यथा सुनाने के चण्डी की शरण में गए। देवताओं की प्रार्थना सुनकर देवी राक्षसों से युद्ध करने के लिए तत्पर हो गई। धूम्रलोचन ने राक्षसों की सेना का नेतृत्व किया। चंडी और उसका सिंह दोनों ही शत्रु सेना का संहार करने लगे। अन्त में काली ने धूम्रलोचन को मार डाला और शेष सेना के पैर उखड़ गए।

तृतीय अध्याय : (चण्ड-मुण्ड वध) पद्य संख्या १३ । धूम्रलोचन का वध का समाचार सुनकर चंड और मुंड नामक राक्षस युद्ध करने के लिए आए। इस अध्याय में युद्ध का वर्णन बड़ा ही सजीव हुआ है। शब्दों का चयन युद्धानुकूल

४८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०१ ।

हुआ है। अन्त में --

चंड मुंड मारे दोऊ काली कोप कवार ।।
अउर जिती सैना हुती क्षिन मो दई संघार।।[४९]

चतुर्थ अध्याय : अथ रक्तबीज युद्ध कथन, पद संख्या ४५। चण्ड और मुण्ड की मृत्यु के बाद शुंभ ने अपने भाई निशुंभ के साथ परामर्श किया और रक्तबीज को युद्ध के लिए भेजा। उसकी सैन्य शक्ति देखकर देवलोक भयभीत हो गया, भूमि कांपने लगी, आकाशचकित रह गया। रक्तबीज और देवी में घमासान युद्ध हुआ। बाणों की वर्षा हो रही है। बड़े-बड़े वीर युद्धभूमि में युद्ध करने जुट गए--

मरे बीर हरखं ।। करी बाण बरखं ।।
चवं चार हुक्के ।। पक्के आहु रुक्के ।। [५०]

युद्ध चित्रण सजीव बनाने के लिए कवि ने संगीत स्वरों की योजना की है। कविता के अर्थ की दृष्टि चाहे उनका विशेष महत्व नहीं किन्तु पढ़ते हुए जो ताल और लय का अनुभव होता है वह निराला ही है। इस ताल मृदंग यन्त्र की ध्वनि गूंजती है। संगीत मुजंग प्रयास छन्द का उदाहरण देखते ही बनता है।

दागड़दंग दानो भागड़दंग भाजे ।। गागड़दंग गाजी बागड़दंग गाजे ।।
छाबड़दंग छऊ हो छुरे प्रेछड़ाके।। तागड़दंग तीरं तुपकं छड़ाके।। [५१]

रक्तबीज अपनी राक्षसी लीला दिखला कर अनेक रूप धारण करता है। देवी सबका संहार करती है। उसके रक्त की बूंदों को काली पी जाती है----

जितेक रूप धारीयं ।। तितेक दैवि मारीयं ।।
जितेक रूप धारहीं ।। तितओ दुर्गा संघारहीं।। [५१]

४९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०५। ५०- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०६।
५१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०८ ।

इस प्रकार वह रक्तहीन हो गया और भूमि पर गिर पड़ा।

पंचम अध्याय : अथ निसुंभ युद्ध कथनं , पद संख्या ३४। रक्तबीज की मृत्यु के बाद शुंभ निसुंभ सेना लेकर युद्ध करने आए। चन्द्र और सूर्य भी डर गए। युद्ध का चित्रमय दृश्य बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। अन्ततः दुर्गा ने निसुंभ को भी मृत्यु-शैय्या पर सुला दिया।

षष्टम अध्याय :- अथ सुंभ युद्ध कथनं, पद्य संख्या ६३। सुंभ अपने भाई के वध का समाचार सुनकर बदला लेने चल पड़ा। बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध के बाजे बज रहे हैं। जोगनियों और डाकनियों हर्षित हो रही हैं। शस्त्रों की ध्वनि पहले के समान वीरों के हृदय में उल्लास तथा भीरु जनों के हृदय में भय और आतंक भर रही है। सुंभ काफी समय तक देवी से युद्ध करता है और अन्त में मारा जाता है। शब्दों का चयन युद्ध के अनुसार किया गया ह। ये पाठकों के हृदय को उत्तेजित करके वीरोचित भाव भरने में पूर्णतया सफल हैं।

कवि ने यहाँ जो दुर्गा माता को निवेदन किया है , उससे उनके जीवन और कृतित्व का मनोरम लक्ष्य स्वयं सिद्ध है--

जिम सुंभा सुर को हना अधिक कोप कै काल ।।
त्यों साधन के सत्र चाबत जाँह कराल ।।६३।२१६।।

जिस प्रकार हे देवि! तुमने सुंभ राक्षस को मारा है, वैसे ही साधु जनों के सभी शत्रुओं को चबा जाओ।

सप्तम अध्याय :- अथ जैकार शब्द कथनं । इस में सब देवता मिल कर देवी की स्तुति करते हैं। इसमें ३७ पद्यों में देवी की स्तुति ही की गई है जिसमें उसमे सभी गुणों एवं युद्धों का वर्णन कर दिया गया है। कवि ने यहाँ युद्ध सम्बन्धी जो नई शब्दावली एवं विशेषण दिए हैं, वह अद्वितीय हैं--

नमो युद्धनी कुद्धनी क्रूर करमा ।।
महा बुद्धनी सिद्धनी सुद्ध करमा ।।
परी पदमनी पारबती परम रूपा ।।
सिवी बासवी ब्राहमी रिद्ध कूपा।।[५२]

देवी के अनेक रूप हैं। अनेक शस्त्रों के रूप में कवि देवी के ही दर्शन करता है--

नमो चापनी चरमनी खड़ग पानं ।।
गदा पाणिणी चक्रणी चित्र माणं ।।
नमो सूलणी सैहथी पाणि माता ।।
नमो गिआन बिगिआन की गिआन गिआता ।।[५३]

यहाँ कोई भी ऐसा नाम न बचा होगा, जो कवि ने दुर्गा के स्तवन हेतु न लिया हो।

मार्कण्डेय पुराण के इक्यानवें अध्याय में देवताओं ने देवी की इसी प्रकार स्तुति की है।[५४] इस अध्याय का उसका अत्यन्त प्रभाव है। मार्कण्डेय पुराण में देवी की सभी रूपों की स्तुति की गई है जबकि इस चण्डी चरित्र में कवि को अधिकतर राक्षसों का नाश करने वाली और सन्तों का उद्धार करने वाली रूप ही अत्यन्त प्रिय है।

अष्टम अध्याय : अथ चण्डी चरित्र उस्तत बरननं ।` यहाँ ६ पद्यों में चण्डी का गुणगान किया गया है। जो भक्त जन आपके नाम का विरद गाएगे, वे मोक्ष-फल प्राप्त करेंगे तथा भगवान को प्राप्तकरेंगे+---

---

५२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ११५-११६ ।
५३- -वही- ।
५४- डा० रत्नसिंह जग्गी, दशमग्रन्थ का पौराणिक अध्ययन, पृष्ठ ११५।

जे जे तुमरे धिआन को नित उठि धिऐहैं सन्त ।।
अन्त लहैंगे मुकत फलु पावहिगे भगवन्त ।।[५५]

चण्डी चरित्र प्रथम तथा द्वितीय की कथा मिलती जुलती है। इनमें युद्ध वर्णन ही अधिक विस्तार से हुआ है। डा० हरिभजनसिंह का विचार है--" इन सभी रचनाओं में कथा का अंश अत्यन्त न्यून है। कथा युद्ध के कारण एवं युद्धों के क्रम की ओर संकेत कर देती है। युद्ध वर्णन अथवा युद्ध चित्रण ही इन कथाओं का प्रमुख तत्व है।"[५६] वे उद्देश्य के बारे में लिखते हैं--" दैवी शक्तियों की आसुरी शक्तियों पर विजय दिखाना ही इन काव्य-कृतियों का उद्देश्य है।"[५७]

डा० जग्गी के विचार भी द्रष्टव्य हैं---" सारांश यह है कि प्रस्तुत चण्डी चरित्र का का स्रोत मारकण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती है। चरित्र के कवि का विशेष मोह युद्ध वर्णन में रहा है। कथासूत्र तो केवल युद्ध घटनाओं को परस्पर जोड़ने के लिए प्रयोग में लाए गए हैं। कई स्थानों पर कवि मूल कथा से हटा भी है। विशेष रूप में रक्तबीज, महिषासुर के युद्ध प्रसंगों में।"[५८]

कवि की भावना यहां स्पष्ट विदित होती है। ग्रन्थ की भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रज है। यत्र-तत्र फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है। चण्डी चरित्र (प्रथम) में सवैया छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है। इसके साथ ही सवैया, दोहरा, सोरठा, तोटक , रेखता छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। चण्डी चरित्र (द्वितीय) में भुजंग प्रयात छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त कबित्त, नराज, रसावल, दोहा, भुजंग प्रयात, तोटक, चौपाई-मधुमार, रूआवल, रूआल, सोरठ, विजय, मनोहर, वेलिविद्रुप, संगीत, मधुरा, कलक छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

५५- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ११६ ।
५६- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २२२ ।
५७- -वही- पृष्ठ २२३ ।
५८- डा० जग्गी , दशमग्रन्थ दा पौराणिक अध्ययक, पृष्ठ ११६ ।

गुरु जी दुर्बल राष्ट्र में वीरता की भावना भरना चाहते थे। उन्होंने वीर साहित्य की रचना भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए की है, जिस में चण्डी चरित्र को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।[५९]

डा० दीवाना के शब्दों में--" चण्डी चरित्र में अपने सम्पूर्ण स्नेह एवं भय सहित शक्ति का उद्घाटन हुआ है।"[६०]

४- चण्डी दी वार

इसका दूसरा नाम ' वार श्री भगौती जी की' भी है। आरंभ में ' प्रथम भगौती सिमरकै ' उक्ति के द्वारा भगवती के स्मरण, स्तुति एवं वन्दना की गई है। इसमें भी वही वर्णन है जो चण्डी चरित्र उक्ति विलास तथा चण्डी चरित्र द्वितीय में है। इस वार में जो चेण्डी की स्तुति की गयी है, वह कोई शरीरधारी देवी अथवा नायिका नहीं अपितु वह तो अनन्त, अपार, अनादि, अनश्वर, एवं देश-कालातीत महाशक्ति का प्रतीक, वीर रस की पराकाष्ठा और सर्वकाल के लिए सर्वभयहारिणी एवं सर्व सुखदातृशक्ति है। चण्डी की स्तुति में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है---

१- पृथम भगौती सिमर कै गुरु नानक लई धिआय ।।

oo oo oo

---

५९ -Guru Govind Singh wanted to revive the ancient spirit of Kshatriyas and breathe valour into the reign of old dying nation . . . .. . D.P. Ashta, poetry, of Dasam Granth, page 53.

६० -His chandi Charitra unveils Shakti in all her affection Awe. - A History of Panjabi Literature, page, 68.

२- खण्डा पृथमै साज कै जिन सभ संसार उपाइया ।।
ब्रह्मा बिसन महेस साजि कुदरती दा खेलु रचाइ बनाइआ ।।
०० ०० ००

३-क तै ही दुरगा साजि कै दैतां दा नास कराइआ ।।
तैथों ही बलुराम लै नाल बाणा दहसिरु घाइआ ।।
तैथों ही बलु कृसन लै कंसु केसी पकड़ि गिराइआ ।।
बड़े बड़े मुनि देखते कहं जुग तिनी तनु ताइआ ।।
किनी तेरा अन्त ना पाइआ ।।२।। ६१

इसमें कल और नारक की परम्परानुसार पौराणिक कथा को आधार बनाकर देव-दानव युद्ध का अत्यन्त मार्मिक, उत्साहवर्द्धक, सजीव एवं वीरोचित चित्रण किया गया है, जिसमें अपने सहायक रसों के साथ वीर रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है। मूल कथा वही मार्कण्डेय पुराण तथा वही दुर्गा सप्तशती एवं दोनों चण्डी चरित्रों वाली है। किन्तु इस रचना की सर्वाधिक महत्ता इस बात में है कि दशम ग्रन्थ के रचयिता ने अपने भावोद्दीपन के लिए वीर काव्य का अपना काव्य रूप `वार` अपनाया है। `वार` साहित्य का स्थान पंजाबी साहित्य में वैसा ही है जैसा हिन्दी वीर काव्य में रासो काव्य का है। `वार` का प्रयोग बलिहार होना, प्रशस्ति लिखना एवं बार-बार आदि के विभिन्न अर्थों में लिया जाता है। वार काव्य की अपनी ही विशेषताएँ हैं---

वार का अपना ही छन्द-प्रबन्ध, लय एवं गति होती है, जिसे `पउड़ी` कहा जाता है। इसे निसानी छन्द की संज्ञा भी दी जाती है। वीर भाव की अभिव्यक्ति के लिए यह निसानी छन्द सर्वथा उपयुक्त माना जाता है। इसमें पद के अन्त में तुकान्त होता है। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी वार में जहाँ एक ओर निशानी छन्द का प्रयोग किया है, वहाँ दूसरी ओर `सिरखंडी`

६१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ११६ ।

क्रन्द का भी प्रयोग किया है। निशानी और सिरखंडी में अन्तर यह है कि निशानी क्रन्द का अन्त्यानुप्रास सिरखंडी में मध्यानुप्रास हो जाता है और इस में अन्त्यानुप्रास नहीं रहता। ये दोनों क्रन्द भेद अपने राग, अनुभूति संवेदना, एवं लोकप्रियता के कारण पंजाब के लोकगीतों में एक विशेष महत्व रखते हैं। लोक गायक (कवीशर लोग) इसे जब अपनी ढड्ढ सारंगी पर गाते हैं तो कौन सा ऐसा प्राणी है जिसके मन में उत्साह एवं वीर भावना का उद्रेक नहीं होता। अत: यह वार काव्य रूप, निसानी एवं सिरखंडी क्रन्द रूप तथा पउड़ी का क्रमबद्ध प्रबन्ध वीर रस के अनुरूप दशमग्रन्थ के कर्ता की सर्वाधिक प्रामाणिकता, दक्षता एवं काव्य कौशल का परिचय देता है।

इस वार में कुल ४५ पउड़ियां हैं। इस प्रकार यह पूर्व वर्णित दोनों चण्डी चरित्रों से आकार में कहीं अधिक संदिप्त है। इसमें देव-दानव युद्ध का सफल चित्रण हुआ है। इस वार की एक और भी विशेषता इसकी संदिप्तत, सकुचित और सार्थक शैली है।

ग्रन्थ के आरम्भ में भगवती स्मरण के बाद कवि ने अपने से पूर्व के गुरुओं का स्मरण किया है। इन्द्र, दुर्गा के पास दैत्यों के अत्याचारों का सन्देश भेजते हैं। देवी उन्हें धैर्य बंधाती है और सिंहारूढ़ होकर युद्ध भूमि में पहुंचती है। महिषासुर से घमासान युद्ध होता है और अन्त में उसका वध कर देती है। देवताओं को राज्य मिल जाता है। इसके बाद सुंभ, निसुंभ पुन: इन्द्रपुरी को जीत लेते हैं। देवी पुन: युद्ध करती है। धूम्रलोचन राक्षस से युद्ध होता है। चुंड-मुंड राक्षस भी दुर्गा को पकड़ने के लिए आते हैं। यह सारी कथा चण्डी चरित्र प्रथम और द्वितीय से मिलती जुलती है। चण्डी श्रोणत बिन्दु (रक्तबिन्दु) से भी युद्ध करती है और इस प्रकार सारे राक्षसों का वध करके दुर्गा अथवा चण्डी देवताओं को राज्य दिलाने में समर्थ होती है।

इसे हम खण्ड काव्य की कोटि में रख सकते हैं। इसमें दुर्गा

और देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ की भाषा ब्रज मिश्रित पंजाबी है। भाषा सरल मगर ओजपूर्ण है। कई स्थानों पर फारसी शब्द भी रखे गए हैं। इस रचना का एक पद्य दोहा छन्द में भी लिखा गया है।

`चौबीस अवतार` में भी वीर रस योजना की दृष्टि से अनेक स्थल आए हैं। इनमें से अधिकांश स्थल हमारी तीसरी कोटि अर्थात् `वीर रसात्मक शैली एवं पृष्ठभूमि पर विरचित कृतियां` के अन्तर्गत आते हैं, जिनका सविस्तार विवेचन उसी प्रसंग में किया जाएगा। इस रचना में २४ अवतारों की नामावली इस प्रकार है--- मच्छ, कच्छ, नर, नारायण, महामोहिणी, वैराह, नरसिंह, बावन, परसराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालन्धर, बिसन, शेषशायी, अर्हन्तदेव, मानराजा, धनन्तर, सूरज, चन्द्रमा, राम, कृष्ण, नर (अर्जुन), बुद्ध, निहकलंकी।`

ये कथाएं हरिवंश पुराण (धन्वन्तरि), ब्रह्म वैवर्त्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, मार्कण्डेय (ब्रह्मावतार), भागवत पुराण, पद्म पुराण (नरसिंह, राम), शिवपुराण (वराह) आदि पुराणों से ली गई हैं। यहां कवि नाम `श्याम` दिया गया है। कवि आरम्भ में ही अवतार धारण करने के कारण पर प्रकाश डालता है--- जब जब होत अरिसटि अपारा । तब तब देह धरत अवतारा।"[६२]

यहां पर यह दर्शनीय है कि दशमग्रन्थ के कर्त्ता ने `रामावतार` तथा `कृष्णावतार` पर जो बल दिया है वह अन्य अवतार-कथाओं पर नहीं दिया । इन दो रचनाओं को प्रबन्ध की कोटि में रखा जा सकता है। इन दोनों काव्यों में भावों की मार्मिकता, विशदता एवं सजीवता है। इनमें वीरता तथा शौर्य, उत्साह एवं साहस, मिलन तथा वियोग, प्रकृति की छटा, तथा युद्धों का मार्मिक, आकर्षक और प्रभावशाली वर्णन है।

६२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १५५ ।

इन रचनाओं के मूल में कवि के अवतारवादी संस्कार काम करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक जन्मत: अवतारवादी ही है। " अवतारवाद पौराणिक भावना का मेरु-दण्ड है। गुरु जी ने अवतारवाद को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।"[६३] तथापि " सारांश यह कि दशमग्रन्थ में पौराणिक अवतारवाद स्पष्ट रूप में स्वीकार्य है, मगर इसकी कुछ अपनी मौलिक विशेषतायें भी हैं और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता सामयिक आवश्यकता-पूर्ति है।"[६४] डा० महीपसिंह इस बात पर सन्देह व्यक्त करते हैं, स्पष्ट निर्णय वे भी नहीं ले सके हैं।[६५]

५- रामावतार

राम-कथा युग-युग से दुहराई जाती रही है। दशमग्रन्थ के रचयिता ने भी इस श्रेष्ठ नीतियुक्त तथा वीर-रस पूर्ण प्रबन्ध काव्य की रचना करके राम-कथा के अपने युगानुकूल अर्थ स्थापित किए हैं। यह कथा बीन[६६] रूप में थोड़ी करके कही गई है। डा० हरिभजनसिंह ने " बीन " का अर्थ संक्षिप्त[६७] किया है, मगर संक्षिप्त तो " थोरिए" शब्द में भी आ ही चुका था, पुन: बीन शब्द रखने का प्रयोजन " चुना हुआ " अर्थ दर्शाना है। अत: यहाँ यह अभिप्रेत है कुछ महत्वपूर्ण मर्मस्पर्शी, चुने हुए कथा-प्रसंग। इसमें ८६४ पद्य हैं और यह दशमग्रन्थ के (पन्ना १५५ से २५४) सौ पृष्ठों में दर्ज है।

इस कथा का आरम्भ रघुवीरकथा से और अन्त लव कुश को राज्य देकर राम-लक्ष्मण सहित सारे अयोध्या वासियों के स्वर्गारोहण से होता है। रामजन्म से पूर्व की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। कवि ने यह कहकर " इन

६३- डा० हरिभजनसिंह: गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २०२ ।
६४- डा० रत्नसिंह जग्गी: दशमग्रन्थ दा पौराणिक अध्ययन, पृष्ठ १५६ ।
६५- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ १२३-२५ ।
६६- तिहते कही थोरीबै बीन कथा-- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १८८।
६७- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २०७ ।

बातन को इक ग्रन्थ बढ़ै, तहिते कहि थोरीए बीन कथा` कहकर छोड़ दिया है। राम बनवास, दशरथ मृत्यु, सीता की पति भक्ति, लक्ष्मण का भ्रातृ-भाव, जटायु वध, हनुमान का सीता का समाचार लाना, आदि का संक्षिप्त वर्णन किया है। इसमें कवि की रुचि युद्ध वर्णनों में अधिक रमी है।

इसका रचनाकाल सन् १६६८ ई० (तदानुसार १७५५ वि०) है। तुलसी ने अपने राम को अलौकिक माना है जबकि गुरु जी ने एक वीर पुरुष के रूप में अपनाया है। उनकी दृष्टि में--

राम परम पवित्र हैं रघुबंस के अवतार ।
दुष्ट दैतन के संघारक सन्त प्रान आधार ।
देसि देसि नरेस जीत असेस कीन गुलाम ।।
जत्र तत्र धुजा बधी जै पत्र की सम धाम ।।[६८]

परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि ने राम की अवतारणा किसी भक्ति-भाव के अधीन होकर नहीं की, अपितु उनके राम एक वीर पुरुष हैं, दुष्टों का दलन करने वाले हैं तथा साधु जनों का उद्धार करने वाले हैं। यही बात हमारे उपर्युक्त विचार की पुष्टि करती है कि दशमग्रन्थ के कवि को अवतारवाद में विश्वास था तो मात्र अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए एक लोक नायक को सामने लाना ही उन्हें अभिप्रेत था। राम एक सामान्य वीर-नायक की भाँति युद्धाग्नि में कूदते हैं, अपना क्रोध प्रदर्शित करते हैं तथा लोकोत्तर बन पराक्रम दिखला कर भयभीत, आतंकित तथा हताश एवं निराश देशवासियों को कर्मवाद का अमर सन्देश देते हैं। सम्पूर्ण रामावतार में आधे से अधिक प्रबन्ध में युद्ध का वर्णन है। इसमें वर्णित कथा इस प्रकार है। राक्षसों का प्रभाव बढ़ जाने से देवता विष्णु के पास जाते हैं और रामावतार होता है। पहले संक्षेप में रघुवंश का वर्णन है। रघु के बाद अज और अज के बाद दशरथ जन्म लेते हैं । राजा दशरथ के तीन रानियाँ हैं-- कौशल्या,

---

६८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २०३ ।

कैकेयी और सुमित्रा। वे ~~उन्हें~~ चार पुत्रों को जन्म देती हैं-- राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। चारों पुत्रों की उत्तम शिक्षा तथा शस्त्रास्त्र शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए ले जाते हैं। वहाँ राम ने ताड़का राक्षसी का वध किया और बाद में मारीच और सुबाहु के साथ अनेक राक्षसों का वध किया।

दूसरे प्रकरण में सीता स्वयंबर है। सीता राम के सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है। राम शिव धनुष का खण्डन करके सीता को वर लेते हैं। यहाँ राम-परशुराम सम्वाद होताहै परन्तु अन्त में परशु राम राम के ब्रह्म रूप को जानकर क्षमा याचना करते हैं।

तीसरा प्रकरण अयोध्या पहुंचने का है। राजा दशरथ राम की विजय का समाचार सुनकर हर्षोल्लासित होते हैं। अपने दूसरे पुत्रों का भी विवाह कर देते हैं। इस समय राजा दशरथ अश्वमेध यज्ञ भी करते हैं, तत्पश्चात् राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करते हैं। उसी समय मन्थरा कैकेयी को दो वरों का स्मरण कराती है। कैकेयी दो वरदान मांगती है। राम, लक्ष्मण और सीता सहित १४ वर्ष के लिए बनवास को चले जाते हैं।

चौथा प्रकरण राम बनवास का है। कौशल्या के पुत्र-वियोग का भी वर्णन है। राजा दशरथ परलोक सिधार जाते हैं। तभी भरत अपने ननिहाल से वापस आते हैं और अपनी माता कैकेयी को भला बुरा कहते हैं। वे राम से मिलने वन में जाते हैं और राम के वापिस न आने पर उनकी खड़ाऊँ को सिंहासन पर रख कर स्वयं भगवद् भजन में लीन हो जाते हैं। राम ने वन में विराध राक्षस तथा अन्य राक्षसों का वध किया।

पाँचवाँ प्रकरण वन-प्रवेश है। राम अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाते हैं। मुनि उन्हें बाण भेंट करते हैं जिससे राम अनेक राक्षसों का वध करते हैं। शूर्पनखा का राम के सौन्दर्य पर मोहित होना तथा लक्ष्मण का शूर्पनखा का नाक काटना परम्परागत रूप में बताया गया है।

छठे प्रकरण में शूर्पनखा जाकर अपने भाई रावण को अपमानित होने की सूचना देती है जिस कारण रावण ने खर और दूषण राक्षसों को भेजा। खर-दूषण से युद्ध का वर्णन बहुत सजीव बन पड़ा है।

सातवां प्रकरण सीता हरण का है। रावण ने मारीच को सोने का मृग बनकर राम के पास जाने को कहा। उधर मारीच का वध होता है और दूसरी ओर सीता का हरण हो जाता है।

आठवें प्रकण में राम सीता के वियोग में व्याकुल होते हैं। लक्ष्मण उन्हें धैर्य बंधाते हैं। मार्ग में जटायु मिलता है। जिससे रावण द्वारा सीता-हरण का पूर्ण समाचार मिलता है। हनुमान और सुग्रीव से भी मिलन होता है। वे राम को सहायता करने का वचन देते हैं। राम सुग्रीव के दुष्ट भाई बाली का वध भी करते हैं।

नवां प्रकरण हनुमान द्वारा सीता की खोज का है। हनुमान राम की अंगूठी लेकर सीता के पास पहुंचते हैं। लंका को जलाते हैं, अशोवाटिका ध्वंस करते हैं। हनुमान जब लौटकर राम को सूचना देते हैं। एक बड़ी सेना के साथ रावण से युद्ध की तैयारी की जाती है। रावण अकंपन, जांबमाली और धूम्राक्ष को मुकाबले के लिए भेजता है। अंगद इस सब का नाश कर देता है। अंगद रावण की सभा में पैरा जमा देता है और कोई भी उनके पैर को हटा नहीं सकता। अंगद विभीषण को लेकर राम के पास पहुंच जाता है। मंदोदरी रावण को अनेक प्रकार से समझाती है, पर रावण अपना हठ नहीं छोड़ता।

दसवां प्रकरण-- इसमें रावण का मन्त्री प्रशस्त युद्ध करने के लिए जाता है। परन्तु नल द्वारा मारा जाता है। इसके बाद कुंभकर्ण युद्ध करने जाता है। सुग्रीव उस पर पर्वत फेंक देता है, जिससे उसकी जांघें टूट जाती हैं। इसके बाद राम उसे अपने बाणों से मार देते हैं।

ग्यारहवें प्रकरण में हनुमान त्रिमुंड दैत्य की तलवार छीनकर उसे

उसी की गर्दन धोंप कर मार डालते हैं।

ग्यारहवें प्रकरण में रावण के महोदर मन्त्री को राम ने उस की सेना सहित मार डाला।

तेरहवें प्रकरण में मे इन्द्रजीत मेघनाथ की सेना के साथ युद्ध का वर्णन है। उसके द्वारा की गई बाण-वर्षा से राम लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता ने नाग मन्त्र पढ़कर नागपाश को काट दिया। तभी लक्ष्मण मेघनाद को मार देते हैं। ये प्रसंग परम्परागत प्रसंगों से भिन्न हैं।

चौदहवें प्रकरण में अतिकाय दैत्य का वध वर्णित है।

पन्द्रहवें प्रकरण में राम मकराक्ष राक्षस को मार गिराते हैं।

सोलहवें प्रकरण में राम रावण युद्ध वर्णित है। दोनों पक्षों में घमसान युद्ध होता है। रावण से लड़ते हुए लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं, जिससे राम व्याकुल हो जाते हैं। तभी हनुमान संजीवनी बूटी से उन्हें जीवित कर देते हैं। रावण पुनः शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर राम से युद्ध करने आता है। राम उसे रथ-विहीन कर देते हैं। उसकी भुजाओं और सिरों को काट देते हैं और पुनः सीता का वरण करते हैं। विभीषण को लंका का राज्य देते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा की जाती है।

सतारहवें प्रकरण में राम सीता सहित पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या वापिस आते हैं और सारे नगरवासी मिलने के लिए उमड़ पड़ते हैं।

अठारहवां प्रकरण-- इसमें राम माताओं के चरणों में गिर पड़ते हैं। भरत राम से मिलते हैं। राम का राज्याभिषेक होता है। कृष्णि मुनि भी राम से मिलने आते हैं। ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने का भी प्रसंग भी है।

उन्नीसवें प्रकरण-- सीता पाँव भारी होने के कारण वन-भ्रमण की इच्छा प्रकट करती है। राम उन्हें भेज देते हैं। लक्ष्मण उन्हें अकारण जंगल में छोड़कर चले जाते हैं। सीता व्याकुल होकर रोने लगती है। महर्षि वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में ले जाते हैं। लव नामक पुत्र को जन्म दिया। एक बार सीता जी नहाने गईं तो अपने पुत्र को भी साथ ले गईं। इतने में कृष्णि ने बालक को न पाते हुए एक उसी के सदृश बालक की सृष्टि कर डाली। सीता दोनों पुत्रों को पालन करने लगीं। राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। लव ने घोड़े को बाँध लिया जिसके कारण राम-सेना तथा लव-कुश में घमासान युद्ध हुआ लव और कुश ने भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और राम को मूर्च्छित कर दिया और सीता के पास सब शवों और घोड़ों के पास पहुचे।

बीसवें प्रकरण में सीता ने हाथ में जल लेकर अपने सतीत्व बल से सबको जिला दिया।

इक्कीसवाँ प्रकरण-- राम तथा सीता लव-कुश के साथ अयोध्या लौटे। यहाँ राम ने १० बार राजसू यज्ञ, २१ प्रकार के अश्वमेध यज्ञ तथा ६ बार नागमेध यज्ञ किये और वैदिक धर्म का प्रचार किया। राम दे दस हज़ार वर्ष तक राज्य किया। उनकी माताएं परलोक सिधार गईं। सीता ने एक दिन स्त्रियों के कहने से रावण का चित्र दीवार पर खींचा। इससे राम को संदेह हुआ। यह बात सीता के लिए असह थी। वह शीघ्र ही पृथ्वी में समा गईं। राम ने भी योग बल से प्राण त्याग दिये। इसके बाद लक्ष्मण, भरत और श त्रुघ्न ने भी प्राण त्याग दिये। तदुपरांत लव और कुश ने दूर तक राज्य विस्तार किया तथा शासन किया।

हमारे उपर्युक्त मत की पुष्टि इस रचना के अन्त में दिए गए स्तुति-वाक्य से भी होती है। यद्यपि इस कथा को सुनने-गाने का महात्म्य भी कहा गया है, तो भी दशमेश जी यहाँ अपना लक्ष्य दोहराते हुए स्पष्ट रूप से असपान (असि पानि) या काल से ही आत्म निवेदन करते हैं। राम,

रहीम, पुराण और कुरआन, स्मृति तथा शास्त्र को नहीं मानते हैं+--

- पाय गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख तरे नहीं आन्यो ।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो ।।
सिम्रिति सासत्र बेद सभै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो ।।
श्री असपान कृपा तुमरी करि मै न कह्यो सभ तोहि बखान्यो।।

` मै न कह्यो सभ तोहि बखान्यो ` से स्पष्ट है कि यह राम-कथा उन्होंने परम्परा-वश काल के निमित्त कही है, भक्ति और श्रद्धा के कारण नहीं। ७०

यह रचना पंजाब में लिखे गए प्रबन्धों में एक विशिष्ट स्थान रखती है। आधी रचना में युद्ध वर्णन यह सिद्ध करता है कि यह कथा वीर रस की निष्पत्ति की दृष्टि से ही लिखी गई। यह बात कवि के छन्द-चयन में भी परिलक्षित है। युद्ध वर्णन की प्रधानता होने के कारण वीर रस के ही साथ मिले हुए रौद्र, बीभत्स तथा भयानक रस भी आए हैं जो वीरों के उत्साह की वृद्धि करते हैं और रस-निष्पत्ति में सहायक होते हैं।

इन युद्धों का मुख्य कारण दुष्टों का नाश, राक्षसों का संहार सन्तों की रक्षा तथा धर्म की रक्षा करना है। इसलिए वीर रस में उदारता है। गुरु गोविंदसिंह जी ने अपने काल की परिस्थितियों को भली भाँति परखा था और राम को वीर पुरुष मानकर जनता के सामने वीरता का आदर्श रखा था। मुगल शक्ति को राक्षसी शक्ति मान कर उसके विरुद्ध लड़ने के लिए साहस और उत्साह का संचार किया था। इससे सिद्ध होता है कि रामावतार युग चेतना से अनुप्राणित एक श्रेष्ठ वीर रस पूर्ण प्रबन्ध है।

७०- दशम ग्रन्थ : पृष्ठ २७४ ।

६- कृष्णावतार

'कृष्णावतार' का बचित्र नाटक की चौबीस अवतार कथाओं में विशिष्ट स्थान है। यह इक्कीसवाँ अवतार है। इस प्रबन्ध में २४९२ पद्य हैं। कृष्ण चरित्र पर प्रबन्ध काव्य लिखने की परम्परा कोई प्राचीन नहीं है, जबकि राम चरित पर अनेक प्रबन्ध काव्य उपलब्ध होते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इस रचना का उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। उनके सामने एक ही ध्येय था कि अपने देश, जाति और धर्म की रक्षा की जाए और इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अनेक अवतारों का सहारा लिया और जनता के सामने एक वीर, पराक्रमी, योद्धा और शूरवीर का आदर्श रखा। उनके कृष्ण और राम राक्षसों और अत्याचारियों को नष्ट करने के लिए ही अवतरित हुए। उनकी निम्न पंक्तियों में इसकी रचना का समय और उद्देश्य स्पष्ट अंकित है--

'दसम कथा भागौत की, भाखा करी बनाए ।।
अवर वासना नाहि प्रभु, धरम जुध का चाए।।'[७१]

हमारा कवि स्पष्ट संकेत करता है कि इस ग्रन्थ की रचना करने का उनका उद्देश्य मात्र धर्म-युद्ध के लिए जनता को कटिबद्ध करना हो। कृष्णावतार की यह कथा दशम ग्रन्थ के पन्ना २५४ से लेकर ५७० तक ३१६ पृष्ठों में फैली हुई है। इसमें कुल पद्य २४९२ हैं। कथाक्रम की दृष्टि से इस प्रबन्ध को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है--- बाल-लीला, रास-मण्डल, गोपी-विरह तथा युद्ध-वर्णन। पहले तीनों प्रसंग भी यद्यपि सुरुचिपूर्ण हैं, मगर इन का वर्णन पहले सौ पन्नों तक और प्रथम ७५६ पद्यों तक ही सीमित है। गोपी-विरह प्रसंग में वृषासुर-कंस, विश्वासुर दैत आदि का ही अधिक वर्णन है। इससे स्पष्ट होता है कि गुरु जी ने ये प्रसंग मात्र परम्परा का

७१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५७० ।

निवाहि करने के लिए ही जोड़े हैं। उन्हें तो कृष्ण का वीर रूप ही अधिक प्रिय था, इसीलिए उनके युद्धों में उनकी विशेष रुचि भी रही है। डा० हरिभजनसिंह का कथन है--" गुरु गोबिन्दसिंह का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जबकि पंजाबी-हिन्दी-काव्य का प्रधान स्वर स्त्रैण था। गुरु गोबिन्दसिंह का स्वर इससे सर्वथा विलक्षण है। उनका प्रिय रस वीर है और उनके काव्य का स्वर पौरुषोय है। उनकी विशाल काव्य-रचना में केवल कृष्णावतार ही ऐसी रचना है जिसमें शृंगार को भी स्थान मिल पाया है। किन्तु इस रचना में भी मुख्य रस वीर ही है। उन्होंने तियमोहन कृष्ण और और राम का वर्णन करते हुए भी अधिक विस्तृत वर्णन उनके शत्रु-हन्ता रूप का ही किया है।"[७२] वस्तुत: उनके काव्य पर अपने युग के रीतिकालीन नख-शिख, नायिका भेद आदि का कोई प्रभाव नहीं था। दश मेश की इसी विलक्षणता का उल्लेख डा० जग्गी इस प्रकार करते हैं--- " सारांश यह कि कवि ने 'कृष्णावतार' में आधार कथा से सबसे बड़ी विलक्षणता इसमें युद्ध-वर्णन को सम्मिलित करके पैदा की है। यह बिल्कुल नवीन कल्पना है और कृष्ण को अपने परम्परागत रूप से भिन्न एक बलवीर योद्धा के रूप में चित्रित करती है। युद्ध में सहदों, ठानों और मुसलमानों को शामिल करना सामयिक समस्या के फलस्वरूप है क्योंकि उस समय इनके साथ ही युद्ध करना विशेष उद्देश्य था।"[७३] सम्भवत: हिन्दी के कृष्ण काव्य में पहला ग्रन्था है जिसमें कृष्ण के युद्धों को इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवत: पहली बार इसी रचना में कृष्ण एक असुर-संहारक, धर्म संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्धवीर, लोक-रक्षक के रूप में चित्रित हुए हैं।[७४]

उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों के मतों पर अगर हम दृष्टि डालें तो एक ही ध्वनि गूंजती है कि इस रचना का उद्देश्य जनता में वीर भावना का

७२- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २२१-२२ ।
७३- गुरु गोबिन्दसिंह की वाणी में स्वतन्त्रता की भावना, पृष्ठ ६६ ।
७४- डा० जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ० ७१ ।

संचार करना है। वास्तव में गुरु गोबिन्दसिंह की वीरता के सच्चे अवतार थे। उन्होंने देश, जाति और धर्म को भी इसी राह पर चलने के लिए प्रेरित किया।

कृष्णावतार का आरम्भ `देवी जू की उसतत` से प्रारम्भ होता है जिसमें भगवती चण्डिका की स्तुति करके, पुन: देवी शारदा से भागवत की रचना का वरदान मांगा गया है---

बिनु चण्ड कृपा तुमरी कबहूं मुख ते नहीं अच्छा हउ करिहौं ।।
-- -- -- -- --
रे मन भज तू शारदा अनगन गुन है जाहि ।।
रचौं ग्रंथ यह भागवत जऊ वै कृपा कराहि ।।[७५]

इसके बाद देवकी जन्म, देवकी विवाह, कृष्ण-जन्म, कंस की चिन्ता एवं शिशु क्रीड़ाएं, नंद यशोदा का वात्सल्य, पूतना तथा तृणावर्त वध, बाल-गोपाल क्रीड़ा, कृष्ण द्वारा माता यशोदा को विश्व रूप प्रदर्शन, बकासुर, अघासुर, धेनक आदि का वध, कालि-नाग आदि का वर्णन किया गया है। पहला भाग समाप्त भी `देवी जू की उसतुत` से होता है। यहां यह बात द्रष्टव्य है कि कवि ने वह गनेस, बिसन, किसन आदि का ध्यान कभी नहीं किया, मात्र काल रूप को मानते हैं। यहां बार-बार शत्रु समाप्त करने का आह्वान किया गया है। देखिए--

१- तु ही अस्त्रणी सस्त्रणी आप रूपा।। तुही अंबका जंभ हन्ती अनूपा।।
तुही अंबका सीतला तोतला है।। पृथ्वी भूम आकास है ही कीआ है।।४२१।

२- अपना जान मुझै प्रतिपरीअै ।। चुन चुन स्त्र हमारे मरीअै ।।
देग तेग जग मै दोऊ चलै ।। राख आप मुहि अऊर न दलै ।।४३६।।

३- दास जान दै हाथ उबारो।। हमरे सभ बैरीअन संघारो ।।७६।।

७५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २५५।, ७६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३१०।

यह देवी मात्र देवी नहीं, अपितु स्वयं काल पुरुष है, जो समय समय पर वैरी-दल का नाश करने वाले विभिन्न रूपों में रहती हुई भी एक ही सर्वशक्ति है---

तुही ब्राहमी बैसनवी श्री भवानी।। तुही बाँसवी ईश्वरी कारतकिआनी।।
तुही अंबका दुसरहा मुंड माली।। तुही कसट हंती कृपा कै कृपाली।।४३०।।
तुही ब्राहणी ह्वै हिरन्नाथ मारयो ।। हरन्नाकस सिंघणी ह्वै पछारयो।।
तुमी बावनी ह्वै तिनो लोग मापे ।। तुमी देव दानो कीए जक्ष थापे।।
तुमी राम ह्वै कै दसाग्रीव खंड्यो।। तुमी कृष्ण ह्वै कंस केसी बिहंड्यौ।।
तुमी जालपा ह्वै बिड़ालाक्ष घायो।। तुमी सुंभ नैसुंभ दानो खपायो।।४३२।[७७]

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि का लक्ष्य मात्र वीर-भाव जाग्रत करना, युद्ध में सत्य और धर्म के पक्ष में आहूत हो जाने की भावना भरना तथा सामान्य हिन्दू-जगत का मनोबल तैयार करना था। यदि उसे कृष्ण की स्तुति करनी ही अभीष्ट होता तो वह कभी यह न कहता कि `किसन बिसन कबहूं न धियाऊं'।"[७८]

पहला बाल-लीला का भाग यहीं ४४० पद्य पर समाप्त हो जाता है। आगे `अथ रास-मण्डल` कृष्णावतार के दूसरे भाग को सूचित करता है। इस भाग में कृष्ण-राधा मिलन, गोपिकाओं से रास-क्रीड़ा, मुरली की मनोहारी ध्वनि का वर्णन तो किया ही गया है, यक्ष-वध आदि के प्रसंग से कृष्ण का योद्धा, शत्रु-हन्ता, रूप भी प्रस्तुत किया गया है। ७५६ पद्यों के बाद `रास-मण्डल` की समाप्ति की सूचना दी गई है। तीसरे भाग में यद्यपि कृष्ण के मथुरा-गमन पर गोप-गोपिकाओं के विरह का वर्णन है, मगर यहां भी अनेकानेक युद्ध-प्रसंगों का विधान कवि ने सहज में ही कर लिया है+ जो कि

७७- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ३०६।

७८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३१०।

कतिपय शीर्षकों से विदित हैं यथा, अथ वृषभासुर दैत वध कथनं , अथ केसी दैत वध, अथ विस्वासुर दैत जुद्ध, कंस वध कथनं , अथ चंडूर मुसट जुद्ध, आदि। इसके अतिरिक्त, कृष्ण का गायत्री मन्त्र सीखना, धनुष विद्या सीखना, यज्ञोपवीत धारण करना, उद्धव गोपी संवाद तथा गोपियों का विरह वर्णन है। वास्तव में इस भाग को गोपी-विरह वर्णन नाम देना भी असंगत सा लगता है। हमारे वीरता के अवतार कवि ने जितना ध्यान युद्ध-वर्णन पर दिया है, अन्य विषयों पर नहीं।

यहां एक और बात ध्यान योग्य है कि कवि ` अथ उग्रसेन को राज दीबो कथनं ` शीर्षक देकर अब तक की कथा को संक्षेप रूप से प्रस्तुत करता है। बाल-लीला तथा गोपी विरह आदि तीनों भागों को एक ही दोहे में रख दिया गया है--

-- श्री मनमोहन जगत गुर नंद नंदन बृज मूर ।।
गोपी जन बल्लभ सदा प्रेम खान भरपूर ।।[७९]

इसके बाद कृष्ण के अब तक (पहले तीनों भागों में) किए गए युद्धों के आधार पर कवि उनको याद करता है। यह बात जहां कवि के वर्णन-लाघव का ज्वलंत उदाहरण है, वहां उसके लक्ष्य को भी पूर्णतया स्पष्ट करती है। ऊपर के दोहे के बाद कृष्ण की स्तुति इस प्रकार की गई है[८०]----

पृथम पूतना हनी बहुर सकटासुर खंड्यो ।।
तृणावर्त लै उड्यो ताहि नभि माहि बिहंड्यो ।।
काली दीओ निकार चोंच गहि चीर बकासुर ।।
नाग रूप मग रोह रह्यो तब हतिओ अघासुर ।।
केसी सु बच्छ घेनक हन्यो रंगभूम गज ड़ार्यो ।।
चंडूर मुसट के प्रान हरि कंस केस गहि मार्यो ।।१०२६।।

७९- दश ग्रन्थ, पृष्ठ ३९२ ।

८०- -वही- ।

कवि ने कितने सुन्दर ढंग से गत युद्धों का संक्षेप रूप भी प्रस्तुत करदिया है और यह भी बता दिया है कि कृष्ण ने बाल, रास, विरह आदि प्रसंग मात्र प्रासंगिक थे, आधिकाटक कथा तो युद्ध- स्थलों की है। युद्ध-प्रसंग आगे चलकर पद्य १०२६ से (अथ जुद्ध प्रबंध) प्रारम्भ होने वाले युद्धों से मिला कर देखा जाए तो ज्ञात होगा कि कृष्णावतार की सारी कथा इसी निमित्त कही गयी है। हमारे इस कथन का यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि रूप-वर्णन, प्रेम और मिलन के हृदयहारी दृश्य, रास, नृत्यअठखेलियों, उपालम्भों तथा विरह-दशाओं का वर्णन करने में कवि समर्थ नहीं है। जहां भी ये प्रसंग आए हैं, काव्यगत दृष्टि से वे बहुत ही सुरुचिपूर्ण, मार्मिक, विशद और रसात्मक हैं। हम बात केवल मुख्य स्वर की करना चाहते हैं।

इस विषय में डा० हरिभजनसिंह का कथन देखना चाहिए--

> बचित्र नाटक में संकलित प्रबन्धों में कृष्णावतार का विशिष्ट स्थान है, गुरु जी ने शेष सभी प्रबन्धों का आख्यान एक योद्धा के दृष्टिकोण से किया है। फलत: उन प्रबन्धों में वीर-रस का ही प्राधान्य है। कृष्णावतार ही एक ऐसा प्रबन्ध है जिसमें वात्सल्य और श्रृंगार को भी महत्वपूर्ण स्थान मिल पाया है।[८१]

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रथम तीन भागों का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त, संकुचित एवं समास शैली में करता है और शीघ्र ही कथा के चौथे भाग-- युद्ध प्रबन्ध -- की ओर अग्रसर हो जाता है, यही उसका इष्ट और आदर्श है। पद्य १०२६ से शुरु होने वाला यह युद्ध प्रबन्ध एक हज़ार पद्यों तक फैला हुआहै, यह खण्ड कृष्णावतार का विस्तृत खण्ड भी है और सर्वोत्कृष्ट भी। इसी की रचना करने के हेतु कृष्णावतार की संरचना की गई है, ऐसा कहना अत्युक्ति न होगा।

८१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २१२ ।

हमारे कवि के समक्ष एक समस्या अवश्य रही होगी कि कंस-वध के पश्चात् केवल दो ही ऐतिहासिक- पौराणिक पात्र हैं जिनसे श्रीकृष्ण युद्ध करते हैं। इन दो शत्रुओं से इतने बड़े आकार के वीर-काव्य की सृजना कैसे सम्भव थी? फलत: कवि ने उन्होंने पुराण और कल्पना का समायोग कर लिया। अनेक ऐसे काल्पनिक पात्रों का सृजन किया गया, जिनके मिस कवि युद्ध-कौशल तथा काव्य-कौशल दोनों के साथ समुचित न्याय कर सका। ये दो शत्रु हैं-- जरासिंध तथा कालयमन।

जरासिंध के बहुत से सेनापतियों की कल्पना की गई है और वीरता सूचक पद सिंह ` सभी वीरों के साथ लगाया गया है। श्रीकृष्ण का युद्ध जरासिंध के जिन सेनापतियों से होताहै उनमें से प्रमुख नाम हैं--- गजसिंह, अमिटसिंह तथा घूमसिंह, घुजसिंह, मनसिंह, घराघर और घऊररसिंह आदि-+- पांच भूप दो अक्षूहनी दल, साहिबसिंह, सदासिंह, सुन्दरसिंह, साजनसिंह, शक्तिसिंह, सैनसिंह, सुवच्छसिंह, समरसिंह, आहव सिंह, संगरसिंह, अनरुधसिंह, बीरभद्र सिंह, बासदेवसिंह, बीरसिंह, बल सिंह आदि; असमसिंह, जससिंह, इन्द्रसिंह, अभैसिंह, इच्छसिंह, आदि पांच भूप; उत्तरसिंह, उज्जलसिंह, उद्यम सिंह, ओजसिंह, ओटसिंह उग्रसिंह आदि दस भूप ; अनूपसिंह, सहित दस भूप, करमसिंहादि पंच भूप आदि। इन सब वीरों को युद्ध में निर्भयतासे लड़ते, गर्वोक्ति करते तथा श्रीकृष्ण की भारी सेना काटते हुए हम देखते हैं। परन्तु इनके विषय में अलग-अलग एक या दो पद्यों में या सामूहिक रूप से ही कुछ पंक्तियां लिखकर कवि आगे बढ़ गया है। तो भी ये योद्धा कहीं भी गाजर मूली के सामान नहीं कटते, अपितु श्रीकृष्ण की सेना में भगदड़ मचाकर उन्हें चण्डी या शिवा के सामने गिड़गिड़ाने पर विवश कर देते हैं।[८२]

८२- सकति सिंह उत समर मै बहुतु हने बर सूर ।।
तब ही तिनके तनन सिउ भूमि रही भरपूर।।१३३४ ।।

उपर्युक्त युद्धों के बाद श्रीकृष्ण का सामना खड्गसिंह नामक एक `महारथी बल धाम` से होता है। जहां पहले योद्धाओं का वर्णन कुछ ही पंक्तियों में समाप्त कर दिया गया है, वहां खड़गसिंह का युद्ध प्रसंग बहुत विस्तृत है। उपर्युक्त सारे युद्ध भी लगभग साढ़े तीन सौ पद्यों में हैं तथा अकेला यह प्रसंग ३४६ पद्यों में फैला हुआ है। यहां कवि ने युद्ध का वर्णन जिस मनोयोग से किया है, वह अन्यत्र नहीं मिलता।

इन युद्ध-प्रसंगों में `सिंह` नाम धारी पात्र तो मिलते ही हैं, साथ ही `खां` नामधारी पात्र भी रखे गए हैं। सामान्य बुद्धि इसे मान नहीं सकती, क्योंकि यह यथार्थ तथा ऐतिहासिकता की अवहेलना करके अप्रासंगिक भी लगता है। मगर सामान्य जन को विशिष्ट बुद्धि वाले उस वीर दशमेश की दूर-दर्शिता, युग-सापेक्षता एवं वीरोचित वातावरण निर्माण करने की क्षमता का भान हो भी कैसे सकता है। वास्तव में यह बात उनकी अनूठी कल्पना की द्योतक है।

डा० महीपसिंह के शब्दों में---"कवि को तो इस महान् लोक प्रिय अवतार की प्रभावशाली जीवन गाथा से अपने युग की पीड़ित जनता में नव शक्ति एवं नवजीवन का संचार करना है। इसलिए इस प्रसंग में कवि का यह उद्देश्य युद्ध भाव, सामयिकता, ऐतिहासिकता, देश काल आदि सभी बन्धनों को तोड़कर अबाध गति से प्रवाहित होता है।"[८३]

वास्तव में कृष्णावतार की रचना भक्ति भाव से नहीं बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों के कारण की थी। दीन और निर्बल बनकर उन्हें भक्ति करना अभीष्ट न था, बल्कि वे तो अपने प्रभु से अत्याचारों के साथ बदला लेने की शक्ति की याचना करते हैं। वे क्षत्रीय के पुत्र हैं और उनकी भक्ति अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध लड़ना तथा धर्म युद्ध की तैयारी करना ही है--

---

८३- डा० महीपसिंह, गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ १६६।

क्षत्री को पूत हौं वामन को नहि, कै तपु आवत है जु करो ।।
अरु अउर जंजार जितो गृह को तुहि तिआग कहा चित तामै धरौ ।।
अब रीझ कै देहु बहै हम कउ जोऊ हुऊ बिनती कर जोर करौ ।।
जब आउकी अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरौ।।२४८६।।[८४]

डा० जयभगवान गोयल के शब्दों में--" कृष्णावतार की रचना सम्वत् १७४५ (सन् १६८८) में पाउंटा में हुई। इस समय गुरु गोबिन्दसिंह जी की आयु लगभग २२ वर्ष की थी। तारुण्य का जोश उनमें भरा हुआ था। अपनो पिता की हत्या के प्रतिशोध के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ थे और उसी के लिए यहां शक्ति संचय कर रहे थे। कृष्णावतार इसी आन्दोलन का एक अंग था। इसके द्वारा वे कृष्ण भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहते थे, वरन् कंस, जरासंध आदि असुर उनके लिए मुगल शासकों के प्रतीक थे। वे दिखाना चाहते थे कि उनके विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे थे जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे और अपने अनुयायियों को इस धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए वे कृष्ण की वीर कथाएं सुनाते और सुनवाते थे।" और भी हैं--" इस प्रबन्ध में देश काल की सीमाओं को भूलकर खड़गसिंह, अमिटसिंह, गजसिंह, धनसिंह, हरिसिंह, अणतसिंह, अजबसिंह आदि `सिंह` नामधारी योद्धाओं की वीरता का निरूपण एवं सरे खां, सैदखां, दिलवर खां, दलेल खां, आजाइब खां आदि मीरों सैयदों, सेखों, पठानों के वध का कथन भी रचनाकार के निहित उद्देश्य को ही प्रकट करता है।[८५]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि गुरु जी ने किस प्रकार भीरु तथा संत्रस्त जनता में को निडरता तथा वीरता का सच्चा मार्ग दिखाया। कृष्णावतार` में कृष्ण द्वारा कर्म का सन्देश जन-जन में फूंक दिया और उन्हें कर्मशील बनाया। वे एक सच्चे वीर पुरुष तथा युग-पुरुष थे।

८४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ५७० ।

८५- डा० जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ७३।

हिन्दू और मुसलमानों नामों की यह सूची कुछ असंगत सी प्रतीत होती है। महाभारत काल के लिए उचित नहीं बैठती। इसे काल-दोष भी कहा जा सकता है परन्तु गुरु जी कवि से परे एक राष्ट्र-नायक थे, इसलिए प्रश्न उठाना व्यर्थ है।

डा० महीपसिंह के शब्दों में--" गुरु गोबिन्दसिंह, छत्रपति शिवा जी, राणा राजसिंह, वीर दुर्गादास, महाराजा छत्रसाल आदि राष्ट्र-नायक ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने हिन्दु-जाति को भक्ति की आत्म-विस्मृत करने वाली निद्रा से जगाकर विदेशी आततायी शासन के विरुद्ध सक्रिय और शक्ति सम्पन्न होकर प्रतिरोध करने की प्रेरणा दी और स्वयं उस महा अभियान का नेतृत्व किया।"[८६]

वास्तव में वे समाज में आत्मगौरव और शक्ति का संचार करने के लिए प्राचीन भारतीय इतिहास का सहारा लेकर अपने समय की परिस्थितियों के अनुसार एक महान् आदर्श उपस्थित करना चाहते थे। इस कार्य के लिए उन्हें देश काल की सीमाओं का भी उल्लंघन करना पड़ा, तो ऐसा किया गया।

कृष्णावतार में कृष्णा का ' वीर रूप ' ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। जरासंध शिशुपाल वध आदि के साथ हुए श्रीकृष्ण के अनेक युद्धों में पूर्ण रूप से ओजपूर्ण, विस्तृत तथा सजीव वर्णन मिलता है। जरासंध के साथ युद्ध करने के कारणों पर कवि प्रकाश डालता है। कंस के केश पकड़कर उसे मारने का जो वर्णन है, उससे दुष्टों और आततायियों के दण्ड-विधान का पता चलता है। डा० हरिभजनसिंह कहते हैं--" कंस वध के पश्चात् कृष्ण के अनेकानेक युद्धों की कथा गुरु गोबिन्दसिंह तक तो सर्वथा उपेक्षित ही थी। गुरु जी ने सर्वप्रथम कृष्ण के योद्धा रूप का उद्घाटन पर्याप्त विस्तार से किया।

८६- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ १६८ ।

यही कृष्णावतार का वैशिष्ट्य है। उन्होंने तियमोहन कृष्ण और राम का वर्णन करते हुए भी अधिक विस्तृत वर्णन उनके शत्रु हन्ता रूप का ही किया है।[८७]

श्रीकृष्ण के साथ उनके भाई बलभद्र हमेशा साथ रहते हैं। वे गदाधारी महाभट हैं, जो हलधारी भी हैं। हलधर (किसान) तथा अहीर छोकरों को देखकर क्षत्री राजाओं को जाति-अभिमान हो सताता है। वे गाली-गलोच करते हैं, मगर कृष्ण भी तर्कशील हैं, युद्ध में उनकी हुंकार, ललकार तथा शत्रु-पक्ष में मचने वाले चीत्कार से युद्ध बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। जरासंध भी ऐसा ही जाति-अभिमानी राजा है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण और बलभद्र के मिस हमारे कवि देश के कृषक समाज में अपार वीर, साहस तथा बल का संचार करना चाहते थे। श्रीकृष्ण शत्रु को हराते भी हैं, दयावीर बनके बार-बार उसे क्षमा भी करते हैं। "श्री बृजराज की जीत भई अर तेहंस बारन ऐसे ही हारे।--- तथा श्री जदुबीर महा रनधीर बड़ो अरि जीत भलो जसु पायो।"[८८] यहां 'सुरा और सूरा' का सम्बन्ध भी दिखलाया गया है।[८९] ध्यान रहे कवि यहां भी प्रभु से वही वरदान मांगता है जिस लालच से उसने इस युद्ध कथा की रचना की है।[९०]

आगे श्याम कवि करुणासिंधु भगवान से यही प्रार्थना करता है कि सन्त जनों की रक्षार्थ जूझ मरने का वरदान उसे दे--

हे रवि, हे ससि हे करुणानिधि,
मेरी अबै बिनती सुनि लीजै ।।

८७- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २१२ ।

८८-दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४९३-९४ ।

८९- अति ही मदरा सों छके अरुन भए जुग नैन।" - दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४९४।

९०- कृष्ण जुधु जो हठ कह्यो अतिही संगिन सनेह ।।
जिहलालच इह मैं रच्यो माहि बहै बरु देहि ।।
-- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४९५ ।

अउर न मांगत हऊ तुम ते,
कछु चाहत हऊ चित मैं सोई कीजै ।।
सस्त्र न सिऊं अति ही रन भीतर,
जूझ मरो कहि साथ पतीजै ।।
सन्त सहाय सदा जगमाय,
क्रिया करि स्याम इहै वरु दीजै ।।१६००।।[६१]

उस धन-धान्य, भूमि-सम्पत्ति, यश, लोक ऋद्धि-सिद्धि एवं निधि की कोई आवश यकता नहीं, वह तो अपने वीर रसात्मक भाव की तृप्ति हेतु निर्भय हो कर युद्ध स्थल में वीरगति को ही अपने जीवन की चरम-गति मानते हैं। कवि आगे कहता है---

अऊ किछु इच्छु करो धन की तऊ चल्यो धनु दे सन देत ते आवै ।।
अऊ सब रिद्धन सिद्धन पै हमरो नही नेकु हीया ललचावै ।।
अउरु सुनो कछु लोग बिखै कहि कउन इतो तपकै तनु तावै ।।
जूझ मरौ रन मै तजि मै तुम ते प्रभ स्याम इहै बरु पावै ।।१६०१।।[६२]

ऐसे कालयमन को देकर जरासंध पुन: युद्ध लड़ने आता है। कालयमनका वध करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने चौबीसवीं बार दामा कर दिया। पश्चात् बलभद्र विवाह, रुक्मिणी हरन, मुर, भूमासुर आदि के वध, इन्द्र को जीतकर उससे कल्पवृक्ष लाने तथा अन्यान्य वधों एवं विवाहों का वर्णन किया है।

६१- दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४६५ ।

६२- -वही- ।

ख: आंशिक वीर रसात्मक कृतियां

१- निहकलंकी (कल्कि) अवतार :-

`कल्कि अवतार` ५८८ पद्यों का वीर-रस प्रधान खण्ड काव्य है। इसमें उस समय की दशा का विस्तृत वर्णन है जब चारों ओर अधर्म का राज्य था। समाज में कोई मान-मर्यादा नहीं थी। मनुष्य अपने आप को ही सब कुछ समझने लगा था। चारों ओर कुरीतियां और दुराचार का बोलबाला था। समाज की नैतिक मान्यतायें टूट चुकी थीं। कवि ने इन अवतारों का सहारा लेकर दैवी शक्तियों की आसुरी शक्तियों पर विजय दिखायी है। जब धरती इस अन्याय, अधर्म, कुकर्म और अत्याचारों से व्याकुल होकर उस अकाल पुरुष का ध्यान धरती है। उस समय के समाज की दशा देखिए--

भाराक्रित होत जब धरणी ।।
पाप ग्रस्त कछु जात न बरणी ।।
भांत भांत तन होत उतपाता ।।
पुत्रह सेज सोवत लै माता ।।२।।
ब- -- -- --
संकर बरण पूजा सभ होई ।।
एक ग्यात को रहा न कोई ।।
अति बिभचार फसी बर नारी ।।
धरम रीत की प्रीति बिसारी ।।४।।[६३]

धरती की पुकार सुनकर उसका उद्धार करने के लिए परम प्रभु स्वयं अवतार लेते हैं--

दीन की रच्छा निमित करिहैं आप उपाए ।
परम पुरख पावन सदा आप प्रगट है आए।।
आप प्रगट है आए दीन रच्छा के कारण ।
अवतारी अवतार धरा के भार उतारण ।।१३६।।[६४]

६३- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५७१ । ६४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५८१ ।

पापों का नाश करने के लिए, पृथ्वी का भार उतारने के लिए वह परम प्रभु कल्की का अवतार लेंगे और कृपाण धारण कर दुष्टों और राक्षसों का विनाश करेंगे--

पाप संबूह बिनासन कउ कलिकी अवतार कहावहगे ।
तुरकच्छ तुरंग समच्छ बडो करि काढ़ कृिपान खपावहगे।।१४१।।[९४]

इसकी कथा इस प्रकार है कि एक विप्र ब्राह्मण भगवती चण्डी की उपासना किया करता है परन्तु उसकी पत्नी उसे अच्छा नहीं समझती थी। वह उसे चण्डी-पूजा छोड़ने को कहती है परन्तु ब्राह्मण भगवती पूजा का त्याग नहीं करता। उसकी पत्नी संभर के शुद्ध राजा को उसकी शिकायत करती है। राजा ब्राह्मण को बुलाकर देवी भजन छोड़ने को कहता है और उसके ऐसा न करने पर उसके टुकड़े-टुकड़े करने की धमकी देता है। परन्तु ब्राह्मण अपने मार्ग पर अटल रहता है। इस पर राजा अपने दूतों को उसका वध करने के लिए भेजता है। जब दूत उसको मारने के लिए तलवार उठाते हैं, उसी समय पृथ्वी के गर्भ से कल्कि अवतार प्रकट होता है। कल्कि के प्रकट होने पर युद्ध का डंका बज जाता है। दोनों ओर से सेनाएं मैदान में आ जाती हैं। भयानक और विकराल युद्ध होता है। अन्त में कल्कि शुद्ध राजा और उसकी सेना को नष्ट कर देता है और धरती पर सुख शान्ति और धर्म का राज्य स्थापित करती है। इस कथा के वातावरण में उस काल की परिस्थितियों की स्पष्ट झलक मिलती है।

कल्कि अवतार कथा को कवि ने चार अध्यायों में विभक्त किया है। पहले अध्याय में बहुत ही विस्तार से युग के विकारों, नैतिक पतन, धर्म का ह्रास आदि का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त कथा, संभर देश के राजा से युद्ध एवं उसका वध वर्णित है। यह अध्याय बहुत विस्तृत है, यह ४५४ पद्यों का है। दूसरे अध्याय में देसंतर (देशांतर) युद्ध का वर्णन करके दक्षिण-पश्चिम दिशा पर विजय की बात आगे बढ़ाई गई है। तीसरे

९४- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ५८१ ।

अध्याय में पूर्व दिशा की विजय तथा चौथे में उत्तराखण्ड के चीन आदि देशों की विजय का वर्णन है।

प्रथम अध्याय :- इसमें युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव बन पड़ा है। कवि ने इस अवतार की रचना वीर रूप की ही दृष्टि से की है। कल्कि अवतार का वीर रूप देखिए---

कउच किपान कटारी कमान सु रंग निखंग छकावहगे ।।
बरछी अरु ढाल गदा पर सो कर सूल त्रिसूल भ्रमावहगे ।।
अति क्रुद्धत ह्वै रण मूरधन नमो सरओघ प्रओघ चलावहगे ।।
मल भाग भया इह संभलके हरिजू हरि मंदर आवहगे ।।१४८।।[९५]

गुरु जी के युद्ध वर्णन की विशेषता यह है कि इसमें शत्रु-पक्ष को कभी भी निर्बल या कापुरुष नहीं समझा जाता, वह भी नायक के तुल्य ही वीर होता है। यह बात यहाँ शुद्ध राजा के विषय में पूर्णतया सच है--

सस्त्र प्रहार अनेक करे तब ।। जंग जुटिओ अपनो दल लै सब ।।
बाज उठे तह कोट नगारे ।। रुंफ गिरे रण जुज्झ निहारे।।३७७।।[९६]

तजे बाण ऐसे ।। बर्ण पत्र जैसे ।।
जलं मेघ धारा ।। नभं जाणु तारा ।।[९७]

संभर नरेस मारिओ निदान।। ढोलं मृदंग बज्जे प्रमान ।।
भाजे सु बीर तज जुद्ध त्रास ।। तजि सस्त्र सरब ह्वै चित निरास।।४५१।।[९८]

९५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५८२ ।।

९६- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ५९५ ।। ९७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५९९ ।।

९८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६०१ ।।

द्वितीय अध्याय :- संभर के राजा को मारने के बाद कल्कि अपनी विजय पताका फहराता हुआ देशान्तर युद्धकरता है। दक्षिण-पश्चिम दिशा में आक्रमण किया और उस पर विजय प्राप्त कर ली। इसमें ५२ पद्य हैं।

जीत सरब पच्छम दिसा दच्छन कीन धिआन ।।
जिम जिम युद्ध तहा परा तिम तिम करो बखान ।।४९६।।[९९]

सः हने पच्छमी दीह दानो दिवाने ।
दिसा दच्छनी आन बाजे निसाने ।।
हने बीर बीजा पुरी गोल कुण्डी ।।
गिरे तच्छ मुच्छं नयी रुंड मुण्डी।। ५०४।।[१००]

बीजापुर, गोलकुण्डा और द्राविड़ देश पर विजय प्राप्त कर ली। युद्ध-वर्णन में अत्यन्त सजीवता, गति तथा ध्वनि है। कल्कि अवतार ने अपनी धाक पश्चिम पर भी जमा ली। बड़े-बड़े वीर योद्धाओं को पछाड़ दिया। बड़े सुल्तान काज़ी भी उसके सामने टिक न सके। कंधार, ईरान तक उसका साम्राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह जी ने कल्कि अवतार को आधार बनाकर जनता में निर्भयता तथा वीरता की भावना भरी।

तृतीय अध्याय (पूर्व विजय): इस अध्याय में चार छन्द हैं। पश्चिम और दक्षिण की विजय के उपरान्त कल्कि अवतार ने पूर्व की ओर मुख किया और मगध, कलिंग आदि पर भी विजय प्राप्त की--

मागध महीप मंडे महान ।। दस चार चार विदया निधान ।।
बंगी, कुलिंग अंगी अजीत।। मोरंग अगोर नयपाल अभीत।।५०८।।[१०१]

९९- दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ६०४ ।
१००- वही- । पृष्ठ ६०९ ।
१०१- -वही- पृष्ठ ६०५।

सब दिशाओं को जीतने का अर्थ है राक्षसों पर विजय जो देश के चारों ओर अपना अधिकार कर बैठे थे।

चतुर्थ अध्याय :- इसमें ७८पद्य हैं। अब कल्कि अवतार ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। वह बलशाली है और युद्ध में कोई भी जीत नहीं सकता--

खल खंड खंड बिहंडकै अरि कै दंड दंड बड़ो दीयो ।
अरब खरब अदरब सु जीत कै अपने कीयो ।।
रणजीत जीत अजीत जोध नक्षत्र अत्र छिनाइअं।
सरदार बिसंति चार कलि अवतार छत्र फिराइअं ।।५६२।।[१०२]

देश देशान्त में कल्कि अवतार ने अपनी विजय का डंका बजा दिया। चीन तथा उत्तर के सारे राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार कल्कि ने असंतों का विनाश और सन्तों की रक्षा की। मगर कुछ समय पाकर उसे भी अहंकार हो गया। तब महदी मीर का प्रादुर्भाव हुआ--

नहि काल पुरष जपतं ।। नहि देव जाव भ्रणतं।।
तब काल देव रिसाए ।। इक अऊर पुरष बनाए ।।
रच्चि अस महिदी मीर।। रिसवंत हाठ हमीर ।।
तिह तऊन को बधु कीन ।। पुन आव मो कीअ लीन ।।[१०३]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस खण्ड काव्य में वीर रस के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। जैसा कि शुरु में कहा गया है इस खण्ड काव्य की रचना कवि ने अत्याचारियों और राक्षसों का वध करने तथा धर्म की स्थापना करने के उद्देश्य से की है।

१०२- दशमग्रन्थ , पृष्ठ ६०६ ।
१०३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६१० ।

२- पारसनाथ रुद्रावतार :-

विष्णु के २८ अवतारों के अतिरिक्त दशमग्रन्थ में ब्रह्मा तथा रुद्र अवतारों की कथाओं का भी वर्णन है। ब्रह्मावतार वीर रस प्रधाननहीं हैं जबकि रुद्रावतार वीर रस प्रधान हैं। इसमें ३५८ छन्द हैं और युद्धों का ओजस्वी एवं सजीव चित्रण हुआ है--

महारूप अरु अमित प्रतापू ।। जानु जपै है आपन जापू ।।
सस्त्र सास्त्र बेता सुरि ग्याना।। जा सम पंडित जगत न आना।।१३

गृही तुअ जबै सस्त्र अस्त्रं अपारं ।। पढ़े अनभवं बेद बिदिआ बिचारं।।
पढ़े सरब बिदिआ हुती सरब देसे।। जिते सरब देसी सुअस्त्रं नरेसं ।।२७। [१०४]

सब प्रकार की विद्या प्राप्त करके पारसनाथ शस्त्रास्त्र में भी निपुणता प्राप्त करते हैं तथा दुष्ट दमन हेतु जटाधारियों से युद्ध में जुट जाते हैं। चारों तरफ युद्ध के मारू बाजे बज रहे हैं। योद्धा गदा, कृपान, सैहथी बाण से युद्ध कर रहे हैं। तीरों की वर्षा हो रही है। वीर बढ़-चढ़ कर एक दूसरे को ललकार रहे हैं। पारसाथ क्रोधित होकर युद्ध कर रहे हैं--

यो कहि पारस रोह बढ़ायो ।
दुंदभ ढोल बजाइ महा धुनि समुहि सन्यासणि धायो ।।
अस्त्र ससम्र नानाविधि छुइडे बाण प्रयोग चलाए ।।
सुभटि सनाहि पत्र चल दल ज्यों बानन बेध उडाए ।।
दुहदिस बान पान ते छूटे दिनपति देह दुराना ।।
भूमि अकास एक जन हवै गए वाल चहूं चक माना ।।
इन्द्र चन्द्र मनवर सभ कापे बसु दिगिपाल डरानिय ।।
बरन कुबेर छाड़ पुर भागे दुत्तीय प्रलै कर मानिय ।। [१०५]

१०४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६७२ ।

१०५- दश म ग्रन्थ, पृष्ठ ६८१ ।

पारसनाथ क्रुद्ध होकर युद्ध कर रहे हैं। युद्ध के बाजे बज रहे हैं। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग हो रहा है। बड़े-बड़े योद्धा भी इनके तीर के सामने नहीं ठहर सके। देवता तक इनके भय से काँप उठे।

दोनों दिशाओं से युद्ध हो रहा है। योद्धा अनेक शस्त्रास्त्रों से युद्ध कर रहे हैं। इनका वर्णन देखिए कितनी गति और ध्वनि है--

दुह दिस परे बीर हंकार। काढि काढि क्रिपाण धावत मार-मार उचार
पान रोकस रोख रावत क्रुद्ध जुद्ध फिरे ।
गाहि गाहि गजी रथी रण अन्त भूम गिरे ।।
तान तान संधान बान प्रमान कान सुबाह ।।
बाहि बाहि फिरै सुबाहन क्षत्र धरम निबाहि ।।
बेध बेध सु बान अंग जुआन बुझै सेस ।।
भूरि भारथ के समे सर सेज भीष्म जैस ।।१११।। १०६ ।

युद्ध भूमि का भयंकर और विकराल दृश्य देखते ही बनता है। किसी का एक हाथ कट गया है तो किसी के दोनों हाथ कट गए हैं। मुकुट भी गिर गए हैं। इस युद्ध दृश्य में कवि की अलंकार योजना, कल्पना-शक्ति तथा शब्द शक्तियों का भी परिचय मिलता है। साधारण कवि ऐसा दृश य प्रस्तुत करने में समर्थ कैसे हो सकता है--

इहि विधि बहुत सन्यासी मारे ।
केतिक बांध वार मो बोरै किते अगन मो जारे ।।
केतन एक हाथ कट डारे केतिन को द्वै हाथ ।।
तिल तिल पाए रथी कटि डारे कटे कितन के माथ ।।
क्षत्र चम्र रथ बाज कितन के काटि काटि रण डारे ।।
केतन मुकुट लुकट लै तोरे केतन जूट उपारे ।।

१०६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८३ ।

भकि भकि गिरे भिंभर बसुधा पर घाए अंग भिभकारे ।।
जानुक अंत बसंत सभै मिलि चाचर खेल सिधारे ।।११२।।[१०७]

कवि को वीर रस वर्णन में पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वह युद्ध वर्णन करता हुआ कभी अघाता नहीं। शस्त्रास्त्रों की झंकार, वीरों का सिंहनाद, हुंकार और आह्वान, शोणित की बहती सलिल सी सरितायें, अंग प्रत्यंगों के कट कर गिरने का मुग्धकारी दृश्य, उसकी सफल लेखनी का अनोखा खेल है। परन्तु उसे ग्रन्थ के बढ़ जाने का भी भय भी सदा लगा रहता है। यदि वह सीमा न हो तो न जाने युद्ध का और युद्ध के वर्णन में वीर रस के निष्पात का क्या हाल हो। वह स्थान-स्थान पर रुक कर अपनी सीमा का स्मरण करता है। पारसनाथ महायोद्धा है। वह कहता है कि उस जैसा वीर संसार में कोई नहीं। पारसनाथ की गर्वोक्ति युद्ध में प्राण संचेतना करने वाली है---

मो ते और बली को है ।
जउन मो ते जंग जीते जुद्ध मै कर जै ।।
इन्द्र चन्द उपिन्द कौ पल मधि जीतौ जार ।।
अउर ऐसो को भयो रण माहि जीतै आर ।।१०६।।[१०८]

सन्यासियों पर विजय प्राप्त करके पारसनाथ एकछत्र राजा हो गए। उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया। मगर अन्य अवतारों के समान उसे भी अभिमान हो गया।[१०९] इसके बाद विवेक, अविवेक आदि गुणों, सृष्टि के जन्म, ब्रह्मा का स्वरूप, मत्स्येन्द्रनाथ तथा चरपटनाथ आदि के जन्म का वर्णन तथा योग आदि मतों पर प्रकाश डाला गया है, जो हमारे विषय क्षेत्र से बाहर है।

१०७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८२ ।
१०८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३८१ । १०९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६६४ ।

३- शस्त्रनाम माला :-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस रचना में विभिन्न शस्त्रास्त्रों के नाम लेकर शस्त्रों की महत्ता, उनका विभिन्न देवतों तथा प्रसंगों से सम्बन्ध आदि बतलाकर अपने लिए युद्ध में सफलता का वरदान मांगा गया है। वीर पुरुषों में शस्त्र-पूजा का महत्व सर्वविदित है। हमारे यहां ऐसी परम्परा रही है कि विजयदशमी के पावन पर्व पर शस्त्रों की सफाई, देखभाल आदि करके उनकी पूजा-अर्चना की जाती है। यहां भीवीर कवि का अभिप्राय यही है। अतएव वीर-रस के प्रजागरण में शस्त्रास्त्रों की परिगणना का यहां विशेष महत्व है। शस्त्र ही वीरात्मा का इष्ट है। यही उसके पीर एवं गुरु हैं। शस्त्र ही सृष्टि का मूल है। भगवती चण्डिका ही सर्वविद्याओं, सर्वकलाओं और सर्वभावों का सार है। इसमें कुल मिलाकर १३१८ पद्य और पांच अध्याय हैं+--

सांग सरोही सैफ अस तीर तुपक तलवार ।।
संत्रातक कलवांति कर करीबै रच्छ अमार ।। १।।

वह इष्ट भी विभिन्न शास्त्रास्त्र हैं--

आस कृपान खंडो खड्ग तुपक तबर अरु तीर ।।
सैन्य सैल सरोही सैहथी यहै हमारे पीर ।।३।।
तीर तुही सैहथी तुही, तुही तबर तलवार ।।
नाम तिहारे जो जपै भए सिंध भव पार ।।४।। ११०

तुम ही सबको उत्पन्न करती हो और तुम्हीं उद्धार करने वाली हो। कौतुक देखने के लिए तू जगत में, दिन और रात में, जीवन तथा मरण में वाद-विवाद का श्रीगणेश करती है। दशम ग्रन्थ के रचयिता की यह शस्त्रास्त्र स्तुति वास्तव में ईश-स्तुति ही है, सर्व-व्यापक, पारब्रह्म, करण-

---

११०- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७१७ ।

कारण भय निवारिणी शिव-शक्ति की स्तुति है---

काल तुही काली तुही, तुही तेग अरु तीर ।।
तू ही निसानी जीत की आजु तुही जगबीर ।।५।।

तुम महान् हो, तुम ही पदा शस्त्र हो, कुल्हाडा हो, तुम ही शक्ति को भंडार हो। तुम ही सब राजाओं को उत्पन्न करती हो। देखिए निम्न पंक्तियों में--

तुम पाटस पासी परस परम सिंघ की खान ।
ते जग के राजा भये दीअ तब जिह बरदान ।।२२।।

कवि यही कहता है कि तुम सदा हमारी रक्षा करो---

सैफ सरोही सत्र अरि सारंगारि जिह नाम ।।
सदा हमारे चित बसो सदा करो मम काम ।।२७।।

कवच सबद पृथमै कहो, अंत सबद अरि देह ।।
सम ही नाम कृपान के जान चतुर जीअ लेहु ।।२८।।

सत्र सबद पृथमै कहो अंत दुसट पद भाखु ।।
सभै नाम जगन्नाथ को सदा हृदै मो राखु ।।२९।।

यदि कवच शब्द आदि है तो अरिदेह अन्त है। अर्थात् कवच से लेकर शत्रु पदा का शरीर सभी कृपान के नाम पर विद्यमान हैं। इसी तरह शत्रु शब्द यदि आदि है तो दुष्ट पद अन्तिम पद है। ये सभी नाम श्री जगन्नाथ, जगत के स्वामी जगत के नाथ के हैं। इसे सदैव हृदय में धारण करो। दूसरे शब्दों में सृष्टि का जो आदि से लेकर अन्त तक स्थूलास्थूल सचराचर है, वह कृपान के सहारे टिका है और यह कृपान ही समस्त जगत की स्वामिनी है, अत: इसको वही परमोच्च पद प्राप्त हुआ जो जगत के कर्त्ता, सृष्टि के पालक एवं संहारकर्त्ता को है। तभी तो दशमग्रन्थ के अनुभवी कवि ने अपनी गहन अनुभूति को प्रकट किया है।

आदि से अन्त तक आध्यात्मिक रहस्य में सराबोर कवि अम्बि- यदि शस्त्र को ही जीव तथा जगत का मूल, तथा इष्ट का ही दूसरा नाम देता है तो समझना चाहिए कि वह वीर रस को ही सब रसों का स्वामि, राजा तथा कर्ता मानता है। ऐसी सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान वीरता की साक्षात् प्रतीक तलवार से कवि बार-बार `सदा करो मम काम`, `करिए रक्ष हमार`, `मुहि तुम लेहु बचाय` आदि का वरदान मांगता है। अत: यह कहना स्वाभाविक ही है कि गुरु गोविन्दसिंह जी की वाणी का लक्ष्य शस्त्र और शास्त्र का, भगवती तथा भगौती का एवं भक्ति और श क्ति का मणि-कांचन संयोग है और उनका एकमात्र लक्ष्य हमारे मन में ही निहित भाव-लोक में से वीर रस तथा इसके सहायक रसों की निष्पत्ति करना था। तभी तो उन्हें शस्त्रास्त्रों में से देव दर्शन होते हैं। वे चैतन्य एवं सजग रूप से सप्रयत्न ऐसे उपमान ढूंढ कर लाते हैं जिनसे वीर रस का परिपाक हो। ऐसी पुराण कथाएं एवं औपनिषदिक नीति-कथाएं चुन-चुन कर लाते हैं, जिनमें समग्र रूप से सर्वत्र वीरता का ही वातावरण बने। वीर रस का संचार हो, कायरता की प्रवृत्ति छोड़ कर नि:सहाय हिन्दू जगत एक प्रकार से आत्म-सम्मान, आत्म संरक्षण, आत्म-सिद्धि एवं स्वात्मक को प्राप्त हो।

आगे दूसरे तथा तीसरे अध्याय में विभिन्न शस्त्रास्त्रों, योद्धाओं, धर्मवीरों, दिशापालों, देव-असुरों, अवतारों एवं बलिदानियों के नाम गिना कर उनका पाठ किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरू जी का यह निश्चित मत था कि जैसे हम प्रात:-स्मरण करते हैं, उससे मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि होती है, वैसे ही शस्त्रास्त्रों के भिन्न नामों के बार-बार जप करने से मनुष्य मात्र के मन में वाणी तथा कर्मों में अवश्य ही वीर-रस का संचार होगा। इसीलिए तो वे जहां रणचण्डी के विभिन्न नाम, जगमात, श्रीभगवती, भवहा, श्री भवानी, श्री खड्ग, शस्त्रराज, श्री सिरोही, शस्त्रपति, सैहथी, तनुत्रान, आदि का गुणगान करने और उससे अपनी रक्षा एवं सहायता करने की याचना करते हैं, वहां वे भारत में हो चुके सुभटों-वीरों के नाम भी

इसी प्रेरणा के अधीन लेते हैं--

सांग समर कर सैहथी सस्त्र सजन के मैस ।
सबल सुभटहा हाथ लै जीते समर सुरेस ।।५३।।

सुरेश या इन्द्र के अतिरिक्त वे जिन भटों योद्धाओं का यहां वर्णन करते हैं, उनमें से कुछ कुछ नाम हैं--- लक्ष्मन, घटोत्कच, बिसन, मुर, मुध, गिरधर, काली , नथीआ, कंस के संहारक, बकी, बकासुर एवं उपेन्द्र आदि। दूसरे अध्याय में उपर्युक्त भावना " उभै नाम जगन्नाथ को सदा हृदै मो राखै- की ही पुष्टि की गई है और सुदर्शन चक्र की विशेष महिमा कही गई है।

सभै सुभट अऊ सभ सुकवि यों समझो मन माहिं ।।
बिसन च क्र के नाम मै भेद कऊ नहूं नाहि ।।७४।।

तीसरे अध्याय में भी यही क्रम रहा है। यहां पहले बाण की महिमा गाकर उसमें " मम काम " करने का वरदान मांगा है---

बिसख बाण सरधनज मन कबचांतक के नाम ।।
सदा हमारी जै करो सफल करो मम काम ।।७५।।

बाण, सिलीमुख, श्रीबान आदि की आराधना की गई है---

नाम सकल श्रीबान के जान जीऊ मै राखु ।।१०१।।

यहां भी आकाश, चन्द्र, जलपति, धरी नगन, पशुपति, करन, अर्जुन कृष्ण, जयद्रथ, मकरकेतु, वंशीधर, हलधर (बलराम), दुशासन, दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वस्थामा, युधिष्ठिर, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, मेघनाथ, रावण, आदि वीरों और योद्धाओं के नाम की वन्दना करके पूरे १७८ पद्यों में (२५२ पद्यों तक) " सकल नाम श्री बान के चतुर चित मै जान" कहकर बान की महिमा कही गई है।

इसी क्रम में चौथे अध्याय में `श्री पांस` की महिमा कही गई है--

बीर गिसतही ग्रीवधर वरणायुध कहि अंत ।।
सकल नाम श्री पांस के निकसत चलें अनंत ।।२५३।।

पांस से दुष्ट यवनों के गले का हार होकर अपने अर्थात् नवोदय के पुनरुत्थान की मंगल कामना की गई है। इसमें भी उसी तरह अन्यान्य वीरों के नाम-परिगणन के साथ-साथ पांस (पाश या फंदा) का महत्व बतलाया गया है। २५३ से लेकर ४६० दोहे तक विभिन्न प्रकार के पाशों का वर्णन करके, योद्धाओं का आह्वान करके पाश की पद-कीर्ति कही गयी है। इसमें वीरों के साथ भारतवर्ष की प्रमुख पवित्र नदियों गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी आदि के अतिरिक्त पंजाब की चन्द्रभंगा (जेहलम), शतद्रव (सतलुज), विपास (व्यास) और रावी आदि का भी आह्वान किया गया है+--

चन्द्रभंगो के नाम लै पति कहि अस्त्र बखान ।।
नामपांस हे होते हैं चीनीअहु प्रज्ञावान ।।३२३ ।।

सतद्रव नाथ बखानि कै पुनि कहै अस्त्र बिसेख ।।
सकल नाम ए पांस के निकसत चलत असेख ।।३२४।।

पंचम अध्याय में तुपक के नाम हैं। यथा-- अथ तुपक के नाम` तुपक बन्दूक या तुफंग का वर्णन अन्त तक अर्थात् १३१८ पद तक हुआ है। इसमें ८५८ पद्य हैं और एक ही नाम को बार-बार दुहराया गया है।

तुपक का वर्णन (१) संहारक रूप में हुआ है। यह सेना, दुश्मन और दुष्टों का संहार करती है--

बाहनि आदि उचारीअै रिप पद अति उचार ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुकवि सुधार ।।४६१।।

यह शत्रु सेना का नाश करने वाली है---

शत्रु आदि सबद उचरीजै सूलनि अन्त उचार ।।
नाम तुपक के होत हैं चीन चतुर निरधार ।।६२६।।

यह तुपक कई दुष्टों का भी नाश करती है--

दुर्जन आदि सबद उचर के धाइन अन्त उचार ।।
दुर्जन भक्कनी तुपक को लीजहु नाम सुधार ।।६३३।।

तुपक को सिंह का रूप भी दिया गया है। इसका वर्णन लगभग ३०० पद्यों में हुआ है---

सिंघ सबद को आदि बखान। ता पाछे अरि सबद सु ठान ।।
~~या-मैं-कछू-भेद-नह~~
नाम तुपक के सकल पछानहु। या मैं कछु भेद नहीं मानहु ।।७२६।।

सिंह के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया गया है। यथा-- पुण्डरीक, मृगराज, मृगपति, सिंगी, नैनोत्तम, त्रिणाचर नाथ, पशु-शत्रु आदि। तुपक ज्वाला उगलती है बादलों की तरह गरजती है--

ज्वाला आदि सबदुचरिके धरणी अन्त उचार ।।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुमति सुधार ।।६३८।।

जुआलाबमनी आदि कहि मन में सुघर बिचार ।।
नाम तुपक के होत हैं जान चतुर निरधार ।।

तुपक बादलों की सी गर्जना करती है--

घन पद आदि बखान के धुननी अंत उचार ।।
नाम तुपक के होत हैं चीनहु चतुर अपार ।।६४१।।

तुपक `काष्ठ पुष्ठ` है। यही उसकी विशेषता है---

कास्ट पृस्टणी आदि उचारहु ।। नाम तुपक के सकल बिचारहु ।।
भूमिज पृष्ठनि पुनि पद दीजै ।। नाम चीन्ह तुपक को लीजै ।।६७३।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु जी का शस्त्रनाम माला लिखने का आशय वीर भावना की पुष्टि करना था। जो शस्त्र युद्ध में प्रयोग में आते हैं, वे पूज्य हैं क्योंकि उन्हीं से अत्याचारियों तथा अधर्मियों का संहार होता है और धर्म का राज्य स्थापित होता है। इन शस्त्रास्त्रों के साथ अनेक वीरों के नामों को इसलिए जोड़ा गया है कि उनसे वे प्रेरणा ले सकें और उसी प्रकार धर्म की रक्षा, देश तथा जाति की रक्षा के लिए अपना आत्म बलिदान कर सकें। कितना महान् उद्देश्य था उस वीर सेनानी के समक्ष जिसको उन्होंने अपनी आयु में ही व्यावहारिक रूप भी दे दिया। इतनी अल्पायु में वास्तव में उन्होंने जो महान् कार्य किये, वे तत्कालीन साहित्य में मिलने अत्यन्त दुर्लभ हैं।

४- ज़फ़रनामा :-

जब सिक्ख संगत के आदेश पर, और औरंगज़ेब के वचन के कारण दशमेश पिता को आनन्दपुर छोड़कर जाना पड़ा, तब औरंगजेब की सेना ने अकस्मात् ही उन पर आक्रमण कर दिया। इससे उनका मन बहुत खिन्न हुआ। वे क्रोध में भर गए तथा थूक कर चाटने वाले औरंगज़ेब को यह पत्र लिखने लगे। यह पत्र फारसी भाषा में वीर रसात्मक शैली में लिखा गया है। यद्यपि फारसी रचना होने के कारण हमें यह अधिक समझ में नहीं आती तो भी इस भाषा में ओजगुण, उच्चारण में वीरोचित स्वाभिमान तथा सत्य को डंके की चोट से कहने का गुण हम सहज में ही अनुभव कर सकते हैं।

फारसी रचना के कारण हम इस पर यहां विचार नहीं कर पाएंगे। तो भी इसका निम्नलिखित शेअर किसने नहीं सुना होगा--

चूं कार अज़ हमह हीलते दर गुज़श्त ।
हलाल अस्तु बुरदन ब शमशीर दस्त ।।२२।। १११

१११- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १३६० ।

अर्थात् जब अन्य साधन शेष न बचा हो, तब हाथ में तलवार धारण करके उसका प्रतिकार करना पुण्य कार्य है। ऐसे उग्र, सत्य तथा वास्तविक उद्गार कोई वीर-रस में स्नात व्यक्ति ही प्रकट कर सकता है।

५- चरित्रोपाख्यान

चरित्रोपाख्यान का एक दूसरा प्रसिद्ध नाम 'तिरिआ चरित्र' भी है। इसमें प्रमुख रूप से नारी चरित्र के कृष्ण पक्ष, छल, कपट, प्रेम-आलाप आदि का वर्णन मिलता है परन्तु इसकी कुछ कथाओं में वीर रस के भी दर्शन होते हैं। यह एक दीर्घकाय रचना है। इसमें ७५५५ पद्य हैं और ५७६ पृष्ठ हैं। इस रचना का मुख्य प्रेरणा स्रोत हैं भारतीय पुराण, लोकगाथा, पंजाबी किस्सा काव्य, भारतीय इतिहास और फारसी साहित्य।

इस विषय में डा० हरिभजनसिंह का मत है--" इन कथाओं का केन्द्रीय विषय है स्त्री चरित्र। यदि सभी नहीं तो लगभग सभी कथाओं का केन्द्र बिन्दु कोई नारी पात्र है। उसके प्रेम, शौर्य, धूर्तता, साधन सम्पन्नता का चित्रण इसका ध्येय है। देश काल की परिस्थितियों का ब्यौरा कम से कम दिया गया है। केवल इतना ही जितना कि नारी-चरित्र को उद्घाटित करने में सहायक बन सके। संक्षेप में इन कथाओं को नारी-चरित्र कथा संग्रह की संज्ञा देना उपयुक्त ही है। इस रचना का लोकप्रिय नाम भी चरित्र अथवा त्रि-चरित्र है।"[११२]

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख मिलता है कि जब गुरु जी आनन्दपुर में अनेक सिद्धों, सन्यासियों, साधुओं, वैरागियों की परख कर रहे थे तो उस समय कुजिया, रामजनी, अनूपकौर जैसी अपूर्व सुन्दर रानियां वहां गईं। वे गुरु जी की ओर आकृष्ट हो गईं किन्तु गुरुजी

११२- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ ४१२ ।

ने उन्हें उपदेशों द्वारा सुमति दी और सिक्खों को ' त्रिया चरित्र ' से बचाने के लिए तथा उनके मार्ग-प्रदर्शनार्थ इस ग्रन्थ की रचना की।"[११३]

डा० महीपसिंह इन कथाओं का प्रेरणा स्रोत मनोविज्ञान मानते हैं--" युद्ध त्रास के शारीरिक और मानसिक दबाव में जीने वाले परिवार विरत सैनिकों को हल्के फुल्के मनोरंजन की जितनी आवश्यकता होती है, यह सभी युद्ध विशेषज्ञ और सैनिक मनोविज्ञानवेता अच्छी तरह जानते हैं। चरित्रोपाख्यान की कहानियां अशिक्षित और अर्ध-शिक्षित सैनिकों के लिए यह महत्वपूर्ण कार्य भी करती होंगी।"[११४]

उपर्युक्त कथनों से यह सिद्ध होता है कि गुरु जी ने यह रचना युग प्रभाव के कारण की थी। मध्य काल के भारतीय जन-जीवन में काम भावना का अत्यधिक प्रभाव था। उस समय नारी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण कर चुकी थी। वह पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं थी बल्कि छल कपट का सहारा ले कर पुरुष को अपने इशारों पर नचाती थी। इस समय की नारी के बारे में डा० महीपसिंह लिखते हैं---" इन सभी कथाओं में एक विशेष बात दिखाई देती है कि नारी कहीं भी अबला नहीं है। काम कथाओं में तो वह पुरुष से प्रतिशोध लेती ज्ञात होती है। पुरुष की कामुकता ने ही नारी को युगों-युगों से पीड़ित किया था। यहां वह इस दुर्बलता का पूरा लाभ उठाती है और कामान्ध पुरुष को अपने इशारों पर नचाती है। इस प्रकार इन कथाओं में आए पुरुष-पात्र कहां कामी और मूर्ख हैं वहां सभी स्त्री पात्र बड़े दृढ़ निश्चयी, सतर्क, चतुर और सन्तुलित हैं।"[११५]

चरित्रोपाख्यान में विषय वस्तु की दृष्टि से विविधता है,

११३- रणधीरसिंह , शब्द मूरति, पृष्ठ २१ ।
११४- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ २१३ ।
११५- -वही- पृष्ठ २१४ ।

जिनमें प्रेम, नारी पात्रों द्वारा अपने शील और पति एवं परिवार की रक्षा के लिए युद्धों का वर्णन है और साथ ही हास्य और विनोद भी प्रचुर है--

हम इन कथाओं को चार विभागों में बांट सकते हैं--- प्रेमाख्यान, कुल-कथाएं, वीर कथाएं तथा विनोद कथाएं। यद्यपि इन वीर कथाओं में वीर रस का पूर्ण परिपाक तो नहीं हुआ, फिर भी युद्ध वर्णन उत्साहवर्द्धक है तथा वीर भाव को जागृत करने वाला है। वीर रस के सहायक-रसों-- भयानक तथा बीभत्स के भी देर्शन होते हैं। युद्धवर्णन बहुत ही सजीव और प्रभावशाली है, विशेष रूप से युद्ध संचालन में विशेष पटुता दृष्टिगोचर होता है। इस बहृत रचना में केवल २४ ही ऐसी कथाएं मिलती हैं जिनमें वीर रस के साथ बीभत्स, भयानक और रौद्र रस और यत्र-तत्र हास्य रस का भी सम्मिलित रूप देखा जा सकता है।

१- चरित्र ५२ (इन्द्र प्रभा)

इस आख्यान में सूर्यवंशी राजा विजयसिंह की सुन्दर पुत्री का अपने प्रिय राजा सुभटसिंह से युद्ध वर्णित है।

वह स्वयं वीरांगना है। उसी को वह अपना पति स्वीकार करेगी जो उसे युद्ध में हरा दे। वह अपने पिता से कहती है---

तब कन्या ऐसे कही वचन पिता के साथ ।।
जो को जुद्ध जीतै मुझै वहै हमारो नाथ।।१२।। पृ० ८७६।।

वह स्वयं युद्ध की तैयारी करती है और अपनी सखियों को भी युद्ध सामग्री देती है। वह युद्ध कला में अत्यन्त प्रवीण है। वह जिसे भी अपने तीर का निशाना बनाती है वही मृत्यु को प्राप्त होता है--

मच्यो तुमल जुद्ध तह भारी, नाचे सूरबीर हंकारी ।।
तानि धनु ह्यिन बिसिख चलावत, माइ मरे पद कूकि सुनावत।।२४ ।।
पृ० ८७७।

जिह बचित्र के बान लगावै, बहै सुभट मृतु लोक सिधावै ।।
जापुर तमकि तेग की मारै, ताको मूंड काटिही डारै।।२५। पृ०८७७।

युद्ध में बीभत्स रस का दृश्य देखिए--

गीधन को मन भयो आनन्द, आजु भखै मानस के अंग ।।
दहिने बायें जोगिनि खड़ी, लै पातर स्रोनत कह अ ड़ी।।२७।।पृ०८७७।

गीध और जोगिनियाँ मांस और रक्त पीकर बहुत प्रसन्न हैं। भूत-प्रेत किल-कारियाँ भर रहे हैं--

रुधिर खपर जुग्गिन भर भारी, मारहि भूत प्रेत किलकारी।।३२।।पृ०८७७।

किसी का सिर कट गया है तो किसी का हाथ-- देखिए--

बिनु सीसन केतिक भट डोलहि, केतिन मारि मारि करि बोलहि।।
किते तमकि रन तुरैं नचावैं, जूझि कितक जम लोक सिधावैं।।३५।।पृ०८७७।

इस प्रकार इसमें सर्वत्र ही युद्ध वर्णन की सजीवता है। एक-एक पंक्ति युद्ध-चित्रण से जड़ी हुई है। सुन्दरी ने सुभटसिंह की सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी। चार प्रकार की सेना का कोई नाम-निशान न रहा। यहाँ तक कि उसने सुभटसिंह को भी अपने बाण से मूर्छित कर दिया---

सुभटसिंघ कहं पुनि सर मारयो, मूरछित कर प्रिथवी पर डारयो।।६८।
पृष्ठ ८८२।

सुभटसिंह पहले राजकुमारी से विवाह करने से इन्कार कर चुका था मगर यहाँ उसके शौर्य से प्रसन्न होकर वह उसे पत्नी के रूप में अपना लेता है।

पति रति कर रथ लयो चढ़ाई, बरयो प्रात दुंदभी बजाई ।।
सब राजन को दल बल हरा, आपन सुभटसिंह पति करा।।१०६।।पृ०८८३।।

२- चरित्र ६५ (राइक राठ)

बटमार मित्रसिंह की पत्नी अपने शौर्य कर्म द्वारा पति को शत्रुओं से मुक्त करवाती है। वह राठ किसी को भी दक्षिण राह से जाने नहीं देता था। वह डरपोक व्यक्तियों को डरा-धमका कर उनसे धन लूट लेता। जो सामने ऐंठता था उसे मार डालता था। एक बार उसका सामना शूरवीरों से हो गया। उसका घोड़ा गिर पड़ा और शूरवीरों ने उसे आकर बन्दी बना लिया+ यह सुनकर उसकी पत्नी अपने पति की रक्षा के लिए जाती है। वह किस प्रकार दुश्मन की तलवार छीनकर उसको मारती है, देखिए---

झटकि बाँह ते निजु पतिह है पर लयो चराइ ।।
ताही कौ असि छीनि कै ताँहि चडारहि घाइँ ।।६।।

जो भी जवान उसके सामने आता था उसे वह वीरांगना जीवित नहीं छोड़ती थी--

जवन स्वार पहुंचयो तिह मारयो, ऐसै बान मारिही डारयो ।।
काहू तें चित डरत न भई, निजु पति लै पुर वाकह गई ।।७।।पृ०८६४।।

३- चरित्र ६६ (गौहर बेगम)

यह कथा मरग जोहड़ नामक स्थान की एक पठान स्त्री की है। उसके पति बैरमखां पठान पर शत्रु आक्रमण करते हैं। बैरम खां भाग जाने का सामान करने लगा। उसकी पत्नी गौहर बेगम बैरम खां को फटकार डालती है कि तुम्हारे पिता ऐसे शूरवीर थे जिन्होंने नया युग पैदा किया, और तू उसी का पुत्र होकर कायरों के समान मैदान छोड़कर भाग रहा है। अपनी पगड़ी मुझे दो और तुम मेरी सलवार पहन लो। वह उसे बन्दी बना देती है और स्वयं शत्रुओं से युद्ध करती है और उन्हें रण में हरा देती है। वह पुरुष वेष धारण करती है। इसके पश्चात् युद्ध वर्णन तो देखते ही बनता है। दोनों पक्षों से वीर योद्धा जूझ पड़े। दोनों ओर नाना शस्त्रास्त्रों

का प्रयोग हो रहा है। यहाँ गौहर बेगम का वीर वेश देखते ही बनता है। वह तीर चलाने में बहुत निपुण है। फिर उसके पास नयनों के भी तीर तो हैं--

जब अबला वह नैन निहारे । भाँति भाँति ससत्र प्रहारे ।।
मूंड जंघ बाहन बिनु कीने । पठै धाम जमके कौ दीने।।२०।।पृ०६३६ ।

वह भाँति-भाँति के शस्त्र चला रही है। किसी का सिर कट रहा है, किसी की जांघ तथा किसी का बाजू। बड़े-बड़े योद्धा रण में काम आए। वे हाथी घोड़ों से हीनहो गए। योद्धा मरते-मरते भी भयंकर ध्वनि करते हैं। हाथी, घोड़ों तथा रथों पर सवार योद्धा नि:शस्त्र होते गए। शूरवीर युद्ध के चाव में नाच करने लगे तथा युद्ध की हुंकारें गूंजने लगीं।

युद्ध भूमि में चारों ओर नर मुंड ही दिखाई देते हैं। वीर योद्धा घायल होकर गिर पड़ रहे हैं। चारों ओर चीत्कार हो रहा है। भयानक रस का उदाहरण देखिए--

चहुं ओर ते चावड़ैं चीत्कारी । रहै गिद्ध आकास मंडराए भारी ।।
लगै घाइ जोधा गिरे भूमि मारे। ऐसी भाँति झूमै मनो मत्तवारे।। २७।
पृ० ६३५ ।

गौहर बेगम ने जब क्रोधित होकर वाणों की वर्षा की तो एक भी योद्धा जीवित न बच सका---

ऐसी भाँति बीर बहु मारे । बाजी करी रथी हीन डारे ।।
तुमल जुध तिह ठाँ अति मचियो । एक सूर जीयत नहि बचियो।३७।
पृष्ठ ६३६।

नारी की ऐसी वीरता के उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं।

४- चरित्र १०२ (केकई की वीरता)

एक बार देव-दानव युद्ध हुआ। इन्द्र ने अपने पक्ष से लड़ने के

लिए महाराज दशरथ को बुला भेजा। केकई भी साथ जाती है तथा रणक्षेत्र में बड़ी कुशलता से दशरथ के रथ का संचालन करती है। कैकई ने एक वीर योद्धा का रूप धारण कर लिया और दशरथ के साथ मिलकर युद्ध किया--

भरथ मात ऐसे सुनि पायो, काम सूति अजि सुतको आयो।।
आपन भेख सुभट को धरयो, जाइ सूत मन नृप को करयो।।१६।।६४७।।

रणभूमि का भयंकर दृश्य देखिए--

कहूं पारबती मूंडमाला बनावै, कहूं राग मारु महा रुद्र गावै ।।
कहूं कोप कै डाकनी हाक मारैं, गये जूझि जोधा बिना ही संघारैं।।२६।

तथा---

मचयो जुद्ध गाढ़ो मडे बीर मारे, चहूं ओर ते कोप कै-कै हकारे ।।
हुये पाक शाहीद जंगाह मयानै । गए जूझि जोधा घनौ स्याम जानै।।३०।
पृष्ठ ६४८।।

अपने पति का साथ कैकई ने इतनी निपुणता से दिया कि दशरथ का एक भी बाण व्यर्थ नहीं गया--

पति राख्यो रथ हांकियो सूरन दयो खपाए ।।
जीति जुद्ध द्वै बर लए कै कै अति सुभ कोए।।३४।।पृ० ६४६ ।।

५- चरित्र १२२ (अभै सांडराजा)

कहलूर रियासत के राजा अभयसिंह का पठानों से युद्ध होता है। अभयसिंह वीरगति प्राप्त करता है, उसकी मृत्यु के बाद कुंकम देवी और घन-सार देवी नामक उसकी पत्नियों ने शत्रुओं से लोहा लिया। इन दोनों नारियों की युद्ध वीरता देखते ही बनती है। दोनों ने ही पुरुष भेष धारण कर लिया और अपने पति की मृत्यु का बदला लेने के लिए सेना सजाली--

कुंकम दे घनसारदे दोऊ अनी बनाए ।।
दुहूं ओरठाढी भई जुध करन के भाए ।।१६। पृ० ६८८ ।

दोनों ही रानियाँ युद्ध के क्षेत्र में डट गईं--

दुहूं ओर ते ससत्र चलाए, दुहुं ओर वादित्र बजाए ।।
ऐसी नारि कृपानन डारी, एक नउबरी जीवत नारी।।१७।पृ०६८८।

बरछी दुहूं दोफली लीनी, दुहुंअन वहै उदरमैं दीनी।।
तिह को भागि कटारिन लरी, दोऊ बूझि खेत मैं परी।।१६।६८६।।

इस प्रकार वीरता से युद्ध करती हुई दोनों ही वीरगति को प्राप्त हुईं।

६- चरित्र १२३ (महा मोहिनी कथा)

समुद्र मन्थन के समय जब १५ रत्नों की प्राप्ति होती है तो देवता उस पर अपना अधिकार समझते हैं और राक्षस अपना अधिकार समझते हैं। इस पर दोनों में युद्धप्रारम्भ हो जाता है। राक्षस लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं--

चढे रोस कै कै तही दैत मारे, घुरे घोर बाजे सु मारु नगारे ।।
उठै कोप कै कै हठी देव हूके , उठे भाँति ऐसे सु मानो मभूके ।।४।पृ०६८६

युद्ध का भयानक दृश्य देखते ही बनता है। दोनों ओर से वीर योद्धा भिड़ पड़ते हैं---

कहूं ज्वान जेबे कहूं बाज मारे, कहूं भूमि झूमै दियादित मारे ।।
किते बीर घायान घाये पधारे, किते खेत सोहे महाबीर डारे।।६।पृ०६८६।
किते तेग सूते बान मारैं, किते गोफने गुरज गोले उभारैं ।।
किते मुगद्र ठावै किते तीर कोरै, किते बीर बीरान को मूंड फोरै ।।१२
पृ०६६०।

दोनों ही पक्ष महायोद्धा हैं। दोनों ही क्रुद्ध होकर एक दूसरे पर

आक्रमरण करते हैं। रण-क्षेत्र से कोई भी पक्षी पीछे नहीं हटता। बहुत मार-काट हुई। इस को देखकर विष्णु जी महासुन्दरी (महा मोहिनी) का रूप धारण करके आते हैं। जो भी उन्हें देखता है वही मोहित हो जाता है--

इतै दैत बाके उतै देव सोहै ।।
कुहु छोरि दीनो महाजुद्ध मोहै ।।२०।।

अत: इस महामोहिनी मन्त्र द्वारा यह युद्ध देवताओं द्वारा जीत लिया जाता है।

७- चरित्र १२५ (इन्द्रमति प्रसंग)

इस में राम-रावण के लंका पुरी के एक युद्ध का बहुत मनोहर दृश्य प्रस्तुत किया गया है। जमकर युद्ध होता है। मगर महामोहिनी के समान इन्दुमती नामक एक वेश्या राक्षस को भ्रमित करके युद्ध की धारा ही बदल देती है।

८- चरित्र १२६ (देस तपीसा की कथा)

अब्दुल नबी नाम का योद्धा तपीसा देश की एक गढ़ी पर आक्रमण करता है। और बहुत घमसान युद्ध मचाचा है। इस गढ़ी की स्त्रियां तोपें-बन्दूकें भर भर देती हैं, पुरुष चलाते हैं। एक स्त्री का निशानादेखिए--

भरि बन्दूक त्रिय सिसत बनाई, खान नबी के हृदे लगाई।
लागत घाय हाय नहि भाख्यो, मारि पालकी भीतरि राख्यो।।
।।५।।

पश्चात् शत्रु को प्रवंचना देकर इस स्त्री के स्त्री हो जाने की कथा है।

९- चरित्र १२८ (मावती की वीरता)

मारवाड़ के राव उग्रदत्त की पत्नी मानवती पुरुष वेश में शत्रुओं के साथ जूझती है और घायल पति को मौत के मुंह से बचाती है। वास्तव में कवि ने नारी में भी वीर भावना भरने का पूर्ण प्रयत्न किया है और इसको व्यावहारिक रूप भी दियन है जैसा कि इस चरित्रोपाख्यान में देखते हैं। मानवती सेना एकत्र करके शत्रु से लड़ने जाती है--

जोरि अनी गाढ़े सुभट तह ते कियो पयान ।।
पलक एक लागी नहीं तहां पहूचे आनि।।१९।।पृ०९९८।।

जिधर भी मानवती जाती है एक ही तीर से एक सवार को मार गिराती है---

मानवती जिह उर सिधारे, एक तीर इक सवार संघारे।।
पखरे देते पदुम बिडारे, कोटिक करी खेत में मारे।। २१।।पृ० ९९८।।

पांसन पांसि लए अरि केतिक काढ़ि कृपान कई रिपु मारे।।
केते हने गुर जान भये भट केसन ते गहि एक पछारे।।२४।।पृ० ९९९।।

अन्त में रानी घायल राजा को ले जाती है और राजा रानी की अपूर्व वीरता की प्रशंसा करता है और कहता है कि तेरे समान संसार में कोई भी स्त्री नहीं है।

१०- चरित्र १३७ (वीरांगना द्रौपदी)

द्रौपदी के स्वयंबर परकौरव पाण्डवों से उलझ पड़ते हैं। अर्जुन के घायल होने पर द्रौपदी स्वयं शत्रुओं से युद्ध करती है और उन्हें हरा देती है।

अर्जुन के मूर्च्छित होते ही द्रौपदी ने अपने हाथ में धनुष बाण धारण कर लिया---

एक बिसिख अुरजुन के उर मै मारियो। गिरयो मूरछना धरनि न नैक
संभारियो।।
तबै द्रोपती साइक धनुख संभारकै। हो बहु बीरन को दियो मौ मारि कै।३२।।
पृष्ठ १०१६।।

वह बाण चलाने में इतनी कुशल है कि उसने दुर्योधन को भी मार दिया, कौरवों की सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी, उसने शत्रु की घुड़सवार, पैद सारी सेना समाप्त कर दी। उसने बाणों की इतनी वर्षा की कि कौरवों की सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गई--

गहि धनु पान धनं जै गजियो, तब ही सैन कैरवन भाजयो।।३६।।पृ०१०१६।।
बाजा बली धनजै धारी, मूरछित सकल सैन करि डारी।। ४०।।पृ०१०१६।।

११९ चरित्र १४२ (उषा-अनिरुद्ध कथा)

इसमें सुप्रसिद्ध उषा-अनिरुद्ध प्रेम कथा और बाणासुर-कृष्ण युद्ध की कथा कही गई है। यह दशम ग्रन्थ के पृष्ठ १०२० से १०२५ तक दर्ज है।

१२- चरित्र १४७ (खैरी-सम्मी की वीरता)

दिल्ली-नरेश फतेह खां पर रुष्ट हो गया। उसकी पत्नियां खैरी व सम्मी अपने बल-पराक्रम द्वारा उसे मुक्त करवाती हैं। अपने पति की कैद सुनकर स्त्रियां सेना की तैयारी करती हैं और पुरुष के वेश धारण करती हैं- -

बंधयो राव बालन सुनि पायो, सकल पुरख को भेख बनायो ।।
बालोची सैना सम जोरी, भांति भांति अरि प्रतिना तोरी।।३।।पृ०१०३१।

वे शत्रु को जाकर ललकारती हैं। श्रृंगार रस में लिप्त रहने वाली ये नायिकाएं आत्म सम्मान की रक्षा हेतु शत्रु से लोहा भी ले सकती हैं।

निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी निर्भयता की अभिव्यक्ति देखिए--

घेरि सैद खां को त्रियन ऐसे कह्यो सुनाए ।
कै हमरो पति छोरिये कै लरिये समुहाए ।।४।।पृ० १०३१।।

सैदखां भी वीर था। ऐसे वचन सुनकर वह भी अपनी सेना को सुसज्जित करके युद्धके मैदान में आ गया। दोनों ओर से सेना डट गई। युद्ध का दृश्य प्रस्तुत है---

लैरी जाए खग्ग गहि मारै, गिरै भूमि न रतीक सँभारे ।।
सम्मी निरखि जाँहि सर छोरै, स्कै बान मूंड अरि तारै।।८।।

अन्त में दोनों वीरांगनाओं की जीत होती है। सैद खां भी ऐसी वीर नारी की प्रशंसा किये बिना कैसे रह सकता था। यही कवि की सुन्दर कल्पना है। वह स्वयं उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

१३- चरित्र १५१ (गुमानमति की वीरता)

राजौरी के राजा कृपितसिंह की वीर पत्नी गुमानमति अपने पति के साथ युद्ध में जाती है। तुफंग लगने पर उसके पति का देहान्त हो जाता है। अपने पति का मृत शरीर अम्बारी पर बांध कर वह सेना का नेतृत्व करती है और युद्ध में विजय प्राप्त करती है। बड़े योद्धा कट-कट कर गिरने लगे--

चटपट सुभट बिकटि कटि कटि कै भू परैं ।।
खंडि-खंडि किते अखंडियन सहि खग्गन मरैं ।।
टूक-टूक ह्वै गिरै न मोरै नेकु मनु ।।
हो प्रलै काल सो कियो बिघाते बहुरि जनु।।८।।पृ०१०३६।।

रण में विजय प्राप्त करने के उपरान्त रानी सती होनेलगी। उसी समय आकाशवाणी हुई--" कि तुमने अपने पति का साथ

दिया इसलिए ईश्वर तुम्हारे पति को जीवित करते हैं।"

१४- चरित्र १५२ (

इसमें जमासुर के महामोहिनी द्वारा ठगे जाने की कथा वर्णित है।

१५- चरित्र १७६

सुबीरमति नामक स्त्री का डाकुओं से युद्ध वर्णित है।

१६- चरित्र १९५ (मारवाड़ राजपूतनी युद्ध)

मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु पर जसवन्तसिंह की रानियां औरंगज़ेब कीसेना से युद्ध करती हैं। दोनों ओर की सेनाएं युद्ध में व्यस्त हैं---राजपूतों ने वीरता से युद्ध किया--

आनि परे रिसि ठानि रठौर चहूं दिसि ते कर आयुध लीने ।।
बीर करोरिन के सिर तोरि सु राखन को हलकाहनि दीने ।।
रुंड परे कहूं तुंड निपान के झुंड ह्यानके जात न चीने ।।
कंबर के बहु टंबर अंबर छीनि दिगम्बर कीने ।।२७।पृ० १०८७।।

युद्धभूमि का कितना सजीव चित्र है।

१७- चरित्र २०४ (कैलाशमति की वीरता)

कमाऊ नरेश वीरसिंह की पत्नी कैलाशमती के दिल्ली पति शाहजहां की सेना से युद्ध वर्णन है। राजपूत फिरंगियों के जहाज़ लूट लेते थे। फिरंगियों ने शाहजहां के पास जाकर फरियाद की। शाहजहां ने सेना भेज दी। सात दिन युद्ध होता रहा। उनके मसाले जला दिये, आग लगा दी,

पकवान में ज़हर मिला दिया और इस प्रकार शत्रु सेना का नाश किया।

१८- चरित्र २०७ (मुसकमती की वीरता)

इस चरित्र में कूच बिहार के राजा बीरदत्त की वीर-पत्नी मुसकमती के दिल्लीपति अकबर से युद्ध का वर्णन है।

१९- चरित्र २१७

इस चरित्र में सिकन्दर की विश्व विजय का संक्षिप्त विवरण अंकित है।

२०- चरित्र २६७ (सकुचमती रण-कथा)

दिल्ली का दीवान शमसुद्दीन सिद्धपाल नामक क्षत्री की कन्या सकुचमती पर मोहित हो जाता है। क्षत्री अपनी कन्या का विवाह मुस्लिम परिवार में नहीं करना चाहता, अत: युद्ध होता है। जिसमें शमसुद्दीन पराजित हो जाता है। धर्म के लिए प्राण आहूत करना ही इस कन्या का मुख्य कर्त्तव्य है। कन्या बहुत ही साहसी है वह अपने पिता से कहती है---

अब लौ ऐसी बात न भई ।।
तुरकन के क्षत्रानी गई ।।३६।।पृ० १२४७।।

हम क्षत्रीय हैं और हमारा धर्म अपनी रक्षा करना है। सब युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। केसरी वस्त्र धारण कर लेते हैं। दोनों ओर से सेनाएं युद्ध के लिए चल पड़ती हैं--

इहि दिसि सभ क्षत्री चढ़े उहि दिसि चढ़े पठान।।
सुनहु संत चित दै सभै जिह बिधि भयो निदान ।।५६।।पृ०१२४६।।

चले बान ऐसे दुहूं ओर मारे, लगै अंग जाके न जाँही निकारे ।।५७।।
।पृ० १२४६।।

कहूं बान काटे परे भूमि ऐसे, बुआकौ किसानै कढे ईख जैसे ।।
कहुं लहलहैं पेट में यौं कटारी, मनो मच्छ सोहैं बधे बीच जारी।।६०।।
।। पृष्ठ १२४६।।

युद्ध का भयानक और बीभत्स रूप देखिए--

कितै पेट पाटे परे खेत बाजी, कहूं मत दैती फिरैं छूछ ताजी।।
कहूं मूंड माली पुर्बै मुंड माला, कहुं भूत औ प्रेत नाचै बिताला।।६१।।
।।पृष्ठ १२४६।।
तहां कोटि सौडीन के सुंड काटे ।। कहां बीर मारे गिरे केत फाटे।६४।।
।।पृष्ठ १२४६।।

युद्ध का प्रसिद्ध मारू राग गूंज रहा है। नफीरी और युद्ध के नगारे बज रहे हैं--

कहूं संख भेरी तहां नाद बाजैं, हसैं गरजि ठोकै भुजा भूप गाजैं ।।
नगारे नफीरी बजैं फार्फ भारी, हठे रोस कै कै तहां छत्रधारी।।६५।।
।पृष्ठ १२ ४६।।

देवी से वही वरदान मांगते हैं कि हे माता तुम सदा हमारी रक्षा करो--

मैया इहै दान मुहि दीजै, रच्छा आपु हमारी कीजै ।।
छत्रानी ग्रिह तुरक न जाइ, मुहि बर देहु इहै जग माइ।।६७।।पृ०१२५२।।

तथा--

सत्र न जीति हमें कोई जाए, तुम महि रहै मोर मन भाए।।६८।।पृ०१२५२।

जिस पर भवानी की कृपा होती है उसे कोई भी हरा नहीं सकता। वह शक्ति का अनन्त भण्डार है। दुष्टों का नाश करने वाली है।

धन-धान्य को प्रदान करने वाली है।[११६] इसी की तो कवि ने आराधना की है और इसी से प्रेरणा लेकर कवि वीर-भावना का संचार करता है।

२१- चरित्र ३३५ (कांधलदेवी की वीरता)

सरोही का राजकुमार बीरमदेव बहुत सुन्दर है। उसे देखकर हर कोई ठगा सा रह जाता है। दिल्ली नरेश अलाउद्दीन की बेटी बीरमदेव पर आसक्त हो जाती है--

" कै बाबुल गृह गोरि खुदाओ, कै बीरम दे मुहि बर दयाओ।।"

अलाउद्दीन बीरमदेव को धर्म परिवर्तन के लिए कहता है। बीरम देव यह प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। वह भाग कर कांधल देश में चला जाता है। कांधल की रानी उसका रूप देखकर मूर्च्छित हो जाती है। पीछे अलाउद्दीन की सेना थी, उससे कांधल की सेना भिड़ जाती है। कांधलदेवी निर्भय होकर लड़ी मगर वीरगति को प्राप्त हुई।

२२- चरित्र ४०५

सप्तसिन्धु का एक राजा था जिसका यश चौदह पुरियों में छाया हुआ था। ब्रह्मा ने स्वयं राजतिलक करके उसे देवों का राजा बनाया। उसने सब दानव मार भगाए। बहुत वर्ष राज्य किया। तब दीर्घबाहु नामक राक्षस ने जन्म लिया। और राजा पर चढ़ाई कर दी। इसी बहाने कवि ने एक बार पुनः देव-दानव युद्ध का वर्णन किया है। देवता काल की स्तुति करते हैं और स्वयं काल देव-पक्ष से राक्षस-सेना के साथ लड़ाई करते हैं। एक दृश्य देखिए--

---

११६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १२५२, छन्द ९९-१०० ।

ससत्र साज कोपा तब काला, धारत भयो भेस बिकराला।।
बान अनेक कोप करि छोरे, सत्र अनेकन के सिर फोरे।।१०७।।१३६७।

युद्धभूमि का भयानक दृश्य देखिए--

चलत महँ सरिता स्रोनत तहँ, जुद्ध भयो काली असुरन जहँ ।।
सीस केरु जहँ भये सिवारा, स्रोन प्रवाह बहत हह हारा।।१३२।१३६८।

भूत, प्रेत, डाकनी प्रसन्न हो गए--

जहाँ बीर बैरी बड़े घेरि मारे, तहाँ भूत औ प्रेत नाचे मतवारे।।
कहूँ डाकनी काकनी हाँक मारैं, उठै नाद भारे कुटै चीतकारैं ।।१३६।
।।१३६६।।

राक्षस भी मरते दम तक युद्ध करते रहते हैं। वे सही अर्थों में वीर हैं, भागना नहीं जानते--

केतिक की बाहन कटि डारा, करे रुंड बिनु मुंड हजारा।।
केतिक चीर अघौ अघ डारे, नाचत भूत, प्रेत मतवारे।।१५३।।१३७०।।

यहाँ गुरु जी ने एक अद्भुत कल्पना की है और इस कथा को युद्ध पुराण बनाने हेतु एक बिल्कुल नई उद्भावना की है। राक्षसों के शरीर से ज्वाला निकली, उनसे पठान बन गए, उनके मुख की ज्वाला से मुगल बन गए, उनकी श्वास से सैयद शेख बन गए और ये सब रण-क्षेत्र में युद्ध करने आ गये। यह कवि की कल्पना है और युग का प्रभाव भी। तभी तो हम इसमें पठान, मुगल, सैयद आदि के नाम प्राप्त करते हैं। नाहर खाँ, बैरम खाँ, रुसमत खाँ, हसन खाँ, हुसैन खाँ सब ने मिलकर महाकाल पर धावा बोल दिया। महाकाल ने पठानों को मार गिराया। मलेच्छ सेना भी भयभीत हो गई--

त्रासित महँ मलेछी सैंना, आयुध सका हाथ कोई लैना।।२१२।।पृ०१३७४।

हसन खाँ, मुहम्मद खाँ भी मारा गया। शत्रु सेना में खलबली

मच गई--

इह बिधि मारि सैयदी सैना, सेख फौज भाजी बिनु चैना ।।
महाकाल जब भजै निहारे, बिसिख कोप नहि ताहि प्रहारे।।२१७।पृ०१३७४।।

भागती हुई शत्रु सेना पर महाकाल ने तीर नहीं चलाया। यहीं पर कवि ने वीरता की रक्षा की है। इस प्रकार कवि बार-बार रासों से युद्ध का वर्णन करता है और युद्ध के भयानक दृश्य, अस्त्र-शस्त्र की ध्वनि, युद्ध के बाजों की आवाज़, शरीर के कटे-फटे विभिन्न अंग, रुधिर की नदी, भूत-प्रेत, डाकनियों, युद्ध में प्रयुक्त नाना प्रकार के हथियारों की पुनरावृत्ति होती है। खून से होली खेलने का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है--

इहि बिधि-कोप काल जब भरा, दुसटन को छिन में बधु करा ।।
आपु हाथ दै साथ उबारे, सत्र अनेक छिनक मो टारे।।२७६।।पृ०१३७६।।

महाकाल ने किस प्रकार शत्रु सेना का विनाश किया--देखिए--

भाँति भाँति तन सुभट प्रहारे, टूक टूक करि प्रिथी पकारे।।
केसन ते गहि कितन पकारा, सत्र सैन तिल तिल करि डारा।३३३।।
पृ०१३८३।।

इस प्रकार शौर्य कथाओं का प्रमुख प्रेरणा स्रोत भारतीय पुराण ही है। डा० हरिभजनसिंह जी के कथनानुसार--" पौराणिक कथाओं के लिए गुरु गोबिन्दसिंह को इतना मोह है कि वे उसकी पुनरावृत्ति करते हुए भी नहीं उकताते। इन कथाओं में सुरासुर युद्ध के लिए उन्हें विशेष मोह है। अन्तिम चरित्र ४०५ में दी गई असुर चण्डी अथवा असुर महाकाल की कथा उन्होंने थोड़े बहुत अन्तर के साथ दशम ग्रन्थ में छः सात बार कही है।"[११७] पुराण के अतिरिक्त लोक परम्परा, इतिहास, तथा कल्पना भी इन शौर्य-कथाओं के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

११७- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य : पृष्ठ ४३० ।

अन्तिम चरित्र में महाकाल का असुरों से युद्ध होता है, साथ में पठान, सैयद, मुगल, मलेच्छ भी आ जाते हैं, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं को तत्कालीन जन-जीवन की आवश्यकतानुसार एक नया रूप दिया है, जिसका वर्णन हम पीछे कर चुके हैं।

इन शौर्य-कथाओं की एक अन्य विशेषता धर्म-परिवर्तन के विषय में मिलती है। इसके विषय में डा० हरिभजनसिंह के विचार इस प्रकार हैं---" तत्कालीन यथार्थ से जोड़ने वाला एक और तत्व जो इन कथाओं में पाया जाता है वह है धर्म परिवर्तन का तत्व। मध्य युग में राजनीतिक सत्ताधारियों का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत धर्म ही था। अत: उनके विरुद्ध उठने वाले आन्दोलन का रूप भी मिश्रित ही था। दक्षिण में शिवा जी और उत्तर में गुरु गोबिन्दसिंह जी जिस विद्रोह का संगठन और संचालन कर रहे थे उसका रूप राजनीतिक भी था और धार्मिक भी। परिणामत: इन शौर्य कथाओं में युद्ध, राजनीतिक आर धार्मिक दोनों प्रकार के कारणों से होते हैं। चरित्र १२२, १२६, १२८, १४७, १५१, २०६ में युद्ध का कारण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में राजनीतिक है किन्तु चरित्र २६७ और ३३६ में क्रमत: अन्त: धर्म विवाह और धर्म परिवर्तन है।"[११८] इसका वर्णन २६७ में विस्तार से किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इन कथाओं द्वारा कवि ने हमें अतीत को स्मरण करवाया और तत्कालीन समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चरित्रोपाख्यान में नारी की वीरता कई दृष्टियों से प्रदर्शित की गई है। डा० हरिभजनसिंह के अनुसार ये चार दृष्टियां हैं---

१- पतिवरण के लिए शौर्य एवं साहस का प्रदर्शन।

२- भीषण युद्ध में दुर्जेय शत्रु को बलहीन करने के लिए नारी की छल-क्रिया।

११८- डा० हरिभजनसिंह: गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ४३३ ।

३- युद्धभूमि में पति की सहायता, रक्षा, पति मरण पर युद्ध संचालन आदि।

४- चोरों डाकुओं से पति एवं धन की रक्षा।।

(ग) वीर रसात्मक शैली एवं पृष्ठभूमि पर विरचित कृतियाँ

`चउबीस अवतार` कथा के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह रचना राम और श्याम नाम से अभिहित है। गीता के `यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतु भारत:` भाव के अनुसार पहले विषय का उत्थान करते हुए एवं अवतारों का कारण-पक्ष या शंका-पक्ष बतलाता हुआ श्याम कवि कहता है---

जब-जब होत अरिसटि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा ।।
काल सपन को पेख तमासा। अंतह काल करत है नासा ।।२।।
इन महि स्रिसटि सु दस अवतारा।। जिन महि रमिया राम हमारा।।
अनत चतुरदस गन अवतारु।। कसो जु तिन तिन किए अखारु।।४।।

यहाँ पारब्रह्म के नामों की कुछ परिभाषाएं दी गई हैं, जो निम्नलिखित हैं---

बिअंत :

आप रचै आपे कल पाए ।। अवरन कै दै मूंह हताए ।।
आप निरालमु रहा न पाया।। तातै नामु बिअंत कहाया।।६।।

क्लीआ:

सभी ही कलत न आप कलाया।। ताते क्लीआ आप कहाया ।।

दीनबन्धु:

सन्तन दुखी निरस अकुलावै।। दीनबन्धु ताते कहलावे ।।८।।

काल: अंत करत सभ जग को माला ।। नामु काल ताते जग डाला।।

सन्त: सभै संत पर होत सहायी।। ताते संख्या संत सुनाई।।९।।

करुणानिधि: संतन पर करुणा रस ढरई।। करुणानिधि जग तबै उचरई।१०।

संकट हरन: संकट हरत साधवन सदा।। संकट हरन नामु भयो तदा।।

दुख दाहन: दुख दाहत संतन के आयो। दुख दाहन प्रभ तदिन कहायो।।११।।

कर्ता : जग मो रूप सभन के धरता।। या ते नामु बखनीयत करता ।।१२।।

अलख: किनहूं कहूं न ताहि लखायो।। इह कर नामु अलख कहायो ।।

अजोन: जोन जगत मै कबहू न आया।। याते सभों अजोन बताया।।१३।।

करतार: ब्रसादक सभ ही पचहारे।। बिसन महेश्वर कऊ न बिचारे ।।
चंद सूर जिन करे विचारा।। ताते जनीयत है करतारा।।१४।।

अभेखी: सदा अभेखे अभेखी रहई।। ताते जगत अभेखी कहई ।।

अलेख : अलख रूप किनहूं नहि जाना।। तिह कर जात अलेख बखाना।।१५।।

तदोपरान्त हिन्दुओं, तुर्कों एवं जोगियों, जंगमों आदि की ओर किये जाते कुदम-वेशों का वर्णन है कि वे सब प्रभु की रचना और स्वयंभू का पार नहीं पा सकते। पुन:, सृष्टि की रचना का संकेत करके अवतार धारण करने की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है---

प्रथम काल सभ जग को ताता।। ताते भयो तेज विख्याता।।
सोई भवानी नामु कहाई ।। जिन सिगरी यह स्रिसटि उपाई ।।२९।
प्रिथमै ओअंकार तिन कहा।। सो धुन पूर जगत मो रहा ।।
ता ते जगत भयो बिसथारा।। पुरख प्रकित जब दुहू बिचारा।।३०।।
जगत भयो ताते सभ जनीयत।। चार खान कर प्रगट बखनीयत।।
सकत इती नहीं बरन सुनाऊं।। भिन्न भिन्न कर नाम बताऊं।।
बली अबली दोऊ उपजाए।। ऊच नीच कर भिन्न दिखाए।।
बपु धर काल बली बलवाना।। आपन रूप धरत भयो नाना ।। ३२।।

भिन्न भिन्न जिमु देह धराए।। तिमु तिमु कर अवतार कहाए।।
परम रूप जो एक कहायो।। बंत सभो तिह मधि मिलायो ।।३३।।

और भी--

एक ही रूप अनूप सरूपा।। रंक भयो राव कहू भूपा ।।
भिन्न-भिन्न समहन उरझायो।। सभ ते जुदो न किनहूं पायो।।३७।।
भिन्न भिन्न समहूं उपजायो।। भिन्न भिन्न कर तिने खपायो।।
आप किसू को दोस न लीना।। अऊरन सिर बुरिआई दीना।।३८।।

मच्छावतार :-

उपर्युक्त में ही इस अवतार-कथा का शंका-पदा निहित है। वह कर्ता स्वयमेव सृष्टि की रचना करता है, स्वयमेव सब को भिन्न-भिन्न करके उनमें कलह-कलेश उत्पन्न करता है। दानव पदा बहुत बलवान हो जाता है, उन्हीं के संखासुर दानव के पापों एवं अत्याचारों के बढ़ जाने के कारण विष्णु का प्रथमावतार मच्छावतार के रूप में हुआ--

संखासुर दानव पुन भयो।। बहुविधि कै जग को दुख दयो ।।
मच्छ अवतार आप पुन धरा।। आपन जाप आप मो करा।।३९।।

सर्वप्रथम एक छोटी सी मछली का शरीर धारण करके मच्छ ने समुद्र को झकझोर डाला, तत्पश्चात् वह अपना विस्तार करता गया, जिससे संखासुर कुपित हो उठा। यहाँ पर इस मच्छ-संख का संघर्ष पदा उपस्थित होता है। इस कथा को ३९ वें श्लोक से ५४ वें श्लोक तक कहा गया है। संघर्ष पदा देखिए--

तबै समरे दीन हेतं दिआलं।। धरे लोह क्रोहं क्रिपा कै क्रिपालं ।।
महा असत्र पातं करे सस्त्र घातं।। टरे देव सरणं गिरे लोक सातं।।४२।।
भये अत्रघातं गिरे चऊर चीरं।। रुले तच्छ मुच्छं उठे तिच्छ तीरं।।
गिरे सुंड मुंडं भीम रूपं।। मनो खेल पऊढ हठी फाग जूपं ।। ४३।।

कटे चरम बरमं गिरियो सत्र ससत्रं।। भके मै भरे भूत भूमं त्रिसत्रं ।।
रण रंग रते सभी रंग भूमं ।। गिरे जुध मच्छं बली सूम सूमं ।।५१।।

शत्रुसेना के इस प्रकार कट-कर गिर जाने के बाद मच्छावतार एवं शंखासुर में द्वन्द्व-युद्ध होता है, मानो दो पहाड़ आपस में टकरा गए हों-

भयो हुंद जुद्धं रणं संख मच्छं।। मनो दो गिरं जुद्ध जुटे सपच्छं ।।
कटे मास टुक्कं भखे गिद्धि ब्रिधं।। हसी जोगणी चऊ सऊ सूर सुद्धं।।५२।।

समाधान पदा :-

शीघ्र ही युद्ध का फैसला मच्छावतार के पदा में आता है--

संखासुर मारे बेद उधारे सत्र संघारे जसु लीनो ।।
देवे सु बुलायो राज बिठायो छत्र फिरायो सुख दीनो ।।
कोटं बजे बाजे अमुरेसुर गाजे सुंघ घरि साजे सोक हरे ।।
दै काटक दछना कोर प्रदछना आवि सु मच्छ के पाय परे।।५४।।

नरनारायण अवतार :-

इसे `क्षीर (खीर)े समुन्द्र मंथन चऊदह रतन कथन` शीर्षक दिया गया है। कुल २० श्लोकों में यह कथा वर्णित की गई है। इस का शंका-पदा प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है कि एक समय देवों-दानवों ने मिल कर समुन्द्र मन्थन किया, जिसमें से चौदह रत्न निकले। तत्पश्चात् इन चौदह रत्नों के नाम दिये हैं-- धनुष, मधु, गज, बाज, सुधा, लक्ष्मी, कलप्रदुम, माहुर और रंभा, चन्द्रमा, धेनु गाय , आदि रत्नों के साथ ही बहुत सारे उप-रत्न भी निकले। पुन: बहुत सी धातु व उपधातु निकले। इन सब पदार्थों की बांट के समय देवों-दानवों में परस्पर संघर्ष हुआ, तभी विष्णु को नर-नारायण का विराट रूप धारण करना पड़ा। यही इस युद्ध का शंका पदा है---

दीयो इन्द्र ऐरावत बाज सूरं।। उठे दीह दानो जुधं लोह पूरं।।
अनी दानवी देख उठी अपारं।। तबै बिसन जू रित कीनो बिधारं।।१४।।

संघर्ष पदा :-

नरं अऊर नारायणं रूप धारी।। भयो सामुहे ससत्रं असत्रं संभारी।।
मटं ऐठे फैटे भुजं ठोक भूपं।। बजे सूल सेलं भये आप रूपं ।।१५।।
परयो आव मो लोहि, कोहं अपारं।। धरमो ऐस कै बिसन तृतीआवतारं।।
नरं एक नारायणं दुऐ सरूपं।। दिवै जोति सऊदर जुधारे अनूपं।।१६।।

युद्ध में कवि की ईमानदारी दर्शनीय है, एक बार तो देवता भी गिर पड़े। राक्षस पदा के शौर्य, युद्ध-कला, संघर्ष-पटुता एवं दम-खम का वर्णन देखते ही बनता है---

उठे टूव टैपं गुरजं प्रहारे।। जुटे जंग को जंग जोधा जुसारे ।।
उड़ी धूरि दूरं छुही ऐन गैनं।। डिगे देवता दैत कंवियो त्रिनैनं ।।१७।।
गिर वीर एकं अनेकं प्रकारं ।। सुभे जंग मो जंग जोधा जुझारं ।
परी तच्छ मुच्छं सुभे अंग भंगं।। मनो पान कै भंग पौढ़े मलंगं ।।१८।।

और लड़ते-लड़ते देवता भाग खड़े हुए। समाधान पदा देखिए--

दिसा मऊन आई अनी दैत राजं।। भ जे सरब देवं तजे सरब साजं ।।
गिरे संग पुंजं सिरं बाहु वीरं ।। सुभे बान जिऊ चेत पुहपं करीरं।।१९।।

तब विष्णु को मनमोहिनी रूप धारण करना पड़ा। जो विष्णु का पाँचवाँ अवतार था।

वैराहावतार :-

यह विष्णु का छठा अवतार है। इस अवतार-कथा में केवल १४ श्लोक हैं। इस अवतार-कथा में भी युद्ध का विशेष रूप से और उभर-पदा की वीरता का यथोचित वर्णन किया गया है। युद्ध का शंका-पदा प्रस्तुत

करते हुए कवि ने बतलाया है कि विष और अमृत को देव-दानवों में बाँटकर भगवान चले गए। देव-दानव भी अपने-अपने गन्तव्य-स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं। थोड़ी ही दवधि में दोनों में पुनः वैर-विरोध बढ़ गया और ` भजे देवता दइत जिते जुझारं `। हिरण्य तथा हिरण्याक्ष नाम के दो दानव वीरों ने जल-थल व सारी पृथ्वी पर अपना अधिकार जमा लिया। उन्हें अपने भुज-बल पर ` गर्व हो गया) गर्व ही भगवान् के अवतार का कारण है तथा वीरता द्वारा दुष्ट-दलन करके साधुओं को सुख देना और सर्वत्र धर्म का डंका बजाना उसका महत्वी कार्य है---

हिरिन्यो हिरंनाक्ष दोय बीरं।। सभै लोग कै जीत लीने महीरं।।
जलं थलेयं कीयो राज सरबं।। भुजा देख भारी बढ्यो ताहि गरवं।।२।।
धसी भूम बेदं रही हुअै पतारं।। धर्‌यो बिसन तऊ दाढ़गाढ़ावतारं।।
धमूयो नीर मद्धं कीयो ऊच नादं।। रही धूरि पूरं पुवं निरबिखादं।।४।।

उसके बाद युद्ध का संघर्ष-पक्ष आता है-- तब वैराहावतार एवं राक्षस-सेना के मध्य जो युद्ध होत ा है और जिस वीरता, शौर्य, बीभत्स , रौद्र एवं जुगुप्सा का मिला-जुला प्रभाव सहृदय के मन पर पड़ता है, उसका दश म ग्रन्थ के कर्ता के शब्दों में ही पढ़कर रसास्वादन किया जा सकता है---

मुखं मुच्छ बंकी बकै सूरबीरं।। तडंकार तेगं सडंकार तीरं ।।
धमक्कार सारंग खडक्कार खग्गं।। टुटे टूक टोपं उठे नाल लग्गं।।६।।

उठे नाद नादं धमक्कार ढोलं।। ढलंकार ढालं मुखं मार बोलं ।।
खहे खग खूनी खुले बीर खेतं।। नचे कंधि होणं कमद्धं नृचेतं ।।७।।
मरे जोगणी पत्र चऊसठ चारी।। नची खोल सीसं बको बिकरारी।।
हसै भूत प्रेतं महा बिकरालं।। बजे डाक डऊरू कसरं करालं ।।८।।
प्रहारं त मुसटं करै पाव घातं।। मनो सिंघ सिंघं डहे गज मातं ।।
छुटी इंस ताड़ी लगियो ब्रहम धिआनं।। भजयो चन्द्रमा कांव मानं मध्यानं ।।९।।

-- -- -- -- --

दिनं असट जुधं भयो असट रैणं ।। डगी भूम सरबं उठयो कांप कैणं ।।
रणं रंग रचे सभै रंग भूमं।। हणयो बिसन सत्रं गिरयो अंत भूमं ।।१२।।

समाधान पदा :-

इस प्रकार दुष्टों का दमन करके विष्णु ने वेदों का उद्धार किया--

धरयो खसटमं बिसन ऐसावतारं।। सभै दुसट जिते कीयो वेद उधारं।।
थट्यो धरम राजं जिते देव सरबं।। उतारयो भली भांत सों ताहि गरबं।।
१४।।

अत: उनका यह वीर-कर्म धर्म दुष्ट दमन हेतु, धर्म की स्थापना हेतु , वेद के उद्धार हेतु और `गर्व` के गंजन हेतु ही है, इसमें कोई शंका नहीं है।

नरसिंघ अवतार :-

नरसिंहावतार विष्णु का सातवां अवतार है+ और यह मिले-जुले ४२ श्लोकों पर निभरै है। इसमें हिरण्याकश्यप और भगत प्रहलाद की पैराणिक गाथा का वर्णन किया गया है। सन्तों का उद्धार एवं दुष्टों का गर्व हरण करने के लिए--

"प्रहलाद भगत लीनो वतार।। सभ करनि काज संतन उधार।।"

युद्ध का शंका-पदा इससे सुन्दर रूप में प्रस्तुत करना शायद असम्भव है। प्रहलाद को बचाने हेतु भगवान् नरसिंह के अवतार धारण किया, उनका रुद्र-रूप देखते ही बनता है:

लखि देव दिवार सभै ठहरे।। अविलोक चराचर हूहिहिरे ।
गरजे नरसिंग नरांत करं।। दृग रत्त कीओ मुख श्रौण भरं।।६।।

प्रहलाद के प्रसंग में नरसिंहावतार की कथा कहने वाले अन्य कथा-

कारों का ध्यान भगवान् के विराट स्वरूप एवं शैवी शक्ति की ओर ही अधिकतर गया है, मगर वीरता के अग्रणी, दशमग्रन्थ के कर्त्ता ने भगवान को नर रूप में ही वर्णित किया है। उभय पक्ष की अपार सेना, रण-सज्जा एवं युद्ध पैंतड़ों का वर्णन उन्होंने इस लग्नस्वं प्रामाणिकता से किया है कि स्वयमेव वीर-रस का उदय हो जाता है---

लख दानव साज चले सभ ही। गरजयो नरसिंघ रणं जब ही ।।
इक भूपति ठाढ़ि रह्यो रण मैं।। गहि हाथ गदा निरभै मन मैं।।१० ।।

युद्ध वर्णन :-

रण रंग तुरंगन रेस भयो।। सिव धिआन छुट्यो ब्रह्मण्ड गिरयो।।
सर सैल सिला सित रेस बहै।। नभि अउर धरा दोऊ पूर रहे।।२७।।
-- -- -- -- --
बहि कटी भट एकन रेसी। सुंड मनो गज राजन जैसी।।
सोहत एक अनेक प्रकारं।। फूल खिरे जनु बद्धि फुलवारं।।२४।।
स्रोण रंगे अर एक अनेकं ।।फूल रहे जनु किंसुक नेकं ।।
धावत घाव कृपाण प्रहारं।। जानक कोपु प्रतच्छ दिखारं ।।२ ५।।

लड़ती हुइ सारी शत्रु सेना भाग निकली--" त्याग चले रण कौ सभ बीरा । लाज बिसरि गई भये अधीरा"। तब हिरण्यकश्यप स्वयं क्रुद्ध होकर रण का हार (गाना) बांधकर स्वयं खेत में उतर पड़ता है। साथ में जो सैनिक थे, वे भी कुछ समय के बाद भाग निकले। तब दोनों वीरों में `मुष्टि प्रहार` होने लगा और आठ दिन व आठ रात लगातार यह द्वन्द्व-युद्ध होता रहा, तब असुर कुछ मुरझा गए और `गिरयो भूम जन बृच्छ पुराना।` यहां युद्ध-वीर केसाथ ही दया-वीर एवं धर्मवीर के अत्यन्त मार्मिक स्वरूप का निदर्शन किया गया है। मूर्च्छित वीर पुर प्रहार नहीं किया गया अपितु थोड़ा-सा पानी पिलाकर उसे पुनः जगाया जाता है और `द्वन्द्व` होता है जो इस प्रकार है---

हला चाल कै कै पुनर बीर ढूके।। मचयो जुद्ध जियो करन संग घडूके ।।
नख पात दोऊ करे दैत घातं।। मनो गज जुट्टे बनं मसत मातं।।३८।।
पुनर नारसिंघ धरा ताहि मारयो।। पुरानो पलासी मनो बाय डारयो।।
हनयो देख दुसटं भई पुहप बरखं।। कीए देवतयां आनकै जीत करखं।।३९।।

अत: इस युद्ध में ` समाधान-पदा` इस प्रकार प्रस्तुत है--

लिन्नो सु भगत अपनो छिनाय।। सभ सिसट धरम करमन चलाय।। ४०।।
पृष्ठ १६७।।
प्रहलाद करयो नृप छत्र फेर।। दीनो संघार सभ हम अधेर ।।
सभ दुसट असिसट दिन्ने खपाय।। पुन लहं जोत जोताहि मिलाय।।४१।।

परसराम अवतार :-

इस रचना के दो अध्याय हैं और पैंतीसी श्लोक हैं। यह विष्णु का नवम अवतार है। क्षत्रियों ने सकल धरा को जीत लिया और अपने आप को बहुत ऊंचे गिनने लगे। यह दशा देखकर सब देवता व्याकुल हो गये, सभी मिलकर विष्णु के पास गये और विनती की कि असुर जनों ने अब क्षत्री का रूप धारण कर लिया है---` क्षत्री रूप धरे सभु असुरन` । सबने मिलकर काल पुरख की बडाई की। जमदाग्नि और रेणुका के घर घर विष्णु ने नौवां अवतार - परशुरामावतार धारण किया-- धरयो क्षत्रीया पातको काल रूपं ।` उन्होंने भीषण युद्ध करके सहस्रार्जुन को हराया और धरती को २१ बार क्षत्री-विहीन किया। इस अवतार कथा के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत ब्राह्मण-क्षत्रीय वैमनस्य की बात स्पष्ट होती है। राक्षसों ने परशुराम के पिता जमदाग्नि से कामधेनु गाय छीनकर मार डाली और उसे भी मार डाला। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए वीर परशुराम राजा को राज्य-दरबार में जाकर ललकारता है--

कहो राज मेरो हनयो तात तैसे।। अबे जुद्ध जीतो हनो तोहि तैसे।।
कहा मूढ बैठो सु असत्रं संभारो।। चलो भाज ना तो सभै ससत्र डारौ।।६(
-पन्ना १७०।

तब ` राज सरदूल ` भी भड़क उठा--

धये सूर सरबं सुने बैन रावं। बद्दयो कुद्ध जुद्धं सजे सरब सावं ।।
गदा सैल्थी सूल सेलं संभारी।। चले जुद्ध आजं बडे छत्र धारी।।११।।१७०।

तब दोनों पक्षों में जमकर युद्ध होता है, शौर्य-प्रदर्शन में कोई किसी से कम नहीं । युद्ध वर्णन देखिए--

गये छूट असत्रं ।। मजे ह्वै त्रिअसत्रं ।।
खिलें सार बाजी।। तुरं तुंद ताजी।।२२।।
भुजा ठोक बीरं ।। करे घाय तीरं ।।
नेजे गड्ड गाढ़े ।। मचे ` बैर बाढे ।।२३।।
-- -- --
गिरे अन्त घूमम् ।। मनो बृक्ष झूमं।।
टूटे ससत्र असत्रं।। मजे हुवै त्रिअसत्रं।।२५।।
जिते सत्र आए।। तिते राम घाये ।।
चले भाज सरबं।। भयोदूर गरबं ।।२६।।

वीर, रौद्र और बीभत्स का मिला-जुला वर्णन देखिए---

गह्यो राम पाणं कुठारं करालं।। कटी सुंड सी राज बाहं बिसालं।।
भये अंग भंगं करं काल हीणं ।। गयो गरब सरबं भई सैण क्षीणं।।२८।।
रह्यो अंत खेतं अचेतं नरेसं।। बचे बीर जेते गये भाज देसं ।।

इसी प्रकार एक बार नहीं, पूरे इक्कीस बार इस वीरन्पुरुष ने क्षात्रिय दल का नाश किया।

रुद्रावतार :-

इस युद्ध का वर्णन भी एक ज़ोरदार शंका से आरम्भ होता है। जब दु:खों, पापों और अत्याचारों से पृथ्वी एक बार पुन: भर गई तो वह

गाय का रूप धारण करके ` जगनायक ` काल के पास गई। विष्णु ने रुद्र के रूप में ग्यारहवां अवतार धारण किया। त्रिपुर, असरंधक, अधिंक, गऊर आदि राक्षसों का वध करके रुद्र ने धरा को भार मुक्त किया। अंधिक के साथ हुए युद्ध का वर्णन देखिए---

धायो तबै अंधिक बलवाना ।। संग ले सैन दानवी नाना।।
अमित बाण नंदी कहु मारे ।। बेध अंग कह पार पधारे।।३३।।
जब ही बाण लगे बाहण तनि।। रोस जग्यो तबही सिव के मन।।
अधक रोस कर बिसख च लाये।। भूम अकास किनक महि छाये।।३४।।पृ०१७५।।

गऊर-वध में शिव का युद्ध-वीर, धर्मवीर एवं दया-वीर रूप प्रकट होता है---

भयो रुद्र कोपं धरयो सूल बाणं।। करे सूरमा सरब खाली पलाणं ।।
उते एक दच्छं इते रुद्र एकं।। करयो कोप कै जुधु भांत अनेकं।।४५।।
गिरयो जान कूटसथली बृद्ध मूलं।। गिरयो दच्छ तैसे कटयो सीस सूलं ।।
परियो राज राजं भयो देह घातं।। हनयो नान बज्रं भयो पब्ब पातं ।।
+।४६।।
गयो गरब सरबं भजो सूरबीरं।। चलयो भाज अंतहपुरं हुअै अधीरं ।।
गरे डार अंचर परे रुद्र पायं।। अहो रुद्र कीजै कृपा कै सहायं।।४७।।
हम तुमरो हरि ओज न जाना।। तुम हो महातपी बलवाना।।
सुनत बचन भये रुद्र कृपाला।। अजा सीस नृप जोर उताला।।४८।।

इसी बीच जलंधर दैत्य की कथा चल पड़ती है। काम को जलाकर अशरीरी किया और शिव पार्वती को व्याह कर घर ले आए। पार्वती को -- ` निरख जलंधर ताहि लुभाना ।।
कै सिव नारि सिंगारकै मम गृह देह पठाय।।
ना तरसूल सभारकै संग लरहु मुर आय।।४।। पन्ना १७६-८०।

जालन्धरावतार :-

जालन्धर का अवतार विष्णु का दैतावतार है। जब रुद्र पार्वती पार्वती को व्याह कर घर लाते हैं तो उसे देखकर जलंधरनाथ का मन लुभायमान हो उठता है। उसने एक दूत रुद्र के पास भेजा कि रुद्र की नारी को छल-कपट से उठा लाओ। जलंधर ने यह सन्देश भेजा--

कै सिव नारि सिंगार कै मम ग्रिह देह पठाई ।।
नातरसूल संभार कै संग लरहु मुर आई।।४।।

यहाँ कवि ने इस युद्ध का शंका-पदा उपस्थित करके एक अन्य अवतार कथा की सृजना की है। विष्णु पत्नी ने एक दिन बैंगन बकाए, उधर से कलह पति और समग्र युद्धों का जनक नारद मुनि आ धमकता है और पकवान खाने का हठ करता है। पकवान जूठा हो जाएगा, यह सोचकर विष्णु पत्नी ने इन्कार कर दिया, जिससे क्रुद्ध होकर मुनिवर ने उसे शाप दिया-- बिन्द्रा नाम राक्षसी बपु धर, त्रीआ हुवै बसो जलंधर के घर" (श्लोक आठ, पन्ना १८०)। और यही कारण था कि जलन्धर ने अवतार धारण किया---

जैसर रहत कमल जल भीतर।। पुनि नृप बसी जलंधर के घर।।
तिह निमित्त जलंधर अवतारा।। घर है रूप अनूप मुरारा।।११।।

उधर मांगी नार न दीनी रुद्रा, तातें कोप असुर पत क्रुद्रा।।१२।। बस फिर क्या था, दोनों ओर से युद्ध का बिगुल बज जाता है, संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है।

संघर्ष पदा :-

बरखै रण बाण कमाण खगं।। तह घोर भयानक जुद्ध जगं ।।
गिर जात मुटं हहरंत हठी।। उमगी रिप सैण कोए इकठी ।।१ ६।।
चहूं ओर घिर्‌यो सर सोधि सिवं।। करि कोप घनो असुरार इवं ।।
दुहूं ओरन तेइम बाण बहे।। नभ अऊर धरा दोऊ क्राय रहे।।१ ७।।

संहार कर देता है, यह चिन्ता सकल दैन-समाज ने अपने गुरु के पास व्यक्त की। गुरु उनको परामर्श देता है कि देव लोग मिलकर यज्ञादि करते हैं, अत: तुम भी यज्ञ करो जिससे तुम्हारी युद्ध भूमि में विजय होगी। यज्ञ के आरम्भ होने से देव-मण्डल में चिन्ता की लहर दौड़ गई, तब विष्णु कहते हैं-- बिसन नवीन कह्यो बपु धरिहो, जगि बिघन असुरन को करिहो।।५।। तब उन्होंने अरहंतदेव के रूप में अवतार ग्रहण किया।

यहाँ कवि ने एक नई युद्ध नीति का वर्णन किया है। यह युद्ध-नीति है बुद्धि क्षेत्र की, प्रगल्भताकी, प्रतिभा और मानसिक-द्वन्द्व की। अरहंत-देव ने एक नये मत-श्रावण मत-- की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था--अंनि-अंनि ते होतु ज्यो घासि-घासि ते होय।। तैसे मनुक्त मनुक्त ते अवर न करता कोय।। १४।।

ऐस गिआन समहून दृढायो।। धरम करम कोऊ करन न पायो।।
ऐह बृत बीच सभो चित्त दीना।। असुर बंस ता ते भयो क्षीना।।१५।।

समाधान पद्य:-

देवराय जीअ मो भल माना।। बड़ा करमु अब बिसन कराना।।
आनंद बढ़ा सोकु मिट गयो। घरि घरि समहूं बधावा भयो।।१ ८।।

बिमन ऐस उपदेस दै सभ हूं धरम क्रुटाय ।।
अरावति सुर नगर मो बहुरि बिराज्यो जाय।।१६।।
श्रावगेस को रूप धर दैत कुपंथ सभ डार ।।
पंद्रसवों अवतार इम धारत भयो मुरार।।२०।।

मनु अवतार :-

अरहंत देव द्वारा जनता को विवथगामी तो कर दिया गया, मगर इसका क्लेश काल पुरख को भी कोई कम नहीं हुआ। अत: पिछले प्रसंग का समाधान पद्य ही इस मनु अवतार का शंका-पद्य आ बनता है--

स्रावग मत सभ ही जन लागे । धरम करम सभ ही तज भागे ।।
त्याग दई समहूं हरि सेवा । कोई न मानत मे गुर देवा ।।२ ।।
साधि असाधि सभै हुअै गये।। धरम करम समहूं तज दये ।।
काल पुरख आज्ञा तब दीनी।। बिसन चंद सोई बिधि कीनी।।

इस युद्ध-कथा में भी सीधे सबमें न कोई द्वन्द्व है, न शस्त्रास्त्रों की झंकार है और न ही है वीरों की हुंकारें और गर्वोक्तियां, अपितु इसमें परोक्ष रूप से ही मनु के वीरत्व की स्थापना की गई है। यथा---

राज अवतार भयो मनु राजा।।सभ ही प्रजे धरम के साजा ।।
पाप करा ताको गहि मारा।। सकल प्रजा कहु मारग डारा।।४।।

समाधान पदा :-

~~स्वायंभुव~~

राज अवतार भयो मनु राजा।। करम धरम जग मो मल सीजा ।।
सकल पंथी पंथ चलाए।। पाप करम ते धरम लगाए ।।७।।

सूर्यावतार :-

दैत पदा का अतुल बल जल, थल, पृथ्वी सब पर आधित्य जमा गया। तब सूर्य ने अवतार धारण किया। शंका-पदा देखिए---

बहुत काल इम बीतयो करत धरमु अरु दान ।।
बहुरि असुरि बढ्यो प्रबल दीरघकाय दुतमान।।७।।

उनका उत्साह एवं साहस यहां तक बढ़ गया कि वे निशिदिन देव-ब्राह्मणों का घात करने लगे, दीर्घ काया वाले रिपु समाज ने सूरज के रथ को भी चलने से रोक लिया (श्लोक ८)। यहीं पर संघर्ष-पदा शुरु होता है--

हटक चलत रथु भयो भान कोप्यो तबै ।।
असत्र ससत्र लै चल्यो संग लै दल सभै ।।
मंड्यो विविध पुकार तहां रण जाय कै ।।
हो निरख देव अरु दैत रहे उरझाय कै।।९।।

यहाँ द्वन्द्व युद्ध का जो सुन्दर वर्णन किया गया है, वह काव्य कला की भी पराकाष्ठा है--

गह गह पाण क्रिपाण दुबहीया रण भिरे ।
टूक टूक हुअै गिरे न पक्क पाछे फिरै ।।
अंगनि सोभै घाय प्रभा अत ही बढ़े ।।
हो बसत्र मनो क्रिटकाय जनेती से चढ़े ।।१०।।

तथापि--

उह उह सु डामर डंकणी।। कह कह सु कूकत जोगणी।।
फम फमरू सांग फमक्कीयं। रण गाज बाज उथक्कीयं।।२३।।
ढम ढमक ढोल ढमक्कीयं।। फल फलक्क तेग फलक्कीयं ।।
जट क्रोर रुद्र तक नच्चीयं।। विक्कारि मरि नह मच्चीयं ।।२४।।
फहरेत धुजा थहरंत भटं निरखंत लजो क्रबि सियाम घटं ।।
चमकंत सुबाण क्रिपाण रणं ।। जिम कऊ घित सावण बिज्जु घणं।।२६।।

समाधान पदा में केवल यह कह कर कथा समाप्तकर दी गई है--

कथा ब्रिध ते मै डरो कहां करो बखान ।।
निसाहंत असुरेस सो सरते भयो निदान ।।२७।।

नरावतार कथा :-

इसमें विष्णु के बाईसवें अवतार अर्जुन के बल-पराक्रम का चलता-सा वर्णन है। उस महान योद्धा के किसी भी युद्ध का यद्यपि इसमें ब्योरा नहीं दिया गया, तथापि उसके द्वारा जो-जो शौर्य-चिन्ह छोड़े गए हैं, उन सबका परिगणन मात्र किया गया है। कवि को ग्रन्थ के अधिक बढ़ जाने का भय है, इसीलिए " बीते जग के भट नाना" कहकर उसका रुद्र के साथ युद्ध, गंधर्वराज से युद्ध, कौरवों को जीतकर सभी गायें छुड़ा लाना, श्री कृष्ण को रिझाना, 'घोर मयान अयोधन धार' अति बलशाली दुर्योधन को जीतना आदि का

उल्लेख भर किया गया है।

गिआन प्रबोध :-

`गिआन प्रबोध` ग्रन्थ में प्रमुखतया महाकाल की उपासना स्तुति ही की गई है, जैसे---

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध करमं।। अछेदी अभेदी सदा एक धरमं ।।
कलंक बिना निहकलंकी सरूपे, अछेद अभेद अखेद अनूपै ।।१।।
नमो लोक लोकेश्वरं लोक नाथे।। सदैव सदा सरब सार्थ अनाथे।।
नमो एक रूपं अनेकं सरूपे।। सदा सरब साहं सदा सरब भूपे ।।२।।

पहले १२६ श्लोकों में परमात्मा के स्वरूप का उपरोक्त ढंग से गुणगान किया गया है। अब आत्मा परमात्मा से प्रश्न करती है--

उचरिओ आतमा परआतमा संग, उतभुज सरूप अबिगत अभंग ।।
इह कऊण आहि आतमा सरूप।। जिह अमित तेजि अतिभुति बिभूति।।२।।
।१२७।

आत्मा के इस उचर में परमात्मा लगभग वही उचर देता है जो गीताकार[११८] ने दिया है--

यहि ब्रहम आहि आतमा राम।। जिह अमित तेजि अबिगत अकाम।।
जिह भेद भरम नही करम काल।। जिह सभ मित्र सरबा दिआल।।३।।१२८।।
डोबियो न डुबै सोखियो न जाय।। कटियो न कटै न बारियो बराय।।
छिज्जै न नैक सत ससत्र पास।। निह सत्र मित्र नहीं जात पात ।।४।१२९
सत्र सहंस सति सति प्रधाम।। छिज्जै न नैक खंडिओ न जाय।।
जही जरै नैक पावक मंझार।। बोरै न सिंध सोखै न व्यार।।५।।१३०।।[१-ख]

आत्मा द्वारा राजधर्म, दान धर्म, भोग धर्म एवं मोक्ष धर्म के

---

११८ नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ---- श्रीमद्भगवद्गीता।।
१-ख. दशमग्रन्थ प. २३९.

विषय में पूछे गए प्रश्न का एक खण्ड यह था कि ऐसे नृपों का वर्णन करें जिनके चरित्र से दान-पुण्य की बात की सम्पुष्टि हो। अत: परमात्मा कलियुग के तीन राजाओं के बल का वर्णन करते हैं।[१२०] सबसे पहले राजा युधिष्ठिर के द्वारा किये गए राजसूय यज्ञ के मिस उसके बल-पराक्रम एवं दान-वृत्ति, राजवृत्ति भोग एवं मोक्ष-वृत्ति का वर्णन हम इस ग्रन्थ में पढ़ते हैं। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में युधिष्ठिर को दान-वीरता के साथ ही युद्ध-वीरता का भी सुन्दर वर्णन हुआ है---

जरासिंघहु मार कै पुनि कौरवा हथि पाय ।।
राजसूह कीओ बडो मखि किसन के मति माय ।।
राजसूह सु कै कितै दिन जीत सत्र अनंत ।।
बाजमेघ आरंभ कीनो बेद व्यास मतंत ।।८।।१४६।।

अमित सबद बजंत मेर हरंत बाज अघर ।।
जात जऊन दिसान को पछ लागही सिरदार।।
जऊन बांध तुरंग मूकत जीतीअै करि जुध्द।।
आन जौन मिले बच नहि मारीअै करि कुद्ध।।११।।१५२।।

यह वीर युधिष्ठिर धर्म का पालन करता हुआ, सुत-समृद्धि-दान का अनुष्ठान करता हुआ, राज्य-धर्म का निवाहं करता हुआ, सुख-समृद्धि में बिलसता हुआ , ~~नौवे को~~ पांच सौ वर्ष तक इस दीप पर राज्य करता रहा और उसके बाद भूमि का राजा परीक्षित (परीक्षत) हुआ।

पुन: परीक्षित द्वारा राजसूय यज्ञादि का संक्षिप्त सा वर्णन है जो साठ वर्ष दो महीने चार दिन राज्य करके इहलोक की यात्रा समाप्त कर जाता है। भूमि के तीसरे राजा जन्मेज्य (जनमेजा) हुए। वह अपने पिता की की मृत्यु का बदला लेने के लिए अश्वमेध यत्र से पहले सपमेध यज्ञ करता है, उसके शौर्य का वर्णन इस प्रकार है---

---

१२०- त्वं बल प्रताप बरणौ सु त्रैण- ११।१३६,

राज को गृह पाइकै जनमेज राज महाज ।।
सूर बीर हठी तपी दस चार चार निधान।।
पितर के बध कोप ते सभ बिप्र लीन बुलाय।।
सरप मेघ करयो लगे मख धरम के चित चाय।।१।।१६५।।

शंका पदा :-

पहले सपमेघ यज्ञ की कथा है, तत्पश्चात् काशीराज की दो सुन्दर पुत्रियों को प्राप्त करने के लिए किये गए युद्ध का यथोचित वर्णन है।

संघर्ष पदा :-

काशीराज पर की गई चढ़ाई एवं लड़ाई का वर्णन देखिए:-

चली सैन सूसर प्राची दिसानं।। चडे बीर धीरं हठे ससत्र पानं।।
दुरयो जान्य दुरगं सुबा राज सीसं।। घेरयो जाय फऊंज भजिया एक इसं।।
।।१३।।१८१।।
गिरे खेत खत्राण खत्री खत्राणं।। बजी भेर भुंकार दकिआ निसाणं।।
करे पैन बारं प्रचारै सुबीरं।। फिर रुंड-मुंड तणं--तच्छ तीरं।।१२।।१८३।।

समाधान :-

जिण्यो कासकीसं हण्यो सरब सैनं।। बरो पुत्रका ताह रुंदयो त्रिनैनं।।
भइओ मेल गेलं मिले राज राजं।। भई मित्र चारं सरे सरब काजं।।१७।१८५।।
पन्ना १४३।।

`गिआन प्रबोध` में महाभारत युद्ध के अन्यान्य वीरों की वीरता, युद्ध और शौर्य का भी भरपूर वर्णन है। नीचे भीम तथा कुरु राज दुर्योधन के बीच हुए द्वन्द्व युद्ध का एक उदाहरण देखिए---

सुभै बाजुबंदं धकै भूषनाणं ।। लसै मुक्त का हार दुमलिअं हाणं ।।
दोऊ मीर धीरं दोऊ परम आजं।। दोऊ मानधाता महीपं कि भोजं।
।।६।।२४४ ।।

दोऊ बीरबाना बधै अद्ध अद्धं ।। दोऊ ससत्रधारी महा जुद्ध कूद्धं ।।
दोऊ क्रूर करमं दोऊ जान बाहं।। दोउ हक्कि हिन्दू न साहान साहं।।
७।।२२५।।
दोऊ ससत्रधारं दोऊ परम दानं।। दोऊ ढाल ढीचाल हिन्दू हिन्दानं।।
दोऊ ससत्रवरती दोऊ क्षत्रधारी।। दोऊ परम योधा महा जुधकारी।।८।।
२२६।।

इस युद्ध से संघर्ष का परिणाम या समाधान इस प्रकार होता है--

हनिओ राज दुरजोधनं जुध भूमं।। मजे सभै जोधा चली धाम घूमं ।।
कर्यो राज निह कंटकं कऊ रपालं ।। पुनर जायकै मंभि सिमे हिवालं।
१६।२३४।।

एक अन्य अवांतर कथा में जनमेज के पुत्र एवं दासी-पुत्र में हुए युद्ध का दृश्य विशेष रूप से दर्शनीय है। क्योंकि इसमें वीर के साथ रौद्र, भयानक एवं बीभत्स आदि रसों का समुचित परिपाक हुआ है। कुछ उदाहरण देखें--

दुहूंअन बीच सपरधा बाढ़ा। दुहदिस उठे सुभट अस काढा।।
चमकहि कहूं असन की धारा। बिछ्यहं लोथ अनेक अपारा।।५।२५८।।
जुग्गन देत कहूं किलकारी।। नाचत भूत बजावत तारी।।
बावन बीर फिरै चहू ओरा।। बाजत मारु राग सिवऊरा।।६।२६२
रण असकाल जलध जिम गाजा। भूत पिसाच भीर मैं भाजा।।
रण मारु इह दिस ते बाजयो। काइरु हुतो सो भी नहि भाजयो।।
।।१०।।२६३।।
घूमहि घाइल लोह चुवाते। खेल बसंत मनो मदमाते।।
गिर गए कहूं जिरह अरु जुआना।। गरजत गिद्द पुकारत सुआना।।१४।२६७।

समाधान पदा में कवि यह बात दृढ़ करवाना चाहता है कि जो राजा `मदमत्त` करते हैं, गर्व गुमान करते हैं। उनका राज्य व्यर्थ ही चला जाता है, जैसे कि अजै सिंह का राज दासी-पुत्र को चला जाता है--

मद करि मत्त भये जे राजा। तिन के गये ऐस ही काजा ।।
छीन छान छित तत्र फिरायो। महाराज आप ही कहायो।।१६।२६६।
आगे चलेअसमेध हारा ।। धावहि पाछे फऊज अपारा।।
गेजहि नृपत तिलक महाराजा। राजपाट बाहू कऊ छाजा।।१७।।२७०।।

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि ये युद्ध विधिवत रूप से युद्ध नहीं है, केवल कुछ आध्यात्मिक नैतिक सूत्रों की व्याख्या हेतु आए स्फुट प्रसंग हैं, जिनमें मुख्यतया युद्ध वर्णन की ओर कवि का ध्यान रहा है।

वीर-रस में `उत्साह` की गतिशीलता एवं कर्मण्यता की भावना का प्राधान्य है। यद्यपि भारतीय मनीषियों ने युद्ध वीर के साथ ही धर्म-वीर दया-वीर एवं दान-वीर की परिकल्पना की है, तथापि इन में युद्ध-वीर को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त है। धर्म-वीर को भी धर्म की रक्षा हेतु युद्ध का विधान करना ही होगा। यह संसार की रीति है कि अनुनय-विनय करने से अथवा कोरा धर्मोपदेश देने मात्रसे कभी धर्म की संस्थापना नहीं हुई, धर्म के पीछे शक्ति की अनिवार्यता स्वत: सिद्ध है और यह शक्ति एक ओर से यदि भगवद्-भक्ति एवं ईश-वरदान से प्राप्त होती है, तो दूसरी ओर तलवार की नोंक से भी धर्म-मार्ग प्रशस्त होता है। दया और दान भी बलवान पुरुषों के व्यक्तित्व के ही हाथों के सुकुमार आभूषण हैं, भला कोई दीन-हीन, दुर्बल एवं भीरु व्यक्ति किसी पर क्या दया दिखलायेगा और किस प्रकार से दान देने का पात्र बन सकेगा। भीरु एवं रण-विमुख प्राणी की दया मात्र कायरता है, दुर्बलता है, अथवा बिल्ली का देखकर कबूतर की तरह आँखें बन्द करके बैठे रहने के तुल्य है। कृष्णावतार के सुकवि ने बहुत ही सुन्दर शैली में कहा है---

धन्न जीओ तिहको जग मै मुख ते हरि चित्त मै जुधु बिचारै ।।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढै भवसागर तारै ।।
धीरज धाम बनाय इह तन बुद्धि सु दीपक जिऊ उजीआरै ।।
गिआनहि की बढनी मनहु हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै।।२४६४।।

तभी तो कृष्णावतार का रचयेता कवि स्वयं भी प्रभु से रण-भूमि में जूझ मरने का वरदान मांगता है---

क्षत्री को पूत हौ बामन को नहि कै तपु आवत है जु करौ ।।
अरु अऊर जंजार नितो ग्रह को तुहि तिआग कछू चित मै धरौ।।
अब रीझ कै देहु बहै हम कऊ जोऊ हऊ बिनती कर जोर करौ।।
जब आऊ की अऊध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरौ।।
।२४८९।।

स्मरण रहे यहां पर इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का भाषा-रूप किसी `अवर वासना` से अनुप्रेरित होकर नहीं किया गया, अपितु `धरमु युद्ध के चाय` को पूरा करने हेतु ही किया है। इस प्रसंग से हमें महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा युद्ध-विमुख अर्जुन को दिया गया उपदेश स्वत: ही स्मरण हो आता है।[१२१] इस प्रसंग में डा० शमीरसिंह[१२२] का यह मत उद्धृत किया जाता सर्वथा समीचीन ही होगा कि--"कृष्णावतार के `युद्ध प्रबन्ध` एवं अन्य युद्ध वर्णनों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि उस कवि के लिए युद्ध-कर्म विशेष महत्व रखता है। `कृष्णावतार` में वर्णित युद्ध-प्रबन्ध साधारण कोटि का युद्ध न होकर धर्म-युद्ध है। उस दृष्टि से यह एक पवित्र पावन कर्म है। जैसे पुण्य एवं शुभ कर्म करते समय मानव को परमानन्द की उपलब्धि होती है, वैसे ही धर्म-युद्ध का फल भी आनन्दमयी है। धर्म-कर्म सम्पन्न करते समय जो तीव्र एवं अनिवार्य उल्लास मन में समाहित रहता है, इस उल्लास की अभिव्यक्ति उसने अपने रचनागत पात्रों के शौर्य चरित्रों में की है।"

१२१- हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम।। -- श्रीमद्भगवद्गीता।।

१२२- कृष्णावतार का विश्लेषणात्मक अध्ययन,(अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

दशम ग्रन्थ की सब छोटी-बड़ी कृतियों के अन्तर्मुखी अध्ययन से यही निर्णय दिया जा सकता है कि समूचे हिन्दी काव्य में कोई एक ऐसा बृहद ग्रन्थ नहीं है जिसमें वीर रस के सभी अंगों-प्रत्यंगों के साथ इतना विशद वर्णन किया गया हो। हमारा कवि पूर्णतया सजगता से अपने काव्य का सृजन कर रहा था जिससे वह वीर रस के अन्वेषण की अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफल हो सके। इन रचनाओं का गहन अध्ययन ही नहीं, आंशिक अध्ययन करने से भी हमारा प्रकट मत स्पष्ट हो सकेगा। उनका समग्र यत्न वीर-रस की सिद्धि में रत था और वे अपने इस सत्साहित्य द्वारा हताश, निराश एवं विषादग्रस्त भारतीय जन-जीवन में एक नई चेतना, नई स्फूर्ति और अदम्य साहस एवं सतोत्साह भर रहे थे। यहां दशमग्रन्थ की इन वीर रसात्मक कृतियों को तीन भागों में विभक्त करके उनका विश्लेषण-मात्र किया गया है, वीर रस की दृष्टि से इनका अध्ययन अगले अध्यायों में किया गया है।

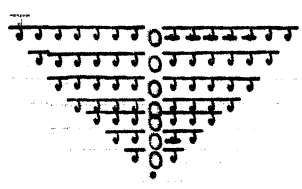

चतुर्थ अध्याय

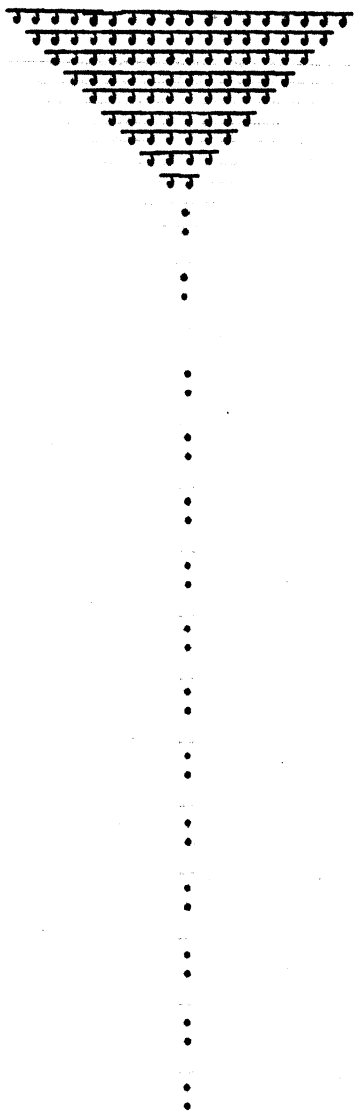

दशम ग्रन्थ का वीर रसात्मक विश्लेषण

दशम ग्रन्थ का वीर रसात्मक विश्लेषण

रस शब्द बड़ा ही विशद और व्यापक है। रस भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम शब्दों में से है। इसका प्रयोग चार अर्थों में होता है-- १- पदार्थों का रस, २- आयुर्वेद का रस, ३- साहित्य का रस, ४- मोक्ष या भक्ति का रस।

यहाँ पर हमारा सम्बन्ध ` साहित्य रस ` से है। वेदों में भी इसका वर्णन मिलता है। वाणी ही रस है। रस का पारिभाषिक या शास्त्रीय प्रयोग वैदिक साहित्य में नहीं है। रस सिद्धान्त का प्रतिपादक प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ` नाट्य शास्त्र ` है जो भरत मुनि की रचना के रूप में प्रसिद्ध है। रस की स्थिति एवं निष्पत्ति के विषय में विशद् विवेचन हम प्रथम अध्याय में कर ही चुके हैं।

संस्कृत काव्य-शास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यों के अनुसार " शब्दार्थ के माध्यम से विशुद्ध भाव भूमिका में, आत्म चैतन्य के (आनन्दमय) आस्वाद का नाम रस है।

वीर रस :-

भारतीय आचार्यों ने रस का विवेचन सहृदय की दृष्टि से किया है। कवि जीवन-द्रष्टा है। उसकी अनुभूति सहृदय की अनुभूति से भिन्न नहीं हो सकती।

भाव चित्रणों में कवि का कौशल विभावादि के कार्य कलापों एवं उक्तियों में दिखाई देता है। रचना चाहे श्रव्य हो या दृश्य दोनों में एक ही बात है। दृश्य में कवि आलम्बनादि विभावों के मनोभावों को उन्हीं की वाणी और कर्म द्वारा प्रस्तुत करता है जबकि श्रव्य में अन्तवृत्ति के चित्रण के लिए स्वयं भी कुछ कहना पड़ता है। सहृदय काव्य में वर्णित भावों को उस प्रकार ग्रहण नहीं करता जैसे कि विभावादि को करता है। दोनों की अनुभूति में अन्तर होता है। विभावादि भावों के फल को प्राप्त करते हैं और सहृदय उस फल के रस को प्राप्त करता है। इसलिए रस की उत्पत्ति सहृदय में ही मानी गई है। जो भाव सहृदय में रस की उत्पत्ति नहीं करा सकता वह भाव तक ही सीमित रह जाता है।

भारतीय साहित्य में जितने रसों की कल्पना की गई है उनमें श्रृंगार और वीर रस को विशेष महत्ता दी गई है। जहां श्रृंगार रस को रस-राज कहा गया है वहां वीर रस भी कम महत्वपूर्ण नहीं। श्रृंगार रस का स्थायी भाव ` रति ` है जो कि सब प्राणियों में वासना रूप में व्याप्त रहता है। वीर रस का स्थायीभाव ` उत्साह ` है जो कि मानव को कर्म-शील बनाता है और उसके जीवन में गति भरता है। कर्म-सौन्दर्य विश्व में सर्वाधिक आकर्षक होता है। सहृदय उसके चमत्कार और कर्म-सौन्दर्य से प्रभावित होता है। यही चमत्कार और कर्म-सौन्दर्य सहृदय में उत्साह जागृत करके वीर रस की उत्पत्ति करता है। जो कर्म में प्रवृत्त रहता है, वह अपने आप को वीर नहीं कहता। उन कर्मों के कर्म को देखने वाला उसे वीर कहता है।

वीर रस के लिए किसी असाधारण कर्म का होना आवश्यक है,

सहृदय वीर के उत्साह से तादात्म्य किये हुए उसके कर्मों के साथ चलता रहता है।

वीर रस एक ऐसा रस है जो हृदय और शरीर दोनों को प्रभावित करता है। वीर रस अनीति के दमन के लिए ही है। लोक मंगल की साधना ही इसका अभिप्राय है। किसी भी देश का भूत, भविष्य और वर्तमान इसके कन्धों पर है। तन और मन दोनों को अगर कोई रस प्रभावित कर सकता है तो वह वीर रस ही है।

वीर रस का वर्ण गौर बताया गया है और देवता महेन्द्र बताए गए हैं। गौर वर्ण स्वर्ण रंग को कहते हैं। वीर रस में स्वर्ण के समान ही शुद्धता, तेजस्विता और गुरुता है।

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है। उत्साह मन की ऐक ऐसी प्रेरणा है जो वीर को कर्म में प्रवृत्त करती है। कर्म में लीन होने पर उत्साह आत्मा को सन्तोष प्रदान करता है। कर्म उत्साह के बिना पंगु है। कर्म में रत होना अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सफल कदम है। इसी से वह आत्मिक शान्ति प्राप्त करता है।

साहित्य शास्त्रियों ने उत्साह की परिभाषा कई प्रकार से की है। साहित्य दर्पणकार "कार्य के करने में स्थिरता तथा उत्कट आवेश को उत्साह कहते हैं।"[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उत्साह को "साहस पूर्ण आनन्द की उमंग कहा है।"[२] उत्साह में साहस और प्रयत्न की मुख्यता होती है। उत्साह में महत्कर्म और महाप्रयत्न दोनों की अपेक्षा होती है। उत्साह के साधारण कार्य में महत् प्रयोजन और महत् प्रयत्न दोनों की आवश्यकता होती है। उत्साह असाधारण कार्य करने की भावना है और इस कर्म की पूर्ति में वह संलग्न रहता है। इस राह में आई हुई कठिन से कठिन विपदाओं-बाधाओं से

१- कार्यारंभेषु संरंभः स्थैर्यमुत्साह उच्यते ।।
- साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक १७८, पृष्ठ १३८ ।

२- चिन्तामणि, भाग १, पृष्ठ ८, सन् १९४५ का संस्करण।

भी वह नहीं डरता।

वीर स्वभाव से ही उत्साही होता है। उत्साह सदैव सात्विक पक्ष को लेकर चलने वाला भाव है और यह सदा लोकमंगलकारी होता है। न्याय विरुद्ध मार्ग में लोक भावना का विचार नहीं किया जाता। उत्साह में कर्तृत्व शक्ति होती है और सर्वत्र इसकी आवश्यकता होती है।

दशमग्रन्थ में हमें सर्वत्र वीर रस के कर्म पक्ष के दर्शन होते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह जी में अदम्य उत्साह है और यह उत्साह उन्हें कर्म की ओर उन्मुख करता है। उन्होंने जो सोचा, जो विचारा उसे ही कार्यान्वित किया। उनका उत्साह अन्याय के विरुद्ध था, जनता को कार्य की ओर उन्मुख करने के लिए था।

अब हम रस-निष्पत्ति में सहायक अवयवों पर विचार करेंगे। उत्साह संचारी भाव के रूप में प्रयुक्त होता है और यह सभी रसों में संचारी के रूप में प्रयोग में आता है।[3]

विभाव के भी दो पक्ष हैं-- १- आलम्बन, २- उद्दीपन। आलम्बन के भी दो पक्ष होते हैं-- १- आश्रय, २- आलम्बन।

आश्रय :-

जिसमें भाव निहित होता है वह आश्रय है। इसमें विश्व के प्रत्येक सामाजिक से मिलने की अनुभूति होती है।

आलम्बन :-

जिसके प्रति भाव उत्पन्न होता है। इसमें सामाजिकों को रूप, गुण, कर्म की एक सी भावना की अनुभूति होती है।

३- उत्साह विस्मयौ सत्पर्सेषु :
श्री भानुभट्टविरचित रस तरंगिणी, पंचम तरंग, पृष्ठ ५६।

वीर रस में नायक और प्रतिनायक आश्रय और आलम्बन या विषय रूप में होते हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने वीर रस का आलंबन प्रतिनायक को माना है। प्रतिनायक की ओर नायक की समस्त भावनायें केन्द्रित होती हैं, नायक प्रतिनायक को ही जीतना चाहता है, इसके लिए वह युद्ध करता है जो कि कर्म है। इस प्रकार वीर रस में प्रतिनायक और कर्म दोनों ही आलम्बन होते हैं।

वीर रस में आलंबन बहुत शक्तिशाली होता है। अगर आलम्बन आश्रय से साधारण व्यक्ति होगा तो आश्रय का उत्साह सहृदय को रस का पूर्णरूपेण आनन्द नहीं करायेगा। आलम्बन का लक्षण सामाजिक सत्य के प्रतिकूल होना चाहिए। उसका आदर्श समाज में अमान्य हो। सहृदय की सहानुभूति आश्रय के साथ तभी हो सकती है जब आश्रय का लक्ष्य ठीक हो और आलम्बन उसके उद्देश्य में बाधा डाल रहा हो। दशम ग्रन्थ में गुरु गोबिन्द सिंह आश्रय हैं और सहृदय इनके साथ पूर्ण रूप से तादात्म्य स्थापित करता है। आलम्बन शत्रु सेना के वीर योद्धा हैं जिनके प्रति सहृदय की सहानुभूति नहीं।

नाट्यशास्त्र में वीर रस के निम्नलिखित विभाव बताए गए हैं--
१- असम्मोह, २- अध्यवसाय, ३- नय, ४- विनय, ५- बल, ६- पराक्रम, ७- शक्ति, ८- प्रताप, ९- प्रभाव ।[४]

उत्साही व्यक्ति में कुछ गुण आवश्यक हैं शक्ति, धैर्य, शौर्य और त्याग जो कि नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित कियेा गये हैं। भरतमुनि ने वीर रस के विश्लेषण में शौर्य, धैर्य, त्याग आदि को अनुभाव कहा है। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं-- सत्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य।[५]

४- नाट्य शास्त्र: भाग १, पृष्ठ ४२७ ।
५- -वही- पृष्ठ ४१० ।

उद्दीपन :-

विभाव के अन्तर्गत आलम्बन इसलिए होता है कि वह आश्रय के भाव का कारण होता है और उद्दीपन भाव को बल प्रदान करता है जिस प्रकार आग में घी डालने से वह और भी अधिक प्रज्वलित होती है। उद्दीपन आलम्बन के कारणत्व को पुष्ट करता है जैसे वेशभूषा, प्रकृति, परिस्थितियाँ आदि।

अनुभाव :-

अनुभावों को व्यक्त करने वाली सभी चेष्टाएं अनुभाव होती हैं। अनुभाव भाव के बाद उत्पन्न होते हैं और भावों का अनुभव करते हैं। इसका प्रयोग केवल सहृदय के लिए ही होता है। भरतमुनि ने `विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पति:।`[६]

भाव जागरण में आश्रय का महत्व आलम्बन से अधिक है।

संचारी भाव :-

किसी स्थायीभाव का संचारी वही होता है जो उस स्थायी भाव की पुष्टि करता है जैसे युद्ध में उत्साह स्थायी भाव है तो संचारी भाव त्रास नहीं हो सकता। भावों की स्थिति आश्रय में ही होती है। नाट्यशास्त्र में वीर रस के संचारी भाव इस प्रकार बताये हैं--- १- असम्मोह, २- २- उत्साह, ३- आवेग, ४- हर्ष, ५- मति, ६- उग्रत्व, ८- ७- उन्माद, ८- रोमांच, ९- प्रतिबोध, १०- क्रोध, ११- असूया १२- धृति, १३- गर्व, १४- वितर्क आदि।[७]

वीर रस के भेद :-

वीर रस के सबसे प्राचीन भेद तो तीन हैं--१- युद्धवीर, २-धर्म-

६- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ २७४ ।

७-असम्मोहस्तथोत्साह: आवेगो हर्ष एव च ।
मतिश्चैव तथोग्रत्वममर्षो मद एव च ।। नाट्यशास्त्र, पृष्ठ ४९९।

वीर , ३- दानवीर। इनमें युद्ध वीर को ही श्रेष्ठ माना गया है। कर्म की विविधता, परिस्थितियों की प्रचुरता, सभी प्रकार के संचारी भावों, अनुभावों, उद्दीपनों आदि के दर्शन-- इसी में सबसे अधिक पाये जाते हैं। शरीर, बुद्धि, धन मन आदि सभी शक्तियों के इसमें दर्शन होते हैं। हृदय पर भी इसका अमिट प्रभाव पड़ता है। इसमें शत्रु आलम्बन होता है। शत्रु का ऐश्वर्यशक्ति, उसकी चेष्टाएं, उक्तियां आदि उद्दीपन होती है। मुख पर प्रसन्नता की लाली छाना, भुजाओं का फड़कना, आश्रय की उक्तियों तथा अन्य चेष्टाएं जिनसे उत्साह की अभिव्यक्ति होती है, अनुभाव होती हैं।

युद्धवीर के असंख्य उदाहरण दशमग्रन्थ में भरे पड़े हैं। कैस के मारे जाने पर उसकी पत्नी दुखित होकर अपने पिता जरासंध के पास जाकर विलाप करती है। जरासंध उसी समय क्रोध में आकर मन्त्रियों से मन्त्रणा करताहै। वीर योद्धाओं को बदला लेने के लिए युद्ध की प्रेरणा करता है। घोड़ों, रथों, हाथी और पैदलों की चतुरंगिणी सेना देखते ही बनती है। जो अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित है। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने शत्रु पक्ष की सेना का वर्णन भी उतनी ही रुचि से किया है जितनी कि अपनी+ सेना की--

जरासिंध बहु सुभट बुलाए। भाँति-भाँति के ससत्र बंधाए ।।
गज बाजन पर पाखर डारी। सिर पर कंचनक सिरी सवारी।।
पाइक रथ बहुते जुरि आए। भूपति आगे सीस नवाए ।।
अपनी अपनी मिसल सभ गए। पानि जोरे करि ठाढे भए।।
यह सेना चतुरंग जरासंध नृप की बनी।
साज्यो कवच निखंग धनख बान लै रथ चढ्यो।।[८]

युद्धवीर के अनेकानेक उदाहरण दशम ग्रन्थ में भरे पड़े हैं।

सबसे पहले हम बचित्र नाटक में से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं---

---

८- दशम ग्रन्थ ,पृष्ठ ३९२-९३ ।

भंगाणी के युद्ध में आलम्बन फतेहशाह। गुरु जी तथा उनके वीर आश्रय हैं, फतेहशाह का अकारण आक्रमण करना तथा गुरु पक्ष के योद्धाओं पर प्रहार करना उद्दीपन का कार्य करते हैं। कृपाल का क्रोध में आकर कुतकी उठाना और हडात खाँ के सिर पर मारना अनुभाव हैं। उसके सिर से जो चरबी निकलती है वह कृपयाल के उत्साह की वृद्धि करती है। बीच-बीच में अमर्ष, मति, धृति, धैर्य, दृढ़ता तथा दर्प आदि संचारी भी वीर रस को पूर्ण करने में सहायता ही करते हैं--

तहा साह श्रीसाट संग्राम कोये, पंचो वीर बके प्रिथी पाइ रोये।।
हठी जीत मलं सुगाजो गुलाबं, रणं देखीओ रंग रूपं सहाबं।।
हठियो हरी चंदयं गंग रामं, जिने कीतीयं जितीयं फौज तामं ।।
कृपे लाल चंदं कीए लाल रूपं, जिनै गज्जीयं गरब सिंघं अनूपं ।।
क्रिपाल कोपीयं कुतकी संभारी, हठी खान ह्यास के सीस झारी।।
हठी क्रिच्छ इच्छं कढा मेफ जोरं, मनो माखनं मटेटी कान्ह फोरं।।[९]

इसी प्रकार एक और उदाहरण देखा जा सकता है। हरीचंद आलम्बन है जब वह तीक्ष्ण प्रहार करता है। इस पर गुरु गोबिन्दसिंह जी को क्रोध आ जाता है जो कि उद्दीपन का काम करता है। गुरु जी उस पर तीरों की वर्षा करते हुए टूट पड़ते हैं जोकि अनुभाव का कार्य करते हैं। इस प्रकार इसमें आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव आदि रस निष्पत्ति के सभी अवयव विद्यमान हैं---

तहां एक बीरं हरीचंद कोपयो, भली भाँति सो खेत मो पाव रोपयो।
महाक्रोध के तीर तीखे प्रहारे, लगे जौनि के ताहि पारे पधारे।।[१०]

जबै बान लागयो, तबै रोस जागयो ।।
करं लै कमानं, हनं बान तानं ।।

९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६० ।
१०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६० ।

सभै बीर धाये, सरोषं चलाए ।।
तबै ताकि बाणं, हनयो एक जुआनं ।।३२।।[११]

हुसैनी युद्ध में हुसैनी, आलम्बन है। गोपाल और उसके साथी राजा आश्रय हैं। हुसैनी अहंकारी है , अपने अहंकार के कारण संधि प्रस्ताव को ठुकरा कर उन पर आक्रमण कर देना ही `उद्दीपन` है। कृपाल द्वारा गोपाल को कुल से पकड़ने या मारने का प्रयत्न भी उद्दीपन का कार्य करता है, जिससे क्रोधित होकर या उत्साहित होकर गोपाल के मुख और नेत्रों का लाल होना और युद्ध के लिए शस्त्रों के साथ युद्ध करना अनुभाव हैं। दोनों ओर से सिंह-शार्दूल की भाँति जूझना, वीरों के उत्साह को उत्तेजित करता है। रोष, अमर्ष आदि कई मनोवेग संचारिका का काम करते हैं जिससे रस की पुष्टि होती है। यहाँ हुसैनी एक अहंकारी और आक्रमणकारी के रूप में दृष्टिगोचर होता है और उसके विपक्ष में लड़ने वाले गोपाल आदि वीर उदात्त भावों से युक्त वीर भावना के ज्वलंत उदाहरण हैं---

करियो जोर सैनं हुसैनी पयानं, प्रथम कूटि के लूट लीने अवानं ।।
पुनरि इडढ़वाल कीयो जीत जेरं, करे बंदिकै राज पुत्रान चेरं ।।[१२]

कुपियो कृपालं सज्जि मारालं बाह बिसालं धरि ढालं ।।
धाये सभ सूरं रूप करूरं चमकत नूरं मुखि लालं ।।
लै लै सु कृपानं बाण कमानं सज्जे जुआनं तन ततं ।।
रणि रंग कलोलं मारहो बोल जनु गज डोलं बन मत्तं।।[१३]

दोनों सेनाओं के मध्य घनघोर युद्ध होने लगा:--

११- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६२ ।
१२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६५ ।
१३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६७ ।

जुटै आप मै बीर बीरं जुझारे, मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे ।।
किधो सिंध सो सार दलं अरु भूमके, तिसि भाँति किरपाल गोपालु जुजुझे ।।[१४]

परि घोर जुद्धं सुसैना परानी, तहाँ खां हुसैनी मंडिओ बीरबानी।।
उतै बीर धाये सु बीरं जसवारं, सभै बिऊत डायरे बगा से असवारं।।[१५]

वीर रस के सर्वाधिक उदाहरण हमें रामावतार और कृष्णावतार में देखने को मिलते हैं। सबसे पहले हम रामावतार में वीर रस के कुछ उद्धरण देखेंगे। इसमें मुख्य आलम्बन रावण तथा अन्य राक्षस हैं। रावण द्वारा सीताहरण मुख्य उद्दीपन है। इसके बाद शत्रु पक्ष के राक्षसों की सेना के साथ राम को घेरना, उन्हें ललकारना, प्रहार करना आदि उनके उत्साह की वृद्धि करते हैं। रावण का बीस भुजाओं से राम पर प्रहार करना `उद्दीपन` का कार्य करता है। राम धनुष उठाकर तीर चलाकर , रावण के अंगों को काटते हैं, ये ही अनुभाव हैं। वीरों के अंग फड़कना, नेत्र लाल होना, दाँत पीसना आदि `अनुभावों` का भी प्रयोग हुआ है। रोष, अमर्ष, धैर्य आदि अनेक संचारी स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं। इस प्रकार इस रचना में वीर रस के सम्पूर्ण अवयव दृष्टिगत होते हैं। वीर योद्धा युद्ध के लिए किस प्रकार तत्पर होते हैं--

उठंत मै करी सुरं, मचंत जोधणो जुधं ।।
खिमंत उज्जली असं, बबरख तीखणो सरं ।।

जागड़दंग जुझयो भागड़दंग भ्रातं ।।
रागड़दंग रामं तागड़दंग तातं ।।

१४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६७ ।
१५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८ ।

बागड़दंग बाणं क्षागड़दंग क्षोरे।।
आगड़दंग आकास ते जान चोरे।।[१६]

३- रोस भरयो तज होस निसाचर श्री रघुराज को घाइं प्रहारे।।
जोरु बड़ो कर कऊ ससिंह अघ बीच ही ते सूर काट उतारे ।।
फेर बडो कर रोस दिवारदन घाइ परैं कपि पुंज संघारे ।।
पटरु लोह हथी पर संगड़ीये जंबुवे जमपाड़ चलावै ।।

४- श्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनी रन बान प्रहारे।।
बीरन मार दुसार गये सर अंबर ते बरसे जन डारे ।।

५- रावस सेस भरयो रन मो सिस सौ सर ओध प्रओध प्रहारे ।।
भूमि अकास दिसा बिदिसा सब ओर रुके नहि जात निहारे।।
श्री रघुराज सरासन लै क्षिन मै क्षुभ कैसर पुंज निवारे ।।
जानक मान उदै निस कऊ लिख कै सभ ही तप तेज पधारे।।६१३।।

६- रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए ।।
बाज बजी गजराज घने रथराज बने करि रोस उड़ाए ।।

७- रावन रोस भरयो गरज्यो रन मो लछिके सब सैन मजान्यो ।।
आप ही हाक हथ्यार हठी गहि श्री रघुनन्दन को रन ठान्यो।।[१७]

कुंभकर्ण के साथ युद्ध में भी वीर रस के सारे अवयव विद्यमान हैं। कुम्भकर्ण के युद्धस्थल में प्रवेश करते ही वानर सेना किस प्रकार तितर-बितर हो जाती है---

भजी बानरी पेख सेना अपारं, त्रसे जूथ पै जूथ जोधा जुझारं ।।
उठै गद्द सद्द निनद्दंति बीरं, फिरै रुंड-मुंड तनं तच्छ तीरं।।४१६।।[१८]

१७- ३,४,५,६,७ सब के लिए देखिए: दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २३७ ।

१८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २२४ ।।

घमासान युद्ध--

महाबीर जुटटैं ।। सर सेंज फुटटैं ।।
तंडकार छुटटैं ।। फंडकार उठ्ठैं ।।
सरंधार बुठ्ठैं ।। जुगं जुद्ध जुठ्ठैं ।।
रनं रोस रुठ्ठैं ।। इकं एक कुठ्ठैं ।।४३३।।[१९]

कुम्भकर्ण के मारे जाने के बाद त्रिपुंड भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त मेघनाथ की बारी आई। मेघनाथ भी बड़ा पराक्रमी और शूरवीर योद्धा है। वीर योद्धा युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। युद्ध के नगाड़े , बाजे बजने लगे। मेघनाथ का क्रोध में आना, नेत्रों का लाल होना, बाहों का फड़कना आदि अनुभाव कितने स्वाभाविक हैं--

इद्रार वीर कुंपयो कराल।। मुक्तत बाण गहि धनु किसाल ।।
थरकंत लुत्थ फरकंत बाह।। जुझंत सूर अच्छेरे उछाह ।।
चमकंत चक्र सरखंत सेल।। जुम्मे जटाल गण गंगमेल ।।
संघरे सूर अघाए घाए।। बरखंत बाण चड़ चऊप चाह।।[२०]

जब अतिकाय अपने योद्धाओं के साथ युद्ध कर रहा था तब लक्ष्मण की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनका क्रोध उसी प्रकार बढ़ गया जिस प्रकार आग में घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। यहाँ `उद्दीपन` का सार्थक प्रयोग हुआ है+--

तब राम भ्रात अत कीन रोस ।।
जिम परत अगन घ्रित करत जोस ।।[२१]

लक्ष्मण का धनुष पकड़ना और बाण मारना आदि अनुभाव हैं--

१९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २२४ ।
२०- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २२७ ।
२१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २२९ ।

गहि बाण पाण तज्जे अनंत ।। जिम जेठ सूर किरनै दुरंत ।।
रिप हने बान बज्रव घात।। सम चले काल की जुआल तात ।।[२२]

जब लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा की तो अतिकाय भी अत्यन्त क्रोधित हुआ--

तब कुपियो वीर अतकाय अैस ।।
जन प्रलै काल को मेघ जैस ।। ५१४।।

और अन्त में लक्ष्मण ने अपनी तलवार से उसके सिर के दो टुकड़े कर दिये--

तब तमक तेग लक्ष्मण उचार ।।
तह हनयो सीस किन्नो दुफार।।[२३]

वीर रस के ऐसे ही ज्वलंत उदाहरण रामावतार में भरे पड़े हैं, जिनका वर्णन हम अभी कर चुके हैं।

अब हम कृष्णावतार में इसका विश्लेषण करेंगे। उदाहरण के लिए अमतेस युद्ध का प्रसंग लेते हैं। अमगेस जब युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होता है तो जरासंध (अमितेस) धनुष-बाण, तलवार और बरछा लेकर कृष्ण की सेना का संहार करने के लिए तैयार हो जाता है। वह कृष्ण को घेर लेता है। और गर्व से कहता है---" तुमने गजसिंह, अणगेससिंह, रणसिंह आदि वीरों को मारा है। इन सबको मारकर तुम अपने आप को बहुत वीर समझते हो पर इतनी बात का ध्यान रखो कि हाथी तभी तक गरजता है जब तक सिंह सामने नहीं आता"---

को कै बोलत यों कहि के।। रन सिंघ ते आदि तै बीर खपाए।।
तो ते कहा गजसिंघ हनयो अणगेस हूं ते कुल साथ गिराए ।।
जानते हो अमितेस बली घनसिंह संघार कै बीर कहाए ।।

२२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २२६-३० ।
२३- दश मग्रन्थ, पृष्ठ २३० ।

सो त ब लउ गज गाजत है जब लऊ बन मै म्रिगराज न आए।।[२४]

इस प्रकार गर्वोक्ति करके वह कृष्ण पर प्रहार करता है--

यों कहि कै बतीयां हरि सों अभिमान भरे धन बान संभारयो ।।
कान प्रमान सरासन तान महां सर तीक्षन स्याम को मारयो ।।[२५]

कृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं और जब सुध आती है तो अचलेस उन्हें फिर ललकारता है---

तउ अचलेस गुमान भरे अति ही हमकै इह भांति पुकारयो ।।
जात कहा हमते भजकै करि लैके गदा कटु बोल उचारयो ।।[२६]

शत्रु के शब्दों को सुनकर कृष्ण क्रोधित हो उठते हैं और अपने रथ पर सवार होकर उस पर आक्रमण कर देते हैं।--

यों सुनि कै बतीआ अरि की रथु हाकि फिरयो हरि कोप मयो।।
पट पीत महा फहरिओ घुज जिऊ घन मै चपला सम रूप लयो ।।
बरखयो सर बूंदन जिउ घनस्याम तबै रिप को दल मार दयो ।।
रिस कै अचलेस सु बान कमान गहे हरि सामुहे आइ खयो ।।[२७]

कृष्ण क्रोधित होकर उत्तर देते हैं--

कोप कै उत्तर देत भयो अरि की बतीया सुनि स्याम सबै ।।
चिरीया बन मै चुहकै तब लऊ अति कोप न आवत बाज जबै ।।
गरबात है मूढ घनो रन मै कटि है तुहि सीस लखैगो तबै ।।
तिह ते तजि संक निसंक लरो बलबीर कह्यो कहां ढील अबै ।।[२८]

" अरे मूर्ख ! चिड़ियां जंगल में तब तक च हकती हैं जबतक बाज नहीं आता। तू मूर्ख घमण्ड करता है। तुम्हें तभी पता चलेगा जब तुम्हारा सिर

२४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४११। २५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४११ ।
२६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४१२। २७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४१२ ।

कट जायगा। आ तू बिना संकोच के लड़।"

अचलेस भी क्रुद्ध होकर उत्तर देता है--

यौं सुनि कै कटि बैनन को अचलेस बली मन कोप जगयो ।।
कस बोतल हो कछु लाज गहो सन ठाढ़े रहो सुनिहौ न भगयो।।
मन मै हरिख्यो धन को करिख्यो बरख्यो खर ग्री हरि कऊ न लगयो।।[२९]

अचलेस भी कहता है- क्यों ऐसे बोले जा रहे हो, कुछ लाज करो। मेरे सामने युद्ध में खड़े हो तब जानूँ"

कृष्ण उसके चलाये हुए बाणों को काट देते हैं। वे बिजली की तरह तीर चलाते हैं और उसका सिर काट कर पृथ्वी पर गिरा देते हैं--

दारक को कहिओ तेज कै सियदन ग्री हरिजू कर खग्ग संभारयो।।
दामन जिऊ घन मै लसकै रिसकै बरिबै अरि ऊपर मारयो ।।
दुज्जन को सिरु काट दियो बिन रुंड भयो जसु ताहि उचारयो।।
ज्यौं सरदूल महा बन मै हत कै बल सो मनो केहरि डारयो।।[३०]

अन्त में कृष्ण ने अपनी तलवार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया, मानो शादूर्ल ने वन में बलपूर्वक सिंह को मार गिराया हो।

इस उद्धरण में कृष्ण आश्रय हैं, जिनमें राक्षसों और दुर्जनों का संहारकरने का अपार साहस है, जिसे हम ` उत्साह ` की भी संज्ञा दे सकते हैं और यही वीर रस का स्थायी भाव है। अभितेस, अचलेस आलम्बन हैं। आलम्बन को सम्मुख देखकर कृष्ण के ` उत्साह ` में और भी तीव्रता आती है। जब अभितेस कृष्ण की सेना का विध्वंस करता है और कृष्ण को ललकारता है तो कृष्ण का ` उत्साह ` और अधिक बढ़ जाता है। कृष्ण क्रुद्ध होकर बाणों की वर्षा करने लगते हैं जिससे वह मूर्च्छित हो जाता है

२९- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ४१२ ।

३०- दशम ग्रन्थ , पृष्ठ ४१३ ।

परन्तु जब मूर्च्छा टूटती है तो वह पुन: गर्व से ललकारता है। कृष्ण में इस ललकार को सुनकर अमर्ष, रोष, गर्व आदि संचारियों का जन्म हते होता है। उनका उत्साह और भी उत्तेजित होता है और इसके फलस्वरूप 'अनुभाव' प्रकट होते हैं। कृष्ण रथ पर सवार होकर उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं, बाणों की वर्षा करते हैं और शत्रु सेना को विनष्ट करते हैं। अचलेस की गर्वोक्तियां उनके उत्साह में समिधा का काम करती हैं। कृष्ण कहते हैं "कि जब मैं तेरा सिर काट दूंगा तब पता लगेगा।" दोनों वीरों की ललकार, प्रति-ललकार से उनका उत्साह, अमर्ष, रोष और भी जाग्रत होता है। अन्त में कृष्ण उसका सिर काट देते हैं। इस प्रकार स्थायी भाव 'उत्साह' अमितेस की ललकार से उद्दीप्त होकर अमर्ष, रोष, गर्व आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ रस का रूप ग्रहण करता है। अनुभाव के रूप में कृष्ण की ललकार, तीरों की वर्षा आदि कर्म देखे जा सकते हैं।

वीर रस का यह श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें दुर्जन- असुर संहार के लिए वीरता की झांकी मिलती है। इसलिए उसमें उदात्तता है का गुण भी है।

वीर रस के ऐसे ही अनेक उदाहरण कृष्णावतार में भरे पड़े हैं। जब जरासिंध कृष्ण पर अपने दल बल सहित आक्रमण करने को आता है तो कृष्ण भी पीछे नहीं हटते। वे अपार सेना लेकर शत्रु पर टूट पड़ते हैं। यहां कृष्ण आश्रय और जरासंध आलम्बन है। वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' उद्दीप्त होकर कर्म का रूप धारण करता है--

राज नचित करो मन मै हमहूं दोऊ भ्रात सु जाइ लरैंगे।।
बान कमान कृपान गदा गाह कै रन भीतर जुद्ध करैंगे।।
जो हम ऊपरि कोप कै आइ है ताहि के सुसत्र सिऊ प्रान हरैंगे।।
पै उनको मरि है डरि है नहीं आहव तेपग दुइ न टरैंगे।।[३१]

३१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६४ ।

कृष्ण में वीर-योद्धा के अनुरूप कितना दृढ़ मनोबल एवं आत्म-विश्वास है। वे साक्षात् उत्साह, वीरता तथा साहस की मूर्ति हैं।

दोनों भाई माता-पिता को प्रणाम करके युद्ध के लिए चल पड़ते हैं। माता पिता भी उन्हें युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद देते हैं। कृष्ण सब वीर योद्धाओं को बुलाते हैं और युद्ध के लिए सेना संगठित करते हैं--

आवत ही सभ आयुध लै पुर बीर जिते सभ ही सु बुलाए ।।
बाँध किपान सरासन लै चढ़ि सैंयदन पै जदुबीर सिधारे ।।[३२]

कृष्ण युद्ध के विभिन्न शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर सब योद्धाओं को भी उत्तेजित करते हैं। कृष्ण शत्रु की सेना पर बाण-वर्षा करते हैं और इससे शत्रु सेना के योद्धा धराशायी हो जाते हैं।

स्री जदुबीर सरासन ते बहु तीर छुटे छुट कै मट घाये ।।
पैदल मार रथी बिरथी करि सत्र घने जम लोक पठाये ।।[३३]

कृष्ण का वीर रूप देखते ही बनता है--

जो मट सामुहे आइ अरयो बरिकै हरिजू सोऊ मार गिरायौ ।।
लाज भरे जोऊ जोर भिरे तिन ते कोऊ जीवन जान न पायो।।[३४]

जब कृष्ण की सेना के वीर हताहत हो जाते हैं तो उन्हें अत्यन्त क्रोध आता है। यह संहार उनके उत्साह को और भी उद्दीप्त करता है। कृष्ण की वीरता को देखकर शत्रु सेना भयभीत हो जाती है--

स्री जदुनाथ के बानन अग्र डरै अरि इऊ किहूं धीर धरयो ना ।।
बीर सभै हटिक ठटि के भटिकै रन भीतर जुद्ध करयो ना ।।[३५]

३२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३६४ ।
३३- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३६५।
३४- -वही- पृष्ठ ३६७।
३४- -वही- पृष्ठ ३६६ ।

जब जरासंध कृष्ण की सेना को आग लगा देता है तो सैनिक भयभीत होकर कृष्ण के पास आते हैं। कृष्ण उसी समय बदला लेने को उद्यत हो जाते हैं--

इन कोप गदा गहि कै मुसलीधर सत्रन सैन भले झकझोरयो ।।
जो भट आइ भिरे समुहे तिह एक चपेटहि सो सिर तोरयो ।।
अउर जितो चतुरंग चमू तिनको मुख ऐसी ही भाँति सों मोरयो।।
जीत लए सभही अरिवा तिन तो अजितिओ भट एक मकोरयो।।[३६]

कृष्ण शत्रु सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं तो भी जरासंध गर्व-पूर्ण ललकारते हैं। इससे अमर्ष, रोष आदि संचारी भाव उत्पन्न होते हैं। क्रोधित होकर टूट पड़ना और तीर से उसे घायल कर देना अनुभाव है।

जब सिंध जरा बिसमार भयो, गहि कै तब स्री घनिस्याम लयो ।।
गहि कै तिहको इह भाँति कह्यो, पुरखत्त इहो जड़ जुधु चह्यो।।[३७]

जरासंध जब देखता है कि उसका काल निकट है तब वह कृष्ण से दया की भीख माँगता हुआ उसे न मारने की प्रार्थना करता है। वह शस्त्रों को त्याग कर कृष्ण के पैरों में जा पड़ता है--

सुध लै तब भूप डरातुर ह्वै तजि ससत्रन स्याम के पाइ परयो ।।
बध मोरो करो न अबै प्रभ जू न लहिओ तुमरो बल भूल परयो।।
इह भाँति भयो बिधयात घनो नृप त्वै सरनागत ऐसे ररयो ।।
कबि स्याम कहै इह भूप की देख दसा करणानिध लाज भरयो।।[३८]

उसके कहने से छोड़ देने पर हर्ष, गर्व आदि संचारी भावों का संचार होता है। इस प्रकार उद्दीपन, संचारी, अनुभाव आदि के संयोग से

३६- बचित्र दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५०० ।
३७- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५०० ।
३८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५०१ ।

` उत्साह ` स्थायीभाव रस की स्थिति को प्राप्त करता है। शत्रु सेना का भागना उत्साह को बल प्रदान करता है।

चण्डी चरित्र प्रथम में भी वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। जब शुंभ-निशुंभ राक्षस देवताओं को अनेक तरह की यातनाएं देते हैं तो रणदेवी उन्हें दण्ड देने का व्रत लेती है। यहां वीर रस का स्थायीभाव ` उत्साह` कार्य की ओर उन्मुख होता है--

कान सुनी धुनि देवन की सभ दानव मारन को प्रन कीनो ।।
हुइ कै प्रतच्छ महा बरचंड सु क्रुद्ध ह्वै जुद्ध बिखै मन कीनो।।[३९]

युद्ध के लिए प्रस्तुत काली का रूप देखते ही बनता है। शुंभ अपने वीर धूम्रलोचन को देवी से युद्ध करने के लिए भेजता है। वह देवी को सम्बोधित करके कहता है--

धूम्रनैन गिरराज तट उचे कही पुकार ।।
कै बर सुंभ नृपाल को कै लरचंड संभार ।।[४०]

शत्रु के वचन सुनकर देवी सिंह पर सवार होकर युद्ध क्षेत्र में आ पहुंची। उसकी गर्वपूर्ण ललकार से अमर्ष, रोष आदि संचारी भाव उत्पन्न होते हैं। शत्रु की पुकार से वीरांगना देवी का उत्साह और भी उत्तेजित होता है। यहां पर धूम्रनैन आलम्बन है और देवी आश्रय।

कोप कै चंड प्रचंड चढ़ी हत क्रुद्ध कै धूम्र चढ़े उत सैनी।।
बान क्रिपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी।।[४१]

देवी का क्रोधित होकर धूम्रनैन पर टूट पड़ना और अपनी बरछी से उस पर प्रहार करना ही अनुभाव है।

३९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८१ ।
४०,४१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८३ ।

दऊ र दई अरि के मुखिमै कटि ओठ दये जिमु लोह कौ छैनी।।

धूम्रनैन को जब घाव लगता है तब वह भी अपनी गदा संभाल लेता है। धूम्रनैन देवी के सिंह पर बीस और पच्चीस बार करता है, परन्तु उसके पैर को टस-से-मस तक नहीं कर सका। तब रणचण्डी ने अपनी गदा उस के सिर मे मार दी--

घाय गदा गहि फोरिकै फऊज को,
घाऊ सिवा सिरदैत के मारियो ।। [४२]

इस प्रकार यहाँ ` उत्साह ` स्थायीभाव, धूम्रनैन की ललकार से उद्दीप्त होकर अमर्ष, रोष, गर्व आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ रस रूप ग्रहण करता है और अनुभाव स्वरूप देवी की ललकार बरछी मरना, गदा से सिर फोड़ना आदि कार्य देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार सुंभ और निसुंभ के साथ युद्ध में भी वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है तथा चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज के साथ हुये युद्ध में भी वीर रस के दर्शन होते हैं।--

लै कर मै असि चंड प्रचंड सु कुद्ध महं रनमद्ध लरी है।।
फोर दई चतुरंग चमू बलु कै बहु कलिका मार धरी है।।
दैत संभार सभी अपनो बलि चंडि सो जुद्ध को फेर अरे हैं।।
आयुध धारि लरे रन इऊ जनु दीपक मद्धिपतंग परे हैं ।।
चंड प्रचंड कुवंड संभार सभै रन मद्धि दु टूक करे हैं ।।
मानो महाबन मै बर बृक्षन काटि कै बाढ़ी जुदे कै धरे हैं।।[४३]

निसुंभ भी देवी के सामने आकर खड़ा हो जाता है और बड़ी निडरता से सामना करता है--

---

४२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८३ ।

४३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६४ ।

मार लहओ दलु अउर भजिऊ मन मै तब कोप निसुंभ करिओ है।।
चंड के सामुहे आनि अरिओ अति जुद्ध करिओ पगु नाहि टरिओ है।।[४४]

तभी देवी अपने बाण से उसे घायल कर देती है--

चंड के बान लगिओ मुख दैत के प्रउन समूह धरान परिओ है।।

देवी ने अपनी तलवार से शत्रु का सिर फोड़ दिया--

सांग संभार करं बहु धार कै चंड दहं रिप माल मै ऐसे ।।
जोर के फारे गहं सिर तान को पार भइं पट फार अैन से।।[४५]

इस प्रकार यहां स्थायी भाव `उत्साह` की सुन्दर पुष्टि हुई है। जब निसुंभ देवी से युद्ध करने आता है तो `उत्साह` प्रबुद्ध हो उठता है। अमर्ष, रोष, गर्व आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ वीर रस को व्यक्त करता है। देवी की ललकार, तलवार से प्रहार करना, बाण से घायल कर देना ही अनुभाव हैं।

निसुंभ का वध होने पर सुंभ सेना से सुसज्जित होकर देवी पर आक्रमण करता है। जब उसे पता लगता है कि निसुंभ युद्ध में मारा गया तो वह अपनी सेना को सम्बोधित करता है और कहता है कि देवी को मार दो, उसके शेर को भी मार दो--

चंडि प्रचंडि सु केहरि कालका अउर सक्ती मिलि जुद्ध करिओ है।
दानव सैन हती इनहूं सम इउ कहि कै मन कोप भरिओ है ।।
फेरि कहिउ दल को जब सुंभ सु मानि चले तब दैत घने ।।
गज राज सु बाजन के असवार रथी रथु पाइक कउन गने।।
तहा घेर लइ चहूं ओर ते चंड महां तिन के तन दीह बने ।।
मनो मान को क्राय लहउ उमडे घनघोर घमंड घटानि सने।।[४६]

४४,४५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६४ ।
४६- -वही- पृष्ठ ६६ ।

कवि ने शत्रु सेना की साज-सज्जा का वर्णन भी उतनी ही सहृदयता से किया है जितना कि वीर पक्ष की सेना का।

देवी क्रोधित होकर शत्रु सेना का सर्वनाश करती है। यहां वीर रस का स्थायी भाव `उत्साह` कार्योन्मुख होता है--

केते मार डारे अरु केतक चबाए डारे केतक बमाए डारे काली कोप तबही।
बाज गज मारे तेतो नखन सों फार डारे ऐसो रज मै कर न भइओ आगे कबही ।। ४७
भागे बहु बीर काहू सुध न रही सरीर हाल चकल परी मारे आपस में दबही।

सेना को हताहत होते देखकर वह अपने योद्धाओं को प्रोत्साहन देता है और कहता है कि देवी को मार दो, देवी की सेना को नष्ट कर दो। दोनों पक्ष के योद्धाओं की ललकार प्रतिललकार युद्ध को तीव्र गति देती है जिस प्रकार अग्नि आहुति से और भी अधिक प्रज्वलित होती है-

क्रोधमान भइओ कहिओ राजा सभ दैतन को ऐसे,
जुद्ध कीनो काली डारिओ बीर मार कै ।।
बल को संभार कर लीनो करवार ढार पैठो रनमधि
मारि मारि इऊ उचार कै ।। ४८

सुंभ और चंडिका का युद्ध देखते ही बनता है---

सुंभ चमूं संग चंड का क्रुद्ध कै जुद्ध अनेकाने वार मचिओ है ।। ४९

यहां संचारी भाव रोष , अमर्ष, गर्व आदि का संचार होता है। ललकार प्रति-ललकार देखिए। यहां द्वन्द्व-युद्ध का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है--

---

४७- ४८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ९६।
४९- -वही- पृष्ठ ९७।

दुंद सु जुद्ध मइओ रन मै उत सुंभ इतै बरचंड संभारो ।।
घाय अनेक भये बुहुं के तन पऊरल गयो सभ दैत को हारो।।[५०]

कोप महं बरचंड महां बहु जुद्ध करियो रन मैं बल धारो ।।
ले कै कृपान महां बलवान पचार कै सुंभ के अपरि मझारो।।[५१]

इस प्रकार देवी ने सुंभ के दो टुकड़े कर दिये। चण्डी च रित्र द्वितीय की कथा भी मिलती जुलती है ।

चण्डी चरित्र द्वितीय में चंण्डी चरित्र प्रथम की तरह युद्ध-वर्णन को दोहराया गया है। महिखासुर-वध, धूम्रनैन वध, चंड-मुंड वध, रक्तबीज वध, निसुंभ-सुंभ वध आदि का वर्णन है।

` चण्डी दी वार ` की कथा भी चण्डी चरित्र प्रथम और द्वितीय से मिलती जुलती है। इसकी भाषा मुख्यत: पंजाबी है।

महिखासुर राक्षस देवताओं को सताता है। देवता एकत्रित होकर देवी के पास जाते हैं। देवी उनकी करुण पुकार सुनकर राक्षसों का वध करने के लिए तत्पर हो जाती है। वह अपना भयंकर शेर जो कि राक्षसों का मंथन करने वाला है मंगाती है--

दुरगा बैन सुनही हस्सी हड़हड़ाई ।।
ओही सीहु मंगाइआ राखस भखना।।[५२]

यहां वीर रस का स्थायी भाव ` उत्साह` कार्य की ओर उन्मुख होता होता है। दोनों पक्षों का सेना की साज-सज्जा देखते ही बनती है। पाठक युद्ध प्रांगण में पहुंच जाता है। युद्ध के नगाड़े, ढोल, नफीरी और शंख आदि युद्ध की गति को और भी तीव्र करते हैं। नेजे, तलवार, बरछे आदि

५०, ५१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६७ ।

५२- दशम ग्रन्थ; पृष्ठ १२० ।

की भयंकर ध्वनि नभ-मंडल में बिखरने लगी+--

दुहां कंधारां मुहि जुड़े ढोल संख नगारे बज्जे ।।
सकसि आए रोहले तरवारी बखतर सज्जे ।।
जुटे सऊहे जुद्ध नू इक जात न जानन मज्जे ।।
खेत अंदरि जोधे गज्जे ।।

जंग मुसाफा बज्जिआ रन घुरे नगारे पावले ।।
कूलन नेजे बेरेका नीसान लसनि लसावले ।।
ढोल नगारे पऊन दे उर्धन जान जटावले ।।
दुरगा दानो उहे रन नाद बज्जन खेत भीखावले।।[५३]

चण्ड ने देवी की सेना के अनेक योद्धा मार दिये। इसको देखकर भगवती चण्डी का क्रोध भड़क उठा और वह हाथ में तलवार पकड़ कर रण-क्षेत्र में कूद पड़ी--

देवी दसत नचाई सीहनि मारदी, पैट मलदे लाई महखे दैत नू ।।
गुरदे आंदा खाई नाले रुक्कड़े, जेही दिल विच आई कही सुनाइके।।
चोटी जान दिखाई तारे घूमकेतु ।।[५४]

जब राक्षस दुर्गा को घेर लेते हैं तब देवी उनका वध करने के लिए अग्रसर होती है। राक्षस बड़े वीर योद्धा हैं। उनकी गर्वपूर्ण ललकार से अमर्ष, रोष आदि संचारी भाव उत्पन्न होते हैं। महिषासुर का रण में गर्जन देवी के उत्साह में वृद्धि करता है। शत्रु के वचन सुनकर देवी तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र में आ पहुंची। यहां पर महिषासुर आलम्बन है और देवी आश्रय।

सट्ट पई बमपानी दलां मुकाबला, घूहि लई किपानी दुरगा मिआन ते।।
चंडी राकसि खानी वाही देत नू, कोपर चूर चवानी लखी करगले ।।

५३- ५४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १२० ।
५५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १२२ ।

पाखर तुरा पलानी रड़की धौल जाइ।। लैदी अधा सिधानी सिंगां
-घड़ लदिआ।
कूरम सिर लहिलानी दुश्मन मार कै। बडे मन तिखारी मूए खेत विच।।
रन विच घत्ती घानी लोहू मिज दी, चाहे जुग कहानी चलग तेख दी।
बिघन खेत विहानी महिख दैत नूं ।।

क्रोधित होकर महिखासुर पर टूट पड़ना और अपनी तलवार से वार करना इसका अनुभाव हैं। इस प्रकार यहां भी चण्डी चरित्र प्रथम व द्वितीय के समान अन्य राक्षसों से युद्ध-वर्णन है जो कि वीर रस की पुष्टि में सहायक सिद्ध होता है।

२- आंशिक वीर रसात्मक कृतियां

१- निकलंकी अवतार :-

५८८ छन्दों का वीर रस प्रधान खण्ड काव्य है। जब पृथ्वी पर अधर्म, अत्याचार बढ़ जाते हैं तब प्रभु ने निष्कलंकी अवतार धारण किया। इस खण्ड काव्य में युद्ध वर्णन के सर्वत्र सजीव दर्शन होते हैं जो कि वीर रस का एक आवश्यक अंग है। जब शत्रु ने सेना को नष्ट करदिया तो कल्कि को बहुत क्रोध आया। वीर रस का स्थायी भाव `उत्साह` तो पहले से ही विद्यमान है परन्तु इस कारण उत्साह कार्योन्मुख होता है जो कि वीर योद्धा का गुण-विशेष है। कल्कि विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर शत्रु पर आक्रमण करते हैं। भयंकर युद्ध होता है। देखिए--

चउप चडिउ करि कोप कली कृत आयुध अंग अनेकन साजे ।।
ताल मृदंग उपंग मुचंग सुभांत अनेक भली बिध बाजे।।[५६]

यहां पर कल्कि आश्रय है और शत्रु आलम्बन।।

बाजे हने गजराज हने नृप राज हने रन भूम गिराये ।
डोल गिरिओ गिर मेर रसातल देव अदेव सभै महराये ।।

५६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५६६ ।

बान कमान संभार छठी छठ ठान छठी रन कोटिक मारे।
जांघ कहूं सिर बाह कहूं अस रने प्रमाण समै करि डारे ।।[५७]

युद्ध गति में कभी-कभी तीव्रता आ जाती है--

छह मांत सैन जुझकी अपार।। रन रोह क्रोह धाये लुझार ।।
तजंत बान गजंत बीर ।। उठत नाद भंजन भीर ।।

छाये सबाह जोधा सकोप, कढत किपान चाहंत घोप।।
लुझंत सूर जुझंत अपार। जन सेत बंध दिखीअत पहार।।[५८]

अन्त में कल्कि की विजय होती है। दोनों ओर की सेनाओं की टक्कर युद्ध में घटित होने वाली विविध घटनाओं का वर्णन कवि ने जितनी कुशलता और सजीवता से किया है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। कल्कि ने पश्चिम दिशा जीतकर दक्षिण की ओर ध्यान किया। दक्षिण को भी जीत लिया तो पूर्व की ओर प्रयाण किया। पूर्व की जीत पर उत्तर की ओर प्रयाण किया। ~~पूर्व-करे-बरे--~~

२- पारसनाथ अवतार :-

इसमें ३५८ छन्द हैं और युद्ध वर्णन अत्यन्त ओजस्वी और सजीव शैली में हुआ है। पारसनाथ एक वीर योद्धा है जिसकी संसार में और कोई भी बराबरी नहीं कर सकता। नायक में यह वीर गुण होना आवश्यक भी है--

मो ते अउर बली को है, जऊन मो ते जंग जीते जुद्ध मै कर जै।।
अउर ऐसे को मयो रन मोहि जीतै आइ, सात सिंघ सुकाइ डारो नैंक रोस करौं।।[५९]

५७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५९६-९७ ।
५८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५९९। ५९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८१ ।

वीर रस के स्थायी भाव `उत्साह` की यहाँ पुष्टि होती है। पारसनाथ का क्रोध में आना और सेना सुसज्जित करके शत्रु से युद्ध करना `उत्साह` को कार्य की ओर उन्मुख करना है--

यों कहि पारस रोह बढ़ायो ।।
दुंदभ ढोल बजाय महामुनि समुहि सन्यासनि धायो ।।
असत्र ससत्र नाना विधि छुट्टे बाण प्रयोग चलाए ।।
सुभट सनाहि पत्र चल दल जयों बानन बेध उड़ाये ।। [६०]

इस प्रकार पारसनाथ अनेक योद्धाओं को धराशायी कर देते हैं और विजय प्राप्त करते हैं--

जब पारस इह बिध रन मज्यो नाना ससत्र चलाए।।
हते सुहते जोध लै भाजे चहुदिश गये पराए ।। [६१]

३- चरित्रोपाख्यान :-

इसमें नारी की वीरता एवं युद्धकुशलता का वर्णन है। युद्ध-वर्णन कवि ने बहुत ही स्वाभाविक और सुन्दर किया है। चरित्रोपाख्यान का आलोचनात्मक वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

३- वीर रसात्मक शैली एवं पृष्ठ भूमि पर विरचित कृतियाँ

चौबीस अवतार में से कुछ कृतियाँ जो हमने ली हैं। इनमें वीर रस के पूर्ण अवयव प्राप्त नहीं होते, परन्तु युद्ध-वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। इनमें मच्छावतार, नर-नारायण अवतार, वैराहावतार, परसराम

६०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८१ ।
६१- -वही- पृष्ठ ६८१ ।

अवतार, नरसिंघ अवतार, रुद्रावतार, जालन्धरावतार, अरहंतदेवावतार सूर्यावतार, नरावतार आदि हैं, जिनमें युद्ध वर्णन बड़े ही ओजस्वी शैली में हुआ है। युद्ध वर्णन वीर रस में सहायक ह तो है परन्तु इसमें वीर रस की निष्पत्ति नहीं होती।

दयावीर :-

अभी तक हमने युद्धवीर का विस्तृत वर्णन किया है अब हम दया वीर पर विचार करेंगे।

कृष्णावतार में जरासंध को पकड़कर बार-बार छोड़ने में कृष्ण के दया-वीर का रूप सामने आता है--

करुनानिधि देख दसा तिह की, करुना रस कऊ चित्र बीच बढ्यो।
कोपहि छाडि दयो हरि जू दुहू, नैननि भीतर नीर बहायो।।
बीर हलायुध ठाढो हुतो, तिह को कह कै इह बैन सुनायो।।
छाडि दै जो हम जीतन आयो होसो, हम जीत लयो बिलखायो।।[६२]

अपने प्रतिद्वन्द्वी हलायुध द्वारा शस्त्र त्याग करते ही कृष्ण का सारा क्रोध तत्काल समाप्त हो जाता है। शरणागत की रक्षा की भावना उनके हृदय में अंकुरित हो जाती है और वे स्वयं को शत्रु द्वारा विजित मानने लगते हैं।

दानवीरता का उदाहरण भी कृष्णावतार में मिलता है--

बसत्र त्रीअन हूं सुन्दर धरे, दान बहुत विप्रन कऊ करे ।।
जिह तिह ठां हरि को गुन गायो, तिह दादद धन देइ गवायो।।[६३]

`रामावतार` में राम के अयोध्या आने पर माताओं ने दान किया।

६२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४६३ ।
६३- -वही- पृष्ठ ५६८ ।

मिले लच्छ मातं ।। परे पाय प्रातं ।।
करियो दान एतो।। गनै कऊन केतो।।[६४]

राम ब्राह्मणों को उचित आसन देते हैं और दक्षिणा दे कर विदा करते हैं--

बिदा बिप्प कीने घनी दच्छना दै ।।
चले देस देसं महां चित्त हरसं ।।[६५]

गर्वोक्तियां :-

युद्ध वर्णन में कवि ने जहां वीरों के उत्साह, शौर्य, साहस और निर्भीकता का परिचय दिया है, वहां उनके मन की दृढ़ता, साहस और आत्म-विश्वास का प्रदर्शन करने के लिए उत्साहपूर्ण उक्तियों का भी सहारा लिया है। वीर रस के उद्धरण में इसका वर्णन अधिक है फिर भी कुछ उदाहरण हम यहां प्रस्तुत करते हैं। अमितेस , जरासंध, बलराम, अमिटेस और खडगेस की गर्वोक्तियां देखिए--

जरासंध :-

जरासिंध ए बचनि सुनि रिसि करि बोल्यो बैन ।।
सकल सुभट हरिकटिक के पठऊ जम के ऐन ।।
कामयो जो मघवा बलवंड है आज हऊ तासी को जुधु मलैहऊ।।
मान प्रचंड कहावत है कि- हनि ताहि को हऊ जमधाम पैठे हो ।।
अऊ जुध्ये कहा सिव मै बलु है मरि है पल मैं जब कोप बढे हो ।।
पउरख राखत हऊ इतनो कहा भूप ह्वै गूजरते भजि जै हो।।[६६]

६४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २४१ ।
६५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २४३ ।
६६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४८६।

अभितेस अवलेस :-

कोप के बोलत यों हरि को रनसिंह ते आदि तै वीर खपाए ।।
तो ते कहा गजसिंह हन्यो अणगेस हू ते कुल साथ गिराए ।।
जानत हो अभितेस बली धनसिंह संहार के बीर कहाए ।।
सो तब लड़ गजगाजत है जब लऊ बन मैमृग राज न आए।।[६७]

खडगेस:-

पसचम सूर चढ़े कबहू अरु गंग बही उलटी जीअ आवै ।।
जेठ के मास तुखार परै बन अऊर बसंत समोर जरावै ।।
लोक हले धुअ को जल को थल हूह थल को कबहुं जल जावै ।।
कंचन के नगु मक्खन धारि उड़ै खडगेस न पीठ दिखावै ।।[६८]

बलराम :-

कोप हली जदवीर ही सो इह भाँति कह्यो कहो जाइ संघारो ।।
जउ-सिव आइ सहाय करै सिव को रन मै तिह संग प्रहारो ।।
साच कहौं प्रभु जू तुम सों हनहो अभितेस नहीं बलहारो ।।
पउन सरूप सहाय करो तुम पावक ह्वै रिप करन न जारो।।[६९]

अभितेस :-

का जू चतुरानन मैं बहु है जोउ आख्व मैं हम सो रिसिकै है ।।
कऊन खगेस गनेस दिनेस निसेस निहारकै मौन भवै है ।
सेस जलेस सुरेस धनेस जु जऊ अरि है तऊ मोह न ह्वै है।।[७०]
भाजत देव विलोक के मौकऊ तू लखा लरि का फलु लै है।।[७०]

६७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४१२ ।
६८- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४६१
६९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४१९-२०।
७०- -वही- पृष्ठ ४२१ ।

सुंभ निसुंभ की उत्साहपूर्ण गर्वोक्ति देखिए--

इउ सुनि के उनिके मुख ते तब बोलि उठिओ करि खग्ग संभारे ।।
इउ हनिहौं बरचंडि अजा बन मैं जिम सिंह पछारै ।।[७१]

बीभत्स :-

वीर रस के वर्णन के साथ-साथ बीभत्स रस भी सहायक रस माना जाता है। दशमग्रन्थ में बीभत्स रस के उद्धरण भी यथेष्ट प्राप्य हैं। इस रस का स्थायीभाव `जुगुप्सा` है। युद्ध-चित्रण के प्रसंगों में जुगुप्सा की भावना के दर्शन होते हैं।

युद्धस्थल में धड़ कटे हुए हैं तो कहीं अकेले पैर अथवा भुजाएं पड़ी हैं। शरीर के विभिन्न अंग रक्त से लिप्त पड़े हैं---

एक मरे भट स्रोनत सों भभकारत घाय फिरै रन डोलत ।।
एक परै गिरकै धरनी तिनके तन जंबक गीधक ढोलत ।।
एकन के मुखि ओठन आंसन काग सु चौचन सिउ टकटोलत।।
एकन की उर आंतन को काढ जोगन हाथन सिउ फकफोलत।।[७२]

एक परे बिनु प्रान धरा इक सीस कटे रन भूमहि धावै ।।
एक न की बर लोथ परी कर से गहि कै अरि ओर चलावै ।।[७३]

कयो हाथ काटे गिरे पेट फाटे फिरै बीर संग्राम मै बान लागे ।।[७४]

वीरों के शीश धड़ से अलग हो गये हैं--

७१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६२ ।
७२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८० । ७३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८२ ।
७४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८३ ।

घूमत घायल ह्य इक बीर फिरै इक प्रउन मरे भभकाते ।।
एक कबंध फिरै बिनसीस लखै तिन काहर है बिललाते ।।[७५]

युद्ध भूमि में किसी की भुजा कटी पड़ी है तो कोई बिना रथ के हो गया है। भूत, पिशाच, जोगनियां बहुत प्रसन्न हैं क्योंकि उन्हें मांस खाने को मिल रहा है। सभी मानो रक्त के समुद्र में स्नान कर रहे हों--

एकन की भुज काटि दई अरु एकन के सिर काटि गिराए ।।
जादव एक किए विरथी पुनि श्री जदुबीर को तीर लाए ।।
अउर हने गजराज हने घने बर बाज बने हनि भूमि गिराए ।।
जोगिन भूत पिशाच स्रिगालनि प्रउनन सागर माफ अन्हाए ।।[७६]

कृष्ण ने रणभूमि में बड़ी ही भयंकर युद्ध किया जिस कारण कहीं भुजा गिरी पड़ी है तो कहीं किसी वीर का सिर पड़ा है। हाथी की सूंड भी कट कर गिर गयी हैं। यह सब कृष्ण के तीरों की वर्षा के कारण हुआ है---

बहुरै घनिस्याम घन्न सुरकै बरस्यो सरबूंदन जिऊ मंगवा ।।
चतरंग चमूं हन प्रउन बह्यो सु भइयो रन हंगर के रंगवा ।।
कहूं मुंड फरे रथ पुंज ढरे गज सुंड परे कहूं है तंगवा ।।
जदुबीर जु कोप कै तीर हने कहूं बीर गिरै सु कहू अंगवा।।[७७]

चंडी चरित्र में से एक उद्धरण देखिए--

सुंभ चमूं संग चंडका कुद्ध कै जुद्ध अनेकन बार मचिऊ है।
जंबक जुगन ग्रिज्झ मजूर रकत की कीच में हंस नचिऊ है।।
लुत्थ पै लुत्थ सुभीति भई सित खूद अऊभेद लै ताहि गचिओ है।।
भऊन रंगीन बनाये मनो करमाणि सचित्र बचित्र रचिओ है।।[७८]

७५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४६० । ७६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४६०।
७७- -वही- पृष्ठ ३६५ । ७८- -वही- पृष्ठ ६७ ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दशमग्रन्थ में भरे पड़े हैं। अंगों का शरीर से अलग होकर बिखरना, रुधिर की नदी बहना, अंगों का बिखर जाना वीर रस के आलम्बन हैं। गिद्ध, स्यार, काग आदि का मांस खाना योगिनियों द्वारा खून पीना तथा भूतु-पिशाच का मांस खाना वीर रस में उद्दीपन का कार्य करते हैं।

भयानक रस :-

इस रस का वीर रस से अभिन्न सम्बन्ध है। इसके बिना वीर रस अपूर्ण है। वीर रस युद्ध प्रसंगों से ही पुष्ट होता है। इन युद्धों में रुधिर का बहना, छतविछात शवों के ढेर, उनको चीर-फाड़ कर खाना आदि दृश्यय वातावरण को भयावना बना देते हैं। रणभूमि में दीर्घकाय और भयंकर वेषयुक्त राक्षस, डाकिनी, भूत-प्रेत, भैरव, श्रृंगाल रसिकों को भय-भीत करते हैं। ये सब भयानक रस के परिचायक हैं। गन्धर्वों के भयंकर तथा विकराल नृत्य, वीरों के घोड़ों का प्रलय मचाना तथा दौड़-दौड़ कर शत्रु पर आक्रमण करना आदि भय की सृष्टि करने वाले हैं। भयानक रस का स्थायी भाव `भय` है जो कि हमें सर्वत्र देखने को मिलता है।

`चंडी दी वार` में राक्षसों का भयानक रूप देखते ही बनता है--

घुरे नगारे दोहरे रन संगली डाली।।
घूड़ि लपेटे धूहरे सिरदार बटाले ।।
कंकखलिआं नासा जिवा मुहि जापन आले ।।
घाये देखी साहमने बीर मुच्छलीआले ।।[७९]

युद्ध की भयंकरता के दृश्य अनन्त हैं। कवि की लेखनी इसका वर्णन करती अघाती नहीं। `चण्डी-चरित्र में युद्ध के भयंकर दृश्य देखिए-

परी कुटट कुटं रुले तच्छ मुच्छं।। कहूं मुंड तुंडं कहूं मासु मुच्छं ।।
भयो चारसौ बीस लछ बीर खेतं।। बिदारे परे बीर ब्रिदं बिचेतं ।।[८०]

७९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १२१,। ८०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०६ ।

उपर्युक्त पंक्तियों में युद्ध की विकरालता देखते ही बनती है। शस्त्रों की वर्षा होने लगती है पर रुधिर की नदी बह उठती है परन्तु फिर भी वीर अभिमानी योद्धा रणभूमि नहीं छोड़ते और वाणों की वर्षा करते हैं---

परै ससत्र झारं ।। चली स्रोन धारं ।।
उठे बीर मानी ।। धरे बान पानी ।।
महा रोस गज्जे।। तुरी नाद बज्जे ।।
भरे रोस भारी।। भये छत्र धारी।। [८१]

नदी स्रोन पूरं ।। फिरी गैन हूरं ।।
गजै गैन काली ।। हसी खप्पराली ।। [८२]

रक्त की नदियाँ बहने लगीं। परियाँ प्रसन्न हुईं। काली भी किलकारियाँ मारकर अट्टहास करने लगी।

कहूं बाज मारे ।। कहूं सूर मारे ।।
कहूं चरम टूटे ।। फिरै गज्ज फूटे ।।
कहीं बरम बेधे ।। कहूं चरम छेदे ।।
कहूं पीर परमं ।। कटे बाज बरमं ।।
बली बैर रुमके ।। समुह मार झुमके ।।
लखै बीर खेतं ।। नपे भूत प्रेतं ।। [८३]

कृष्णावतार :-

इसमें कृष्ण ने छल से खड्गसिंह का सिर काट दिया है। उसका अकेला धड़ युद्ध में रत है, उसने अपने सिर को कृष्ण की ओर फेंक दिया।

८१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०६। ८२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०७।
८३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०७ ।

वह कृष्ण की छाती लाता है और कृष्ण मूच्छित होकर धरती पर गिर पड़ते हैं। घड़ सूर्य और शिवजी पर आक्रमण करता है। युद्ध में भय का वातावरण छा जाता है। इससे बढ़कर भयकारक दृश्य और क्या हो सकता है।[८४]

अभिटसिंह की वीरता भी देखते ही बनती है। वह स्वयं बिना शीश के एक हाथी का सिर काटकर उसके सवार को मार देता है। हाथ में तलवार लेकर कृष्ण पर आक्रमण करता है--

सीस कट्यो ना हट्यो वह ठउर ते दउर के आगे ही को पग धारयो।।
कुंवर एक हुतो दल मै तिह घाय के बाय के घाय प्रहारयो ।।
मार करी हनि बीर चल्यो अस लैकर श्रीहरि ओर पधारयो ।।
भूमि गिरयो सिर श्री शि व लै गुह मुंड की माल को मेरु सँवारयो।।[८५]

अभिटसिंह ने रणभूमि में सर्वनाश किया---

काटि करी रथ काटि दिये बहु बीर हने अतिबाज संघारे ।।
घायल घूमत है रन मै कितने सिर भूमि परे धर मारे ।।
जीवित जे जेऊ आयुध लै न डरे अरि ऊपरि घाय प्रहारे ।।
तऊ तिन के तन आहव मै असि लै नृप खंड निखंड के डारे।।[८६]

कृष्णावतार में जितने भी वीर योद्धा हैं उनके साथ युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ है। उद्धरण इतने अधिक हैं कि सबका वर्णना करना असम्भव है। यही कहा जाएगा कि युद्ध के भयंकर दृश्यों का वर्णन कवि ने बड़ी सजीवता से किया है। अ रामावतार में भी हम इसके दर्शन करते हैं--

कहूं मुंड पिसीअह कहूं भक रुंड परे धर ।।
कितही जांघ तरफत कहूं उछरत सु कुव कर ।।

८४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०७। ८५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४२१।
८६- -वही- पृष्ठ ४१८।

भरत पत्र खेवरी कहूं चावंड चिकारैं ।।
किलकतकतह मसान कहूं भैरव भभकारैं।।[८७]

उपर्युक्त पंक्तियों में कहीं मुंड पड़े हैं, कहीं आंधें तड़फड़ा रही हैं, कहीं कटे हुए हाथ उछल रहे हैं, कहीं भैरवी अपना खप्पर रक्त से भर रही है, कहीं भूत चीत्कार कर रहे हैं। शमशान भूमि से किलकारी उठ रही है और भैरव भभकार रहा है। चंडी चरित्र द्वितीय में रक्तबीज देवी से युद्ध करने के लिए चला। उसके नगारे की आवाज़ से भूमि कांपने लगी। नभ थरथराने लगा और देवराज इन्द्र भी भयभीत हो गया--

रक्तबीज दे चल्यौ नगारा, देव लोग लखु सुनी पुकारा।।
कंपी भूमि गगन थहराना, देवन जुति दिवराज डराना।।[८८]

नीहकलंकी अवतार में :-

करै केल केकी किलकैन काली , तजै ज्वाल माला महा जोत ज्वाली।।
हसै भूत प्रेतं तुटै तत्थि तालं, फिरैगऊर दऊरी पुअै रुंड मालं ।।[८९]

किलकंत कपालन सिंध चढ़ी, चमकंत किपान प्रमान मढ़ी ।।
गण हूर सु पूरत धूर रणं , अलब अवलोकत देव अदेव गणं ।।[९०]

इन गर्वोक्तियों की उग्रता, उद्वेग तथा पुन: स्मृति आदि संचारी भावों के रूप में क्रियात्मक होकर रुद्र रस की निष्पत्ति होती है।

रौद्र रस :-

रौद्ररस भी वीर रस का सहायक रस माना गया है। भरतमुनि के कथनानुसार रौद्र रस राक्षस , दानव और उद्धत मनुष्यों में परस्पर संघर्षसे उत्पन्न होता है। और युद्ध का कारण बनता है।[९१] दशमग्रन्थ में सर्वत्र युद्ध की

८७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २१८ । ८८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०५ ।
८९- -वही- पृष्ठ ६०२ । ९०- -वही- पृष्ठ ६०४।

प्रधानता है इसलिए रौद्ररस की सृष्टि भली भाँति हुई है। यहाँ संग्राम के परिणामस्वरूप क्रोध की स्थिति को मानकर रौद्र रस की अवतारणा होती है। युद्ध में एक दूसरे को ललकारने एवं गर्वोक्तियों के कथन से यह रस उत्पन्न होता है। इन गर्वोक्तियों की उग्रता, उद्वेग तथा पुनः स्मृति आदि संचारी भावों के रूप में क्रियात्मक होकर रौद्र रस की निष्पत्ति होती है। बचित्र नाटक के ' हुसैनी युद्ध ' के प्रसंग में हुसैनी पदा के कृपाल राजा के क्रोध का चित्रण इस प्रकार हुआ है--

कुपियो कृपालं सज्जि मरालं बाहु बिसालं धरि ढालं ।।
धार सब सूरं रूप करूरं चमकत नूरं मुखि लालं ।।
लै लै सु पृपाणं बाण कमाणं सज्जे जुआनं तन ततं ।।
रण रंग कलोलं मारहो बोलं जनु गज डोलं बनमतं ।।[९२]

यहाँ गुलेर का राजा गोपाल रौद्र रस का आलम्बन है। हुसैनी के पास से भाग जाना उद्दीपन है। राजा कृपाल का क्रोधित होकर घोड़ा सजाना , विशाल ढाल का धारण करना, रणभूमि में विचरना और मारो-मारो पुकारना आदि अनुभव हैं, मद और उग्रता संचारी हैं।

कृष्णावतार :-

जरासंध की सेना के शूरवीर श्रीकृष्ण से पराजित होकर उसके पास प्रार्थना करते हैं कि आप श्रीकृष्ण से युद्ध न करें क्योंकि श्रीकृष्ण से जीत पाना बहुत कठिन है। यह सुनकर जरासंध क्रोधित हो उठा और कहने लगा कि उससे बढ़कर और कौन शूरवीर है। वह सबको अभी मौत के घाट उतार देगा--

---

९१- " अथ रौद्रो नाम क्रोधस्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धतमनुष्य प्रकृतिः। "
नाट्य शास्त्र, पृष्ठ ३६८।

९२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६७ ।

जरासिंध य बचन सुनि रिसि कर बोल्यो बैन ।।
सकल सुभट हरि वटिक के पठऊ जम के सैन ।।[९३]

वह पुन: कहता है कि अगर इन्द्र बलवान है तो वह क्या उससे कम है। वह शिवजी से भी युद्ध करेगा। कृष्ण जैसे ग्वाले से तो वह क्यों डरने लगा--

इन्त्रिोजो मघवा बलवंड है आज हउ ताही सो जुद्ध रचै हउ।।
मस प्रचंड है हनि ताही को हऊ जमधाम पठै है ।।
अऊ जु कहा सिव मै बलु है मरि है पल मै जब कोप बहै है।।[९४]
पऊरख राजत हऊ इतनो कहा भूप ह्वै गूजर ते भजि जै हो ।।

कृष्णावतार में ही कृष्ण शिव की सहायता से मिट्टी का एक व्यक्ति बनाकर उसमें प्राण फूंकते हैं और उसका नाम अजीतसिंह रखकर उसे खड़गसिंह से युद्ध करने को कहते हैं।

कृष्ण की इस नीति से खड़गसिंह का क्रोध भड़क उठता है और वह कृष्ण पर बरस पड़ता है---

किउमरे गुमान करै घनस्याम अबै इन ते पुनि तोहि मजैहों ।
काहै को आन अरयो सुन रे सिर केसनि ते बहुरो गहि लैहों।।
छक्क रे रे अहीर अधीर डरै नहि तोकहि जीवत जान ने दैहों।।
इन्द्र विरंच, कुबेर जलाधिय को ससि को सिव को हते कैहों।।[९५]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दशमग्रन्थ का अंगीरस वीर रस है। वीर के सभी रूप इसमें यथेष्ट रूप से वर्तमान हैं। वीर रस की श्रीवृद्धि करने के लिए इसमें बीभत्स, भयानक, रौद्र तथा हास्य आदि रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। इस रचना को वीर रस का वेद कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

::o::

९३-९४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४८९ । ९५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४९७ ।।

पंचम अध्याय

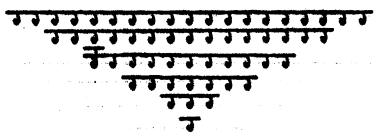

दशम ग्रन्थ की वीर रसात्मक वाणी में युद्ध वर्णन

दशम ग्रन्थ की वीर रसात्मक वाणी में युद्ध वर्णन

वीर-रसात्मक काव्य में युद्ध वर्णन का महत्व :-

भारतीय साहित्य में श्रृंगार और वीर रस को विशेष स्थान दिया जाता है। यदि श्रृंगार रस का स्थायी भाव ' रति ' है तो वीर-रस का स्थायी भाव ' उत्साह ' है। वीर रस का उद्देश्य मानव में गतिमयता एवं कर्मण्यता के भावों की जागृति करना है। वीर रस कर्म प्रधान है और कर्म द्वारा ही मानव जाति की रक्षा सम्भव है। वीरत्व मनुष्य में शुभ कर्म की पवित्र भावना को उत्पन्न करके उसे सर्वथा कर्मपरायण बनाता है। अत: वीर रस वीर हृदय में वह शक्ति और साधना का संचार करता है, जिससे वह अत्याचारों, दुराचारों, कुकर्मों और सामाजिक भ्रष्टाचारों का विरोध कर सके।

वीरत्व की रसात्मक अनुभूति के बारे में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं-- " स्वदेश प्रेम के गीत गाते हुए नवयुवकों के दल जिस साहस भरी उमंग के साथ कोई कठिन या दुष्कर कार्य करने के लिए निकलते हैं, वह वीरत्व की रसात्मक

अनुभूति है।"[1]

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या युद्ध वर्णन से ही वीर-रस की सफल निष्पत्ति होती है ? क्या युद्ध मानव की स्वार्थ भावना के लिए रक्त पिपासा को शांत करने का साधन है ? इसका निराकरण हम इस प्रकार कर सकते हैं कि दशमग्रन्थीय युद्ध धर्म-युद्ध है जो धर्म, देश और जाति की रक्षा के लिए किया जाता है। कवि को अपनी तत्कालीन परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान था। वे एक ऐसी वीर-सेना का निर्माण करना चाहते थे जो शत्रु का वीरता से सामना कर सके, उस युग के दुष्ट शासकों के क्रूर अत्याचारों का बदला ले सके और इसके लिए एक ही सुगम मार्ग था-- शत्रु से युद्ध करना। वे अपने इष्ट से सदैव यही वर याचना करते हैं--

" अवर वासना नाहिं प्रभु धर्म युद्ध का चाए ।"[2]

कवि को युद्ध वर्णन में अत्यधिक रुचि है। युद्ध ही उनके जीवन का परम लक्ष्य है। वे अपने प्रभु से यही याचना करते हैं कि युद्ध में लड़ते-लड़ते ही अपने प्राण त्याग दूं+--

" जब आव की औध निदान बनै तब ही रन में अति जूझ मरौं।"[3]

कितना उच्चादर्श है कवि का, जिसके समक्ष वह अपना सर्वस्व तो बलिदान करता ही है, अपनी वीर और साक्षी सेना को युद्ध भूमि में जीवनोत्सर्ग करने का आह्वान भी देता है-+

अब हम युद्ध-वर्णन का विस्तार से वर्णन करेंगे।

वीर रसात्मक काव्य में युद्ध वर्णन का विशिष्ट स्थान है। इस के बिना वीर रस की पूर्ण निष्पत्ति असम्भव है। वीर रस का स्थायी भाव "उत्साह" है। सामाजिक अत्याचार को देखकर नायक को पीड़ित पात्रों के प्रति करुणा होती है और इसी तरह सामाजिक धर्म में बाधा पहुंचाने वाले

१- रस मीमांसा, पृष्ठ २२१-२२ ।
२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५७०, छन्द २४६१ ।
३- -वही- पृष्ठ ६६, छन्द २३१ ।

पात्र के प्रति, अत्याचारी पात्र के प्रति- क्रोध आता है। ये दोनों ही भाव वीरता के प्रेरक हैं। उत्साह का वर्धन करने वाले हैं, नायक को कर्म के लिए प्रेरित करने वाले हैं।

शंका पदा:-

युद्ध के लिए कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण कार्य सम्पन्न होना असम्भव है। इस सृष्टि की रचना भी इसी आधार पर हुई है।

कृष्णावतार :-

यह कवि की दीर्घकाय वृहद् रचना है। कवि ने जितने भी अवतारों का वर्णन किया है उसका आधार पौराणिक है। यह आधार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्णत: सफल रहा है। डा० जग्गी के कथनानुसार-- "इन कवियों का उद्देश्य पुराणों का अनुवाद करना नहीं था, बल्कि उस समय के सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक संकटों में जकड़ी हुई हिन्दू जनता को मुक्त करने के लिए प्रसिद्ध पौराणिक प्रसंगों को सामयिक स्थितियों के अनुरूप भाषा में लिपिबद्ध करना था।[४] कृष्ण कृष्णावतार में कवि ने युद्ध का सफल वर्णन किया है। जरासंध के साथ युद्ध में पहले कवि युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालता है। कंस के केश पकड़ कर भूमि पर खींच कर मारने का जो चित्रण कवि ने किया है, उससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि कवि दुष्टों और अत्याचारियों के प्रति किस प्रकार के भाव रखता है और उनका किस प्रकार अंत करना चाहता है--

हरि कूद तबै रंग भूमहि ते नृप थो सु जहां वह ही पग धार्‌यो।।
कंस लहि कर ढाल संभार कै कोप भरयो अस खेंग निकार्‌यो ।।
दऊर दई तिहके तन पै हरिफाघ गए अत दाव संभार्‌यो ।।
केसन ते गहि कै रिपु कौ धरनी पर कै बल ताहि पछार्‌यो।।८५१।।[५]

४- दशम ग्रन्थ दा पौराणिक अध्ययन, पृष्ठ ६५ ।

५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६७ ।

जरासंध युद्ध के लिए प्रण ठान लेता है।

इसी प्रकार चण्डी चरित्र उक्ति विलास में युद्ध का कारण विशेष नहीं दिखलाया गया। इस का शंका पदा अपेक्षातया निर्बल ही है, क्योंकि इसमें कवि ने कारण को ध्यान में न रखते हुए केवल चण्डी की महिमा को ही सर्वोपरि माना है। कवि का ध्यान ` वैर बढ़ाय लराय सुरासुर आपहु देखत बैठ तमासा` में अधिक रमा है। इसीलिए चण्डी महिमा का वर्णन अधिक है---

तारन लोक उघारन भूमहि दैत संघारन चण्ड तुही है।
कारण इंस कला कमला हरि अद्र सुता जह देखो उही है ।।
तामस ता ममता नमता कविता कवि के मन मधि गुही है।।
कीनो है कंचन लोह जगत्र में पारस मूरत जाहि छुहि है ।।४।।[६]

इसी ` प्रमुद करन सम मैहरन` चण्डिका के ` विचित्र चरित्र` की रचना हेतु कवि ` करो सबुद्ध प्रकास` की याचना अर्चना करता है। कवि क्योंकि रण चण्डी के बल-पराक्रम , युद्ध-चातुरी और दुष्ट दलन, भय हरन स्वरूप की प्रस्थापना करना चाहता है, अत: उसके शंका पदा में केवल एक छोटा सा कारण प्रस्तुत किया है--

हरि सोय रहे सब सैन तहा।। जल जाल कराल बिसाल जहां ।।
भयो नाभ सरोज ते बिसुकरता। सुत मैल तै देत सों जुगता ।।८।।
मधि कैटभ नाम धरे तिनके ।। अति दीरघ देह भये जिनके ।।
तिन देख लुकेस डरिओ हिय मैं।। अन्ति जगमात को धिआनु धरियो जीअ मै।।९।।[७]

देवपदा की वृद्धि हो और दैत पदा का ह्रास हो इसके लिए ही युद्ध का श्रीगणेश चण्डी ने किया--

---

६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७४ ।

७- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७४ ।

छुटी चण्ड बागे ब्रहम करियो जुद्ध को साज ।
दैत सभै कटि जाहि जिऊ बढे देवतन राज ।।१०।।[८]

बचित्र नाटक में शंका पदा :-

इसमें जिन युद्धों का वर्णन हुआ है, उसमें हम उदाहरण हेतु `भंगाणी` का युद्ध का कथा-प्रसंग लेते हैं। इसमें युद्ध का एक बहुत ही रुचि-कर कारण दिया गया है। समस्या बड़ी भी है और बड़ी भी नहीं। भारत की छोटी-छोटी रियासतों के राजा अपने आपको ब्रह्म का ही दूसरा अवतार समझते थे और वे यह सहन नहीं कर पाते थे कि उनके राज्य में कोई वीर पुरुष उनका प्रभुत्व माने बिना नि:शंक एवं निर्भय रूप से विचरण करे। ऐसा स्वीकार करना उनके अहं एवं दर्प को स्वीकार्य भी कैसे हो सकता था। इसीलिए जब गुरु जी कालिंदी तट पर निवासित और प्रकृति के क्रोड में पल्लवित एवं पुष्पित ~~नानकी~~ नगरी `पांवटा` में रहने लगे और वहां निवास करके स्वच्छन्द रूप से वहां के वन-पर्वतों एवं नदीनालों को चीरते हुए, शिकार करते हुए मुक्तसिंह की तरह विचरण कर रहे थे, युद्ध-विद्या का प्रशिक्षण दे रहे थे, तो वहां के राजा फतेहशाह को एक नवागन्तुक का यह व्यवहार कैसे भला लग सकता था। शिकार खेलना एवं युद्ध प्रशिक्षण देना गुरु जी का लक्ष्य नहीं था, अपितु वे तो अपने मनोबल, तपोबल एवं रणतेज का परीक्षण कर रहे थे। यही कारण था कि कवि ने अपने शंका पदा का अनुमोदन करतेहुए लिखा है---

राज साज हम पर जब आयो। जथा सकत तब धरम चलायो ।।
भाँति भाँति बन खेल शिकारा। मारे रीछ रोझ झंकारा।।
देस चाल हमते पुनि भई। सहर पांवटा की सुधि लई ।।
कालिंद्री तटि करे बिलासा। अनिक भाँति के पेखि तमासा।।
तह के सिंघ घने चुनि मारे।। रोझ रीछबहु भाँति विदारे।।
फतेहसाह कोपा तबि राजा। लोह परा हम सो बिनु काजा।।३।।[९]

८- दश मग्रन्थ , पृष्ठ ७४। ९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६० ।

संघर्ष पदा :-

युद्ध वर्णन का दूसरा पदा है संघर्ष पदा । कृष्णावतार में संघर्ष पदा का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। जरासंध जब युद्ध के लिए तत्पर हो जाता है तो वह अपने सेनापतियों से युद्ध के विषय में मन्त्रणा करता है। उन्हें एकत्रित करने के लिए पत्र भेजता है। युद्ध के लिए इनमें से कौन बीड़ा उठाता है। इसका वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। किस प्रकार जरासंध के सेनापति युद्ध की तैयारी में तल्लीन हैं। सेना की साज-सज्जा देखते ही बनती है---

जरासिंध बहु सुभट बुलाए, भाँति भाँति के ससत्र बंधाए ।।
गज बाजन पर पाखर डारी । सिर पर कंचन सिरी सवारी।।
पाइक रथ बहुत जुरि आए।। भूपति आगे सीस निवाए ।।
अपनी अपनी मिसल सभ गद्दे।। पाँति जोर करि ठाढे भए।।
यहि सैना चतुरंज जरासंध नृप की बनी ।।
साज्यो कवच निखंग धनरव बान लै रथ चढ्यो।।[१०]

इस प्रकार शस्त्रों से सुसज्जित सेना लेकर युद्ध के मारु बाजे बजाते हुए उसके प्रधान राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। कृष्ण के दूतों से जब यह समाचार मिलता है तो वह तत्काल अपने मन्त्रियों को मन्त्रणा के लिए बुलाते हैं। पान का बीड़ा उठाने का पारस्परिक चित्रण वे देखिए--

बोलि कह्यो हरिजू दल मै भट कोऊ जो अरि संगि लरै ।।
उहको बहु अस्त्र सहै तन मै अपने उह ऊपर ससत्र करै ।।
निज पान पै पाप धरे घनस्याम सु कोय न बीरन लाज धरै ।।
रन मैं जस को सोऊ टीको लहै समरेस को जुद्ध ते नाहि टरै।।१२९०।।
बहुत जुद्ध सुमरनि करयो कहा करै बलवान ।।
आहत सिंह बली हुतो मांगलीउ तिह पान।।१२९१।।[११]

१०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३९२-९३ ।
११- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४२५ ।

युद्ध प्रस्थान, युद्ध भूमि में सैन्य सज्जा, युद्ध का प्रारम्भ, युद्ध का वातावरण निर्मित करने के लिए नगारों व बिगुलों का योगदान, युद्ध में तुमुल युद्ध, द्वन्द्व युद्ध, मुण्ड एवं रुण्ड युद्ध, शस्त्र प्रहार, शस्त्र गति, युद्ध भूमि के दृश्य, युद्धों में उक्ति प्रयुक्ति और गर्वोक्तियां देखते ही बनती हैं--

तऊ जदुबीर कह्यो उठिकै रिस बीज सभा अपने बल सो।।
अब को बलवंड बड़ो हम मै, चलि आगे ही जाइ लरै कल सो ।।
अपनो बल धार संहार के दानव दूर करै सभ भूतल सो ।।
बहुभूत पिसाचन काकनि ड़ाकनि तोख करे पल मै पल सो।।१०४०। [११क]

स्वच्छसिंह कृष्ण को आवाहन करते समय जो शब्द उच्चारण करता है उसे गर्वोक्ति का सुन्दर दृष्टांत कहा जा सकता है---

१- बहुत सैन हनि जादवी बढ्यो गरब अपार ।।
मानु उतारियो कृष्ण प्रति बोलियो कोप हंकार।।१२८२।। [१२]

२- कहा भयो जो भूप दस मारे श्याम रिसाय ।
जिऊ मृग बन तिन मच्छ कर लरे न हरि समुहाई।।१२८३।।

३- रिप के बचन सुन्नत ही बोले हरि मुसकाय ।
स्वच्छसिंह तब मारिहो स्यार सिंघ की न्याय।।१२८४।। [१३]

कृष्ण के वीर रूप की इससे बढ़कर और क्या गरिमा हो सकती है-- ` कै अरि मारौ कै लरि मरौ ।।१५२६।। [१४]

शत्रु सेना के अमिटसिंह की वीरता का दृश्य देखते ही बनता है। वह महान योद्धा है--

जो इह सामुहे आइ भिरै भट ताहीं संघार के भूमि गिरावै ।।
कान प्रमान लऊ तान कमान घने सर सत्रन के तन लावै ।।
सोऊ बचे सिंह ते बलबीर जोऊ भजि आपने प्रान बचावै ।।
अउरन की सौ कहा गनती जो बड़े भट जीवत जान न पावै।।१२२३। [१५]

---

११ क-- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३८३। १२,१३- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४२४।
१४- -वही- पृष्ठ ४५१। १५- -वही- पृष्ठ ४१५।

दशम ग्रन्थ में लेखक का ध्यान युद्ध-वर्णन करते समय मात्र शस्त्रास्त्रों के चलाने, हुंकारें तथा गर्वोक्तियों पर ही नहीं गया, अपितु उसने विशेष यत्न से अपने शूरवीरों के व्यक्तित्व को भी उभारा है। मगर व्यक्तित्व का पक्ष अधिक लक्ष्य किया गया है जिससे उनका वीरत्व प्रकट होता है। मुख मंडल डील-डौल, भवों तथा मूछलियों के फरकने आदि व्यक्तित्व के बाह्य उपकरणों की उन्होंने उपेक्षा ही की है। वीर एक-दूसरे से भिड़ते हैं, अपना बल-पराक्रम दिखलाते और लक्ष्य की ओर सर-संधान करते हैं, इसी में उनका व्यक्तित्व निहित है।

उनके युद्ध-वर्णन की एक अन्य विशेषता युद्ध-वर्णन में गति और ध्वनि की प्रचुरता है। वे कहीं भी टीका-टिप्पणी के लिए रुकते नहीं, किसी वीर पुरुष का स्वतन्त्र प्रसंग नहीं लेते, एक-दो पंक्तियों में युद्ध का कारण या शंका-पक्ष बतलाकर क्रिया रूप में लड़ने, युद्ध कौशल दिखलाने और विभिन्न शस्त्रास्त्रों के चलाने पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।

वीर रस की अभिव्यक्ति:-

कृष्ण के इस कथन में कितनी सत्यता है, कितना आत्म-विश्वास है इससे उत्साह का संचार होता है जो वीर रस की सृष्टि करता है। शत्रु सेना को देखकर कृष्ण क्रोधित हो उठे और जरासंध की सेना पर धावा बोल दिया--

देखत ही अरि की पूतना हरि जू मन मो अति कोप भरे।
सुध वाह तहां रथ जाह परै धुज छ नी पति है नहिं नेकु डरे ।।
सित बानन सो गज बाज हते जोऊ साज जराइन साथ जरै ।।
मनो इन्द्र के बज्र लगे टुक कै धरनी गिरसिंग सुमेर परै।।१०५१।।[१६]

शत्रुसेना की वीरता का वर्णन :-

युद्धभूमि में चारों ओर से दोनों सेनाओं के योद्धा परस्पर भिड़ रहे हैं और एक दूसरे को युद्ध करने के लिए ललकारते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने

१६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६४ ।

केवल कृष्ण पक्ष के योद्धाओं की वीरता का ही चित्रण नहीं किया, बल्कि शत्रु पक्ष के योद्धाओं की वीरता का भी वर्णन किया है। नायक की वीरता को प्रदर्शित करने की दृष्टि से प्रतिनायक की वीरता का भी यथेष्ट वर्णन किया है।

कंस के मारे जाने पर उसकी पत्नी अपने पिता जरासंध के पास दुखित होकर जाती है। जरासंध सुनकर क्रोध से लाल पीला हो जाता है और प्रतिशोध की भावना से युद्ध के लिए तत्पर हो जाता है। क्रोध में उसकी आंखें लाल हो जाती हैं। युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लेता है--

` कोप के आंख सरोज तयी --।`[१७]

आगे वह अपने मन्त्रियों द्वारा दूसरे राजाओं को सन्देश भेज देता है---

देस देस परधान पठाए । नरपति सब देसन ते त्याए ।।
आइ नृपत को कीन जुहारू । दियो बहुत धन तिन उपहारू ।।[१८]

कृष्ण योद्धा के रूप में :-

कृष्ण युद्ध में एक वीर योद्धा की भांति शत्रु का संहार कर रहे हैं--

सउनत तरंगनी उठाय कोप बलबीर मार मार तीर रिप खंड किये रनमें ।
बाज गज मारे रथी, ब्रिथी करि डारे, कै ते पैदल बिदारे सिंह जैसे मृग बन में।।
जैसे सिव कोप कै जगत जीव मार पेले, तैसे हरि अरि यों संघारे आइ मन में ।।
एक मार डारे एक घाय क्षित पारे एक, त्रसे एक हारे जाके ताकत न तन में।।[१९]

१७- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३६४। १८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६२ ।
१९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३६५।

इसमें श्रीकृष्ण सिंह के समान शत्रु का संहार कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, रथ सब नष्ट हो रहे हैं। शत्रु भयभीत हो गया है। कृष्ण के विकराल रूप धारण किया है। वे शत्रु के खून के प्यासे हैं। उसका निश्चय ही नाश करना है। जरासंध ने भी अपनी चतुरंगिणी सेना युद्ध करने के लिए सजा ली। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना कमर कस कर तैयार है। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित है, देखिए--

यही सैना चतुरंग जरासंध नृप की बनी।
साज्यौ कवच निखंग धनख बाण लै रथ चढ्यौ।।[२०]

इस प्रकार अपार सेना लेकर युद्ध के मारू बाजे बजाते जरासंध अन्य राजाओं के साथ कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा।

कृष्ण को जब यह समाचार मिलता है तो वे भी अपने मन्त्रियों को बुला लेते हैं। उनमें भी वीर भाव जागृत हो जाता है। वे क्रोध में अपने वीरों को सम्बोधित करते हैं--

तउ जदुबीर कह्यौ उठि कै रिस बीच सभा अपने बल सो।
अब को बलवंड बडो हम मै चलि आगे ही जाय लरै दल सो।।
अपने बल धार संहार कै दानव दूर करै सभ भूतल सो ।।
बहु भूत पिसाचन काकनि डाकनि तोख करै पल मैं पल सो ।।[२१]

जरासंध की वीरता की धाक दूर-दूर तक जमी हुई थी। कृष्ण के सैनिक भी भयातुर हैं। उन्हें इस तरह भयभीत देखकर कृष्ण क्रोध से लाल हो जाते हैं और कहते हैं कि वे दोनों मार ही शत्रु के छक्के छुड़ा देंगे और उन्हें विश्वास है कि निश्चय ही शत्रु को पराजित करेंगे।

२०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६३ ।

२१- -वही- पृष्ठ ३६३ ।

किनहूं नहिं धीरजु बांध सक्यो लरबे ते डरे सब को मन भाज्यो ।।
यों हरिजू पुन बोलि उठियो गज को बधिकै जिम केहरी गाज्यो।
राज न चिन्त करो मन में हमहूं दोउ भ्रात सु जाइ लरैं गे ।।
बान कमान कृपान गदा गहि कै रण भीतर जुद्ध करैं गे।।
जो हम ऊपर कोप के आइ है ताहि के असम्र सिउ प्रान हरैं गे।।[२२]

उपर्युक्त पंक्तियों में गुरु गोबिन्दसिंह जी ने कायर जनता में वीरता, आत्म-विश्वास और साहस की भावना भरी और स्वयं इस भावना को अपनाया कि अगर कोई भी वीर आगे नहीं आता तो वे अकेले ही युद्ध करने को तत्पर हैं। वे स्वयं एक कुशल योद्धा और वीर सेनानायक थे। वे इस प्रकार उपदेश देकर अपने अनुयायियों को धर्म युद्ध के लिए प्रेरित करते थे।

कृष्ण अपनी सेना लेकर शत्रु सेना पर टूट पड़ते हैं। वे उत्साहित होकर युद्ध के लिए चल पड़ते हैं और शत्रु दल पर आक्रमण करते हैं। इन पंक्तियों में रौद्र, अमर्ष, उत्साह तथा साहस का सुन्दर परिपाक हुआ है--

बांध कृपाण सरासन लै चढ़ि स्पन्दन पै जदुवीर सिधारे ।।
-- -- -- -- -- --
देखत ही अरि की पतना हरि जू मन मो अति कोप भरे ।।
सुघवाय तहां रथु जाइ परै घुजगी पति ने नही नैऊ डरै ।।
बावन सो गज बाज हने जाऊ साज जरा इन साथ जरै ।।
मनो इन्द्र के बज्र लगे टूट के धरनी गिर सिंग सुमेर परे।।[२३]

कृष्ण ने अपने तीरों की बौछार से शत्रु के योद्धाओं को मार गिराया। हाथी, घोड़ों पर सवार शत्रु-सेना को नष्ट किया। उनके सिर धड़ से अलग कर दिये और कुछ वीरों के सिरों को फाड़ डाला। कृष्ण ने काल का रूप धारण कर लिया, निम्नलिखित पंक्तियों में युद्ध का कितना सजीव और भयावना वर्णन है---

---

२२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६४ ।
२३- -वही- पृष्ठ ३६५ ।

पान कृपान गही घनि स्याम बड़े रिप तौ बिन प्रान किए ।।
गज बाजन के असवार हजार मुरार संघार बिदार दिए ।।
अर एकन के सिर काट दए इक बीरन के दए फार हिए ।।
मनो काल सरुप कराल लख्यो हरि सत्र मजे इक मार लिए।।१७५०। [२४]

कृष्ण के वीर रूप का और वर्णन देखिए--

कान्ह कमान लिए कर मै रन मै जब केहरि जिउ मक्कारे ।।
को प्रगटियो मट ऐसो बली जग घोर घरे हरि सो रन पारे।।
अउर सो कउन तिहू पुर मैं बलि स्याम सिउ बैर को माऊ बिचारे ।।
जो हठ कै कोउ जुधु कोउ करै सु मरे पल मै जम लोक सिधारे ।।१७६३। [२५]

कृष्ण और जरासंध दोनों की सेनाएं युद्धभूमि में डटी हुई हैं। योद्धाओं का परस्पर लड़ना, प्रहार-प्रतिप्रहार, ललकार-प्रतिललकार, शस्त्रास्त्रों की आवाज़ आदि का उत्साहपूर्ण तथा सजीव चित्र अंकित किया है---

एक मार डारे एक घाय क्षित पारे, एक त्रसे एक हारे, जाके ताकत न तन मैं।।१०५४।

-- -- -- -- -

इत तै हरि की उमड़ी प्रतना उतते उमड़्यो नृप लै बल संगा ।
बान कमान कृपान लै पान भिरै कटिगे मटि अंग पतंगा ।।
पचि गिरे गजि बाज कहूं कहूं बीर गिरे तिनके कहूं अंगा ।।
ऐसे गए मिलि आपसि मैं दल जैसे मिले जमुना अरु गंगा ।। [२६]

युद्ध में अगणित नर-संहार हुआ। हाथों में बाण, कमान, कृपाण लेकर योद्धा आपस में भिड़ गये और कट कर गिरने लगे। दोनों दलों का बड़ा ही स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण बन पड़ा है।

२४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७६ ।
२५- -वही- पृष्ठ ४७७ ।
२६- -वही- पृष्ठ ३६७ ।

द्वन्द्व युद्ध :-

द्वन्द्व युद्ध के अनेकानेक उदाहरण इस काव्य में मिलते हैं। कवि की युद्ध-वर्णन की शैली इस प्रकार की है कि वह दो योद्धाओं को आमने-सामने खड़ा करके उनमें युद्ध का श्रीगणेश करवा देता है। वे कार्यरत रहते, परस्पर शास्त्रास्त्र चलाते तथा वाक-वाण एवं वाण-वर्षा करते अपने-अपने शौर्य और वीरता का प्रदर्शन करते हैं। बलराम और जरासंध का युद्ध बहुत ही सुन्दर, सजीव एवं स्फूर्तिदायक है---

आवत देख हलायुध को सु भयो तब ही नृप कोपमहं है ।
जुद्ध ही करु समुहाय भयो निज पान कमान सु तान लहं है।।
त्याइओ दुतो चपला सी गदा सर एक हो सिउ सोऊ काट दहं है।१८५१।।
सत्र के मारन को बलभद्रहि मानहु आस दुटूक महं है ।
काट गदा जब ऐसे दहं तब ही बल ढाल कृपान संभारी ।
धाय चल्यो अरि मारनि कारनि संक कछू चित मै न बिचारी।।
भूप निहार के आवत को गरज्यो बरखा करि बाननि मारी ।।
ढाल दहं सतधा करिके करकी करवार त्रिधा करि डारी ।।१८५२।।

ढाल कटी तरवार गहं कटि ऐसे हलायुध स्याम निहारयो ।
मारत है बल को अबही नृप यों अपने मन माझि विचारयो ।।
चक्र संभार मुरार तबै कर जुद्ध के हेत चल्यो बलधारयो ।।
रे नृप तू भिर मो संग आइकै राम मनै उस स्याम पुकारयो।।१८५३।।[२७]

आगे देखिए किस प्रकार ने धनुष को संभाल लिया है और अपने तीर से शत्रु सेना को खण्ड-खण्ड कर दिया है। कृष्णावतार के युद्ध-खंड में भयंकर युद्ध वर्णन भरा पड़ाहै। एक एक शब्द वीर रस से संपुष्ट है जो प्रत्येक पुरुष के हृदय में वीर भाव को जागृत करता है। यही हमारे कवि का लक्ष्य था जिसको पूर्ण करने के लिए उन्होंने इस रचना को सृजना की।

२७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८६ ।

कृष्ण शत्रु का दमन करने के लिए पूर्ण रूपेण तैयार हैं--

आवत भयो नृप स्याम के सामुहे तउ धनुश्री बृज नाथ संभारयो ।।
धावतभयो इतते हरि सामुहे त्रास कछु चित्त मैं न बिचारयो ।।
कान प्रमान लउ तान कमान सु बान के सत्र के छत्र पै मारयो ।।
खंड हुवै खंड गिरयो क्षित मै मनो चन्द को राहु ने मार बिदारयो।।१८५५।।

कृष्ण के तीर लगने से राजा भी भी क्रोध में आ गया--

छत्र कटिओ नृप को जब ही, तब ही मन भूपत कोप भयो है ।
स्याम की ओर कुदृिसटि चिवै करि उग्र सरासन हाथ लयो है।
जोर सो खैंचन लाग्यो तहाँ नहि ऐंच सकै कर कंप भयो है ।।
लै धनु बान मुरार तबै तिह चाँप चटाक दै काटि दयो है।।१८५६।।

बृजराज सरासन काट दयो तब भूपत कोप कीयो मन मै ।।
करवार संभार महाबल धार हकार परयो रिप के गन मै ।।
तहा ढाल सो ढाल कृपान-कृपान सो यों अटकै खटके रन मै।
मनो ज्वाल दवानल की लपटै चटकै पटकै तृन जिउ बन मैं ।।१८५७।।[२८]

जरासंध अपने योद्धाओं को युद्ध के लिए प्रेरित करता है और कहता है कि युद्ध में मर जाने से ही तुम वीरगति प्राप्त कर सकोगे। इसलिए निडर होकर शत्रु का सामना करो और जगत में यश प्राप्त करो। कृष्ण ने तीरों की वर्षा ऐसे की कि युद्धभूमि रक्त रंजित हो गई। चारों ओर नरमुंड, गज और घोड़ों के भाग कटे हुए दिखाई देते हैं--

बहुरो घनिस्याम धन्नसुर के बरखयो सर बूंदन जिउ मंगवा ।।
चतरंग चम हन प्रउन बह्यो सु महओ रन हंगर के रंगवा ।।
कहूं मुंड फरै रथ पुंज ढरे गज सुंड परे कहूं हैं तंगवा ।।
जदुबीर जु कोप के तीर हने कहूं बीर गिरे सु कहूं अंगवा।।[२९]

२८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८९-९० ।

२९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३९५ ।

प्रतिनायक की वीरता पर भी हमारे कवि का विशेष ध्यान गया है। कृष्ण-युद्ध वर्णन में दशमग्रन्थ के लेखक का ध्यान शूरवीरों के व्यक्तित्व पर भी गया है। जैसे युद्ध प्रसंग में उनकी दृष्टि युद्ध के अत्यन्त महत्पूर्ण भाग-भिड़ंत पर रही है। वैसे ही शूरवीरों का व्यक्तित्व अंकित करते समय उनका ध्यान शूरवीरों की मुखाकृति, डील-डौल पर न रहकर उनके मानस पर ही रही है। इस सम्बन्ध में दूसरी ज्ञातव्य बात यह भी है कि उन्होंने शूरवीरों का वर्णन स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष रूप में नहीं किया। उन्होंने शौर्य कर्म में व्यस्त शूरवीरों के ही चित्र उपस्थित किये हैं। संक्षेप में शूर-वर्णन युद्ध-वर्णन का ही एक अंग है।[30] स्वयं कृष्ण अपने विरोध पक्ष के एक वीर घन सिंह की वीरता और साहस की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करते हैं--

देखत ही भट ठाढे कहा हम जानत है तुम पउरख हारयौ ।
स्री घनसिंह के बान छुटे समहूं रन मंडल ते पग टारयौ ।
सिंह के अग्र जैसे अजागत रेसे भजे नहि ससत्र संभारयौ ।
कायर हुइ तिह पेख डरे नहि आप मरे उन कउ नही मारयौ।।[31]

अपने वीरों को उत्साहित करने के लिए कृष्ण का यह कथन अनुभावों को व्यंजित करता है। घनसिंह के उत्साह की प्रशंसा करना शुद्ध वीर रस की अभिव्यक्ति है---

कोप भरे अस पान धरे घनसिंह अरे गजराज संघारे ।।
अउर जिते जग पुंज हुते डर मान भजै अति ही घुबवारे ।।
ता छवि की उपमा कवि स्याम कहै मन मै सु बिचार उचारे ।।
मानहु इन्द्र के आगम ते उर भूधर के घर पंख पधारे ।।[32]

~~सर्वोक्ति में उक्ति-प्रयुक्ति~~

३०- डा० हरिभजनसिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २३६ ।
३१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४०३ ।
३२- -वही- पृष्ठ ४०३ ।

गर्वोक्ति में उक्ति-प्रत्युक्ति का उदाहरण देखिए। घनसिंह वीरोचित क्रोध धारण करके कृष्ण को ललकारता है---

टेर कह्यो घनसिंह बली रन त्याग सुनो हरि भाज न जुइये ।।
ताते संभार कै आनि भिरो निज लोकन को बिरथा न कटइये ।
हे बलदेव सरासन लै हम सो समुहाइ कै जुध करइये ।
संगर के सभ अउर कछू नहीं याते दुहू जग में जसु पइये ।।[33]

घनसिंह जैसे प्रतिनायक के मुख से भी ऐसे शब्द निकलवाना कि `संगर` अर्थात् युद्ध के समान और कुछ भी नहीं है। इसमें मरने वाले व्यक्ति दोनों ही जगत में यश-लाभ करते हैं-- हमारे कवि की ध्येय-निष्ठा, युग-सापेक्षता तथा वीर रसात्मकता प्रकट करने के लिए पर्याप्त है।

घनसिंह की यह ललकार कृष्ण की क्रोधाग्नि को और भी प्रज्वलित कर देती है। वे क्रोधित होकर उस पर आक्रमण कर देते हैं---

यौं सुनि कै बतिआ अरि की तरकी मन में अति कोप भरयो है ।।
बान कमान कृपान गदा गहि कै जदुवीर हूं धाय पर्यो है।।[34]

युद्ध-वर्णन में निष्पक्षता :-

कृष्णावतार में सबसे भयंकर युद्ध खड़गसिंह का है। खड़गसिंह की वीरता की धाक कृष्ण-पक्ष के सभी वीर मानते हैं। युद्ध की भयंकरता को फाग खेलने के रंग-बिरंगे पर्व में बदल कर शान्त करने का कवि का प्रयत्न श्लाघ्य है। खड़गसिंह रौद्र रस में पगा हाथ में खड़ग लेकर युद्धभूमि में फाग खेलने चल पड़ता है---

क: खड़गसिंह कर खडग लै रुद्र रसहि अनुराग ।
यौं डोलत रन निडर हुइ मानो खेलत फाग।।[35]

३३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४०३ । ३४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४०४ ।
३५- -वही- पृष्ठ ४३५ ।

स: लाल गुलाल भरे पटि खे लत चाचर जैसे ।।[३६]

खड़गसिंह को अपनी वीरता पर पूर्ण गर्व है और उसका दर्प, मद तथा युद्धोन्माद किसी को कुछ नहीं मानता, किसी को नहीं पहचानता, उसे मात्र अपने बल-पौरुष , शस्त्र-विद्या, क्षात्र-वृत्ति पर ही अभिमान है। शिव, ब्रह्मा, गन्धर्व आदि कोई भी देवता इस वीर के सामने नहीं ठहर सकता। शिव तो उसके प्रहारों से मूर्छित हो जाते हैं। खड़गसिंह शिव से कहता है--

तंदुल मांगन है तुय कारज मैं न डरो तुहि चाँप चढ़ाई ।
जूझवो काम है क्षत्रण को कछु जोगन को नहीं काम लराई।।[३७]

जोगी बेचारे युद्ध क्या करेंगे, यह तो क्षात्र-धर्म को ही शोभा देता है। खड़गसिंह शिव परवार करते हैं और वीर रस की अभिव्यक्ति होती है। शिव खड़गसिंह से हार मान लेते हैं। खड़गसिंह इतनाशक्तिशाली और वीर योद्धा है कि एक बार तो उसने कृष्ण को भी बालों सेपकड़ कर पछाड़ दिया--

जा प्रभु कऊ नित ब्रह्म सत्रीपति श्री सनकादिक हू जपु कीनो ।
सुर ससि सुर नारद सारद ताही के ध्यान बिखै मनु दीनो ।।
खोजत हैं जिह सिध महा मुन व्यास परासुर भेद न चीनो ।।
सो खडगेस अयोधन मै कर मोहित केसन ते गहिलीनो ।।[३८]

यही नहीं वह खड़गसिंह दयावीर के रूप में कृष्ण को प्राण-दान भी करता है। इससे कृष्ण हताश हो जाते हैं और -` लज्जत भयौ बिसर बल गयो ।` ब्रह्मा उन्हें आश्वासन देते हैं। इसके पश्चात् कृष्ण सब देवताओं को एकत्र होने का आवाहन करते हैं, मगर वे सभी इस वीर सुभट के समक्ष न ठहर सके। युद्ध में उसके हाथों इन देवताओं की क्या दुर्गति होती है, यह कवि के शब्दों में ही देखिए--

---

३६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४६३। ३७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४५१ ।

३८- -वही- पृष्ठ ४५१-५२ ।

गिआरह रुद्रन को सरबाइस द्वादस भानन चऊ बिसि मारे ।।
इन्द्र सहंस्र खड़ा ननको ष्ट पाचसि कान्ह को कोप प्रहारे ।।
सोम कों साठ गनेस को सचर आठ बसून को चऊसठ डारे ।।
सात कुबेर को नऊ नम राजहि एक हो एक सौ अउर संघारे।।१५४७।।

बानन बेधि जलाधिपि कऊ नल कूबर अऊ जमके उर मारयो ।।
अऊर कहा लगि स्याम गनै जुहुते रन मै समहून प्रहारयो ।।
संकत मान मए समही किनहूं नहीं भूप को ओर निहारयो ।।
मानो जुगंत के अंत समै प्रगटिओ कलकाल तिनोसु बिचारयो।।१५४८।।[३९]

यहाँ सब देव-देवताओं को खड़गेश के समक्ष विजित होते, अपमानित और प्रताड़ित होते दिखलाने में कवि का उद्देश्य दोहरा हो सकता है। पहला तो यह कि इससे प्रतिनायक के युद्ध-कौशल, बल-पराक्रम तथा शौर्य का यश-लाभ हुआ है, जिससे कवि की निष्पक्षता भी प्रकट होती है। एक अन्य उद्देश्य यह भी हो सकता है कि इस कथा की कल्पना द्वारा वे तात्कालीन भारतीय जन-जीवन के नेता और अगुणी लोगों को यह विदित करना चाहते थे कि सत्य मार्ग के पथिक का मग कंटकाकीर्ण होता है, विघ्न-बाधाएं भी होती हैं, आरम्भ में उनकी हार, अपमान और लज्जा भी हो सकती है, मगर अन्ततः जीत सत्य की ही होती है। वे गणना-सिद्धान्त द्वारा भी कुछ संकेत अवश्य करते दीख पड़ते हैं।

खड़गसिंह बहुत बली है। उसे किसी न किसी प्रकार मारना है। इसके लिए ब्रहमा जी अप्सराओं का नृत्य करवाने की मन्त्रणा देते हैं। यहाँ एक और बात द्रष्टव्य है कि हमारे कवि ने युद्ध में साम, दाम, दण्ड-भेद आदि की नीति के अनुसारशत्रु पर विजय प्राप्तकरने हेतु सभी प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करने का सुझाव दिया है। देवताओं के पिट जाने के बाद श्रीकृष्णऔर ब्रह्मा जी खड़गसिंह से वह मुकुट मांग लाते हैं जिसके वरदान से खड़गसिंह को कोई मार नहीं सकता था। नाच गाने में बहला कर शत्रु का वध किया जाना भी

३९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४५३ ।

यह सुझाव देता है और कृष्ण तब अपने धनुष बाण से उसका सिर काट देते हैं परन्तु शीश कट जाने के पश्चात् भी वह अपने धड़ तथा शीश से युद्ध करता है। खड़गसिंह की वीरता इसी में है कि शीशविहीन हो जाने पर भी अपने शत्रु का प्रतिकार करता है, कटा हुआ सिर कृष्ण की छाती में जा लगता है--

जदपि सीस कट्यो न हट्यो गहि केसनि तै हरि ओर चल्यो ।
मानहूं प्रान चल्यो दिव आनन काज बिदा बृजराज पै आयो ।
सो सिर लाग गयो हरि के उर मूरछ ह्वै पगु न ठहरायो ।।
देखहु पउरख भूप के मुंड को स्पंदन से प्रभु भूम गिरायो ।।(१७०१)[४०]

राजा खड़गसिंह के कटे हुए शीश का पौरुष देखिए कि वह कृष्ण की छाती में जा टकराता है और उन्हें रथ से विरथ कर देता है। यहां आलम्बन और उद्दीपन दोनों के विभावों, सिर का फेंकना अनुभाव भय और आवेग आदि व्यभिचारियों के संयोग से वीर रस की सुन्दर सृष्टि हुई है।

युद्ध के उल्लास में खड़गसिंह का कबन्ध (धड़) भी युद्ध करता रहा। उस भयानक रुंड को देखकर देवता भी भयभीत होकर रणभूमि छोड़कर भाग गए। वीरता को इससे बढ़कर संचार क्या होगा कि वीर के अंग-प्रत्यंग भी युद्ध में रत हैं---

मुंड बिना तब रुंड सु भूपति को चित में अति कोप बढ़ायो ।
द्वादस भान जुठाढ़े हुते कवि स्याम कहै तिह ऊपर धायो ।।
भाज गये कर त्रास सोउ सिव ठाढै रह्यो तिर ऊपरि आयो।
सो नृप वीर महा रनधीर चटाक चपेट दै भूमि गिरायो ।।१७०४।।[४१]

यहां पर भय संचारी भाव का संचरण करता है। जब अप्सराएं खड़गसिंह को स्वर्ग ले जाती हैं तब भी वह विमान से कूद कर युद्ध करने लगता है। वास्तव में खड़गसिंह महायोद्धा है। उसकी वीरता की इतनी धाक है कि कृष्ण पक्ष की सेना के बड़े-बड़े योद्धा रणभूमि से भाग खड़े हुए--

---

४०, ४१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७१ ।

श्री जदुबीर ते आदिक बीर गये भजिकै न कोऊ ठहरान्यो ।।
आहव भूमि मै भूपति को सभ सूरन मानहु काल पछान्यो ।
भूप कमान ते बान चलै मनो अंति प्रलै घन सिऊ बरखान्यो ।।
इऊ लखि भाजि गये सिगरे किनहूं नृप के संग जुधु न ठान्यो।। १७०८।।[४२]

कृष्ण तथा उसके सारे योद्धा भूमि से भाग खड़े हुए। खड़गसिंह ने शीश कटने के बाद उनके लिए काल का रूप धारण कर लिया। खड़गसिंह के बाण इस प्रकार चल रहे थे मानो प्रलय के बादल बरस रहे हों। हथियारों के बिना ही वह कबंध रणभूमि में दौड़-दौड़ कर हाथियों की सूंडों को हाथों में पकड़कर झकझोरता फिरता है, घोड़ों के गदनें पकड़कर मरोड़ रहा है।

इस वीर का प्रत्युत्तउ देने की क्षमता केवल श्रीकृष्ण में हो है। सुदर्शन चक्र और गदा द्वारा वे युद्ध करते हैं। कृष्ण के युद्ध-कौशल का सजीव चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखने को मिलता है--

काटत एकन के सिर चक्र गदा गहि दूजन के तन झारे ।
तीजन नैन दिखाय गिरावत चऊथन चौंप चपेटन मारे ।।
चीर दसे अर के उर श्रीहरि सूरन के अंग संग प्रहारे । ।।
धीर तहां भट कउन धरै जदुबीर जबै तिह ओर सिधारे ।।१७५६।।[४३]

द्वन्द्व युद्ध :-

जरासंध के साथ अन्तिम युद्ध का कारण दिल्लीपति पाण्डवों द्वारा राजसूय यज्ञ करना है। भीम पूर्व दिशा को, अर्जुन उत्तर दिशा को, सहदेव दक्षिण दिशा को, नकुल पश्चिम दिशा को जीतकर श्रीकृष्ण के चरणों में शीश झुका देते हैं। तब--` ऐस कह्यो सभ जीत लए हम सिंघ जरा नहीं जीतन पायो।`[४४]

४२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७१-७२ ।
४३- -वही- पृष्ठ ४८१ ।
४४- -वही- पृष्ठ ५४७ ।

इस पर श्रीकृष्ण पाण्डव बन्धुओं सहित जरासंध के दरबार में जाते हैं। श्रीकृष्ण ने उठकर जरासंध को कहा तू हरि जू से तेईस बार हारा है और हरि को तुमने एक ही बार भगाया है। तो भी तुम वीर पुरुष कहलाते हो। अगर तुम वास्तव में वीर हो तो हमारे इस बालक के साथ युद्ध करो।[४५]

बालक वेश में आया भीम जरासंध से द्वन्द्व युद्ध करता है। दोनों हाथों में गदा धारण करके दोनों वीर भिड़ जाते हैं। इस द्वन्द्व युद्ध की छटा देखिए---

भीम गदा गहि भूप पै मारत भूप गदा गहि भीम पै मारी ।।
रोस भरे बलवंत दाऊ लरै कानन मै जन केहरि मारी ।।
जुद्ध करै न मुरै तिह ठऊर ते बांटत है तिह ठां जनयारी ।।
यौ उपजी उपमा चतुरे जन खेलत है फुलबा सो खिलारी ।।२३२६।।

दिवस सताईस जुधु भयो जब भूप जित्यो बलु भीमहि हारयो ।
श्री ब्रजनाथ दयो तब ही बलु जुद्ध को क्रोध को और पचारयो।।
ले तिनका इक हाथहि भीतर चीर दयो इह भेद निहारयो ।।
तैसे ही भीम ने चीर दयो नृप यो मुख ते कबि स्याम उचार्यो।।[४६]

जरासंध को अपने क्षत्र-धर्म पर अभिमान है+ औरवह कृष्ण को ग्वाल कहकर उनका उपहास करता है। वह कहता है कि वह उसके साथ क्या युद्ध करेगा ? वह गर्वोक्ति सुनकर कृष्ण ने भी बड़े विश वास के साथउत्तर दिया--

क्षत्री कहावत आपनको भजिहो तबही नब युद्ध मचैहो ।।
धीर तबै लखिहो तुमको जब मीर परै इक तीर चलैहो।।
मूरछ ह्वै अबही छित मै गिरहो नहि सपंदन में ठहरैहो।।
एकह बान लगे हमरो नभ मंडल पै अब ही उडजैहो ।।[४७]

४५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५४८ ।
४६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५४६ । ४७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८६ ।

कृष्ण का वीर रूप प्रदर्शित करने वाले स्थलों की कृष्णावतार में कमी नहीं है। गुरु गोबिन्दसिंह जी को कृष्ण का यह रूप अत्यन्त प्रिय था।

रणभूमि में कृष्ण की वीरता का एक दृश्य देखिए। कृष्ण के बाणों के आगे कोई भी जीवित नहीं बच सका--

घेरि लीओ हरि कऊ जब ही तब श्री जदुनाथ सरासन लीनो ।।
दुजुन सेमे बिखेधसि कै छिन मै बिन प्रान घनो दलु कीनो ।।
लोथ पै लोथ गई परिकै इह भाँति करयो अति जुध प्रबीनो ।।
जो कोऊ सामुहे आय अरिओ अरि सो गृह जीवत जान दीनो।।[४८]

रणभूमि की बीभत्सता :-

कवि रणभूमि के भयानक दृश्यों के चित्रण में अद्वितीय है। इस में कोई वीर घायल हुआ पड़ाहै तो किसी के शरीर को गिद्ध नोच रहे हैं। किसी के शरीर से रक्त बह रहा है। तलवार, बरछी, गदा की आवाज़ चारों ओर से आ रही है। रणभूमि का दृश्य इतना भयंकर है कि भूत-बैताल भी भाग गये हैं। युद्ध की देवी भैरवि ने अपना खप्पर उलट दिया है, वह भी भयभीत हो गयी है। शिव, ब्रह्मा आदि भी डर गये हैं।

भची मार धमकार तरवार, बरछी गदा, छुरी जमधरन अर दल संघारे ।।
बढ़ी प्रुऊन सलता बहे जात गज बाज रथ मुंड करि सुंड भट तुंड निआरे।।
त्रसे भूत बैताल भैरवि भगी, जुग्गनी पैर खप्पर उलट उर सुधारे ।।
भवे राम संग्राम अति तुमल दारन भयो मोन तजि सिव ब्रह्म जीऊ डरारे।।[४९]

युद्धभूमि में सर्वत्र घायल शरीर ही दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वत्र अंग-भंग हुए पड़े हैं, कहीं हाथियों की सूंड कटी पड़ी है तो कहीं घोड़े कटे पड़े हैं। युद्धिभूमि का भयानक दृश्य देखिए--

---

४८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८२ ।

४९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८३ ।

एक कबंध बिना हथियार न राम कहै रन भूम में दउरै ।
सुंडुन ते गजराजन को गहिके करि कै बल सो फकफारै ।।
भूम गिरे मृत अस्वन की दुहुं हाथन सो गहि ग्रीव मरोरै ।
स्यदेव कै अस्वारन के सिर एक चपेट ही के संग तोरै ।।

एक मरे भट प्रोनंत सो भभकारत धाय फिरै रन डोलत ।
एक परे गिर कै धरनी तिनके तन जंबक गीध ढोलत ।।
एक एकन के मुखि ओठन आंखन काग सु चोचन सिउ टकटोलत ।
एकन की उर आंतन को कढ जोगन हाथन सिउ फकफोलत ।।[५०]

यहाँ वीर-रस के साथ ही बीभत्स, रौद्र और भयानक रस का उद्रेक भी होता है। इन युद्ध वर्णनों में कवि ने उभय पक्षों की विजय-पराजय सुन्दर
को वर्णन किया है। जहाँ शत्रु सेना भयभीत होकर भागती है, वहाँ कृष्ण के मूर्छित होने से उनकी सेना भी भाग खड़ी होती है। सैनिकों का वर्णन बड़ी ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन किया गया है।

`कृष्णावतार` के युद्ध-प्रबन्ध में वीरों की चरित्रगत विशेषताओं का पूर्ण-रूपेण वर्णन उपलब्ध होता है। कृष्ण और बलराम के साहस, उत्साह आत्म-विश्वास, निर्भयता और शूरवीरता, धैर्य आदि गुणों का अत्यन्त म मार्मिक चित्रण किया गया है।

शत्रु सेना के वीरों के साहस, रणोल्लास, युद्ध-कुशलता, सेना-संचालन, उत्साह, साहस, निडरता का भी यथोचित परिचय मिलता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं-- अमिटेस, अमितेस, खड्गेस, जरासंध, जगसिंह आदि। खड़गसिंह की वीरता को देखकर तो ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, गन्धर्व भी भयभीत हो जाते हैं। अर्जुन, भीम आदि वीर पाण्डव भी उसके सामने टिक नहीं सकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि `कृष्णावतार का युद्ध वर्णन सर्वत: वीर रस से ओतप्रोत है।

५०- कृ दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७६ ।

गर्वोक्तियाँ :-

योद्धाओं के वीर चरित्र को प्रकट करने के लिए उनके वीर कर्मों यथा शौर्य, धैर्य, साहस, उत्साह, निर्भीकता आदि का चित्रण किया गया है। उनके सुदृढ़ मनोबल, अतुल आत्म-विश्वास, अदम्य साहस आदि की अभिव्यक्ति के लिए उत्साहपूर्ण उक्तियों का भी वर्णन किया है। यहाँ केवल अचलेस, अमितेस, खड्गेस, जरासंध आदि की गर्वोक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं--

बलराम:- कोप हली जदुवीर ही सो इह भ्रांति कह्यो कहो जाइ संघारो।
जऊ सिव आइ सहायी करै सिव को रन मै तिह सँग प्रहारो ।।
साच कहो प्रभु जू तुम सो रनही अमितेस नहीं बलहारो ।
पउन सरूप सहाइ करो तुम पावक ह्वै रिप करन न जारो।। [५१]

जरासंध :- जरासिंध ए वचन सुनि रिसि करि बोल्यो बैन ।।
सकल सुभट हरि कटिक के पठऊ जम के एन ।। [५२]

खड्गेस :- पसचम सूर चढै कबहू अरु गंग बही उलटी जोअ आवै ।
जेठ के मास तुखार परै बन अउर बंस समीर बरावै ।।
लोक हलै धूअ को जल को थल हुइ थल को कबहूं जलु जावै ।।
कंचन के नगु जक्खन धारि उडै खड्गेस न पीठ दिखावै ।। [५३]

अमितेस अचलेस :-

कोप कै बोलत यों हरि को रनसिंह ते आनि तै बीर खपाए।
तौ ते कहा गजसिंह हन्यो अणगेस हू ते कुल साथ गिराए ।।
जानत हौं अमितेस बली घनसिंह संहार की बीर कहाए ।।
सो तब लउ गज गाजत है जब लउ बनमै मृग राज न आए ।। [५४]

५१- दशमग्रन्थ , पृष्ठ ४८५ । ५२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४८६ ।
५३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४६१ । ५४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४११ ।

गर्वोक्तियों द्वारा युद्ध में गति आती है और विपक्षी योद्धा उत्तेजित होकर युद्ध करने में रत हो जाते हैं। इस निष्पत्ति में इनकी विशेष महत्ता है।

कहीं-कहीं वीरों के प्रणों और प्रतिज्ञाओं का भी उल्लेख है, जिससे दृढ़ वीर चरित्र की झलक मिलती है, योद्धाओं का चित्रण सजीव बन पड़ता है।

कृष्णावतार में ' बकासुर दैत वध ' प्रसंग के अन्तर्गत संघर्ष पदा का एक अन्य बहुत ही सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है। यहाँ बकासुर मारा जा चुका है। कृष्ण अपने बाल-सखाओं के संग ब्रज मण्डल में अन्यान्य प्रकार से अपनी लीला को निदर्शन करते रंग-उल्लास में निमग्न हैं। यहाँ पर कंस को चिन्ता प्रकट होती है। वह अपने अन्त्रियों के साथ अन्तरीव मन्त्रणायों में सुव्यस्त है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए वह उपाय सोचता और साधन जुटाता है। वह सन्देश भेजकर मन्त्री गण को अपने मन्त्रणा हेतु बुलाता है तथा चिन्ता व्यक्त करता है कि अब किस योद्धा को युद्ध क्षेत्र में भेजा जाए, जो इस अपमान का प्रतिकार कर सके--

बैठ विचार करयो नृप मन्त्रनि दैत अघासुर को कहु जावै ।।
मारग रोक रहै तिनको घर पन्नग रूप महा सुख बावै ।।
आय परै हरिजी जब ही तब ही सब ग्वार सनै चब जावै ।।
आय है खाय तिनै सुनि कंस कि नातर आपनो जीऊ गवावै ।।[५५]

विचार किया गया कि अघासुर नाक के दैत को प्रस्थान करने को कहा जाए, वह साँप का रूप धारण करके सभी ग्वाल ग्वालिनों को चबा जाये। उन्होंने यह भी मन्त्रणा दी कि हे कंस ! वह अघासुर उनको खा कर ही वापिस आयेगा, नहीं तो उसे अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।

५५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २७४ ।

आगे घोर संघर्ष होता है। अघासुर अपनी पूर्व योजना के अनुसार मार्ग में जा बैठता है। जब ब्रज बालक हंसते-खेलते वहां आते हैं तो वह सांप उन्हें निगल जाता है। कुछ बालक भाग कर यह समाचार श्रीकृष्ण को देते हैं और श्याम स्वयं वहां आ धमकते हैं। हरि जी ने अपनी देह को इस कदर बढ़ाया कि उस राक्षस के मुंह को वहीं से रोक लिया। वे पूरे बल के साथ उस राक्षस के मुंह को सभी द्वार रोक लेते हैं, राक्षस का सांस फूल जाता है। कान्ह ने उसके मुंह के जबड़ों को इस तरह से फाड़ डाला कि उसके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं। यहां पर बीभत्स एवं भयानक रस का मिश्रित प्रभाव वीर पुरुषों के लिए अत्यन्त आनन्द का विषय बन जाता है। उस राक्षस की मांस-पेशियां ऐसे बिखर जाती हैं जैसे किसी सौदागर का घी का मटका बिखर जाता है। आंतों के बिखरने को घी का मटका बिखर जाने से तुलना देना ही सुझाता है कि कवि मृत्यु को एक क्रीड़ा से अधिक कुछ नहीं समझता। वास्तव में हमारा कवि जहां भी युद्ध की विभीषिका और मृत्यु का दृश्य उपस्थित करता है तो वह घी जैसे सुखद रूपक को ही चुनता है--

देह बढाय बडो हरि जी मुख रोक लयो उह राघस ही को ।।
रोक लये सभ ही करि कै बल सासि बढ़यो तब ही उह जी हो ।।
कान्ह बिदार दयो तिह को सिर प्रान भयो बिन भ्रात बकी को ।।
गूद परयो तिह को इम जिऊ सबदागर को टुट गयो मट घी को।।[५६]

चण्डी चरित्र (उक्ति विलास) में संघर्ष पदा :-

दशमग्रन्थ के युद्ध-वर्णन में शंका पदा को मात्र एकाध पद या पंक्ति में प्रस्तुत करके हमारे कवि सहसा संघर्ष पदा पर आ जाते हैं। संघर्ष में रत सेनाओं का युद्ध के लिए प्रस्थान, युद्ध की तैयारियां, वीरों की गर्वोक्तियां,

---

५६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २७४ ।

शस्त्रास्त्रों की फंकार, हाथी, घोड़ों, रथों की लड़ाई, युद्ध के बाजे-गाजे, बिगल तथा शंख-नाद आदि में कवि को विशेष रुचि है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि युद्ध का संघर्ष का कारण तो युद्ध-वर्णन प्रारम्भ करने का एक बहाना मात्र होता है, वास्तव में तो उन्हें युद्ध-वर्णन, युद्ध का तुमुल नाद, चीत्कार , हुंकार तथा शस्त्रास्त्र की गणना आदि ही अभिप्रेत है।

युद्ध-वर्णन में भी वीरता के साथ भयानक, रौद्र तथा बीभत्स आदि रसों का समावेश इस दक्षता से किया गया है कि ये चारों रस आरोह-अवरोह द्वारा प्राय: एक ही भाव-जगत में प्रवेश कर गए प्रतीत होते हैं। चण्डी-चरित्र में भी युद्ध की विभीषिका है एवं शस्त्रों का आह्लादकारी वर्णन है। दशमग्रन्थ के कर्त्ता की प्रतिबद्धता सत्य-पक्ष, देव पक्ष से निश्चित ही है, मगर प्रतिबद्धता के कारण वे मदांध नहीं हुए तथा न ही विशेष पूर्वाग्रहों को लेकर चलता है। हमारा कवि युद्ध की ज्वाला को द्रुत से द्रुततर करने में नहीं, अपितु द्रुतगति से इसे शिखर पर ले जाने में भी सिद्धहस्त है। उन्होंने अपने प्रतिनायक से भी पूर्ण न्याय किया है, उसकी वीरता का समुचित आदर तथा यशगान भी किया है और उसके वीरत्व को भी स्वीकार किया है। इसमें उनके नायक का भी तो गौरव निहित है।

महिषासुर राक्षस ने देवताओं को युद्ध में परास्त कर दिया। गुरु-कवि केवल नायक की वीरता का ही वर्णन नहीं करते बल्कि प्रतिपक्ष के वीर योद्धाओं का भी सुन्दर वर्णन करते हैं। देखिए महिषासुर किस प्रकार सब देवताओं को मृत्यु के घाट उतार देता है--

जुद्ध करियौ महिखासुर दानव मारि सभै सुर सैन गिराइओ।।
कै कैं टुटूक दए अर खेत महां बरबंड महारन पाइओ ।।
स्रउण तरंग सनिउ निसरिउ बसुहा कबि को मन मैं इहि आइओ।
मारि के छत्रनि कुंड कै छेत्र मै मानहु पैठि कै रामु जू न्हाइओ।।

लै महासुर अस्त्र सु सस्त्र सभै कलवत्र जिउ चीर कै डारे ।
लुत्थ पै लुत्थ रही गुत्थ जुत्थ गिरे गिर से रथ सेघव मारे।।
गूद सने सित लोहू में लाल कराल परे रन मै गजकारे ।।
जिऊ दरजी जम मृत के सीत मै बागे अनेक कता करि डारे ।।१५।।[५७]

देवता परास्त होकर ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी के मुख से एक महान तेज निकला, जिसने दुर्गा का रूप धारण कर लिया और दुर्गा राक्षसों के वध को तत्पर हो गई--

दैतन के बध को जबै चण्डी कीओ प्रकास ।
सिंघ संख अऊ अस्त्र सम सस्त्र आइगे पास।।२४।।[५८]

राक्षस भी परमवीर थे। उन्होंने भी वीरता से देवी का स सामना किया। देखिए दोनों पक्षों से किस प्रकार युद्ध होता है। श त्रु सेना के भयंकर युद्ध से देवी मन का वीरत्व जागृत हो जाता है। दुर्गा और भी उत्साहित होकर युद्ध में जुट जाती है, यहां वीर रस का पूर्ण उद्रेक होता है। दुर्गा शत्रु सेना पर अगणित बल से आक्रमण करती है।

बीर बली सिरदार दैहंत सु क्रोध कै म्यान ते खगु निकरियो ।
एक दहओ तन चंड प्रचंड कै दूसर केहरि के सिर फारियो ।।
चंड संभार तबै बल धारि लहओ गहि नारि धरा पर मारिओ ।।
जिऊ धुबोआ सरता तट जाए कै लै पट को पट साथ पछारिओ ।।३४।।[५९]

यहां उभय पक्ष के योद्धाओं का बल पराक्रम, युद्ध की भीषणता रण-बांकुरे वीरों की हुंकारों के साथ ही युद्ध के रौद्र तथा भयानक रूप के उद्घाटन में गुरु कवि को विशेष उपलब्धि हुई है। यहां महिषासुर की सेना

५७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ७५ ।
५८- दश म ग्रन्थ, पृष्ठ ७६ ।
५९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७७ ।

के सर्वनाश और रणचण्डी के बल-पराक्रम का वर्णन किस वीर हृदय के मन में उत्साह, जोश एवं वीर रस की धारा प्रवाहित नहीं करता।

युद्ध का पूर्ण वातावरण:-

दशमग्रन्थ के रचयिता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह तदानुसार भयावह तथा उत्साहपूर्ण वातावरण पैदा कर देता है। चंडी ने युद्धभूमि में अपने युद्ध कौशल से चारों तरफ विकराल और भयंकर वातावरण उत्पन्न कर दिया। बड़े-बड़े वीर दैत्य युद्ध में काम आए। रुधिर की नदी बह चली। एक रक्तस्नात दृश्य देखिए--

फूट गई धुजनी सगरी असि चंड प्रचंड जबै करि लीनो ।
दैत मरै नहि बेख करे बहु तऊ बरबंड महाबल कीनो ।
चक्र चलाय दइओ करि ते सिर सत्र को मार जुदा करि दीनो ।
प्रउनत धार चली नभ को जनु सूर को राम जलांजल दीनो ।।[६०]

इस प्रकार युद्ध की अधिष्ठात्री देवी रण चण्डी ने महिषासुर को मार दिया और धर्म की रक्षा की+--

जब महषासुर मारिओ सब दैतन को राज ।
तब कायर भाजै सभै छाडिओ सकल समाज।।[६१]

महिषासुर को जीतकर देवी अलोप हो गई तब सुंभ नामक राक्षस ने आक्रमण कर दिया। सुंभ और निसुंभ दो राक्षसों के साथ सुरपति पुरंड (इन्द्र) का युद्ध होता है। सुंभ ने बाणों की वर्षा की और सर्वत्र भय का वातावरण उत्पन्न हो गया--

बाणलगे लख सुंभ दइत धसै रन लै करवारन को ।
रंग भूम मै सत्र गिराए दए बहु प्रउन बहिओ असुरास को।।[६२]

६०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ७८ ।
६१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ७८ ।
६२- -वही- पृष्ठ ८० ।

इसके उपरान्त निसुंभ ने बड़ा ही विकराल और भयंकर युद्ध किया और वैसा कि पहले किसी भी राक्षस ने नहीं किया। निसुंभ के शौर्य वीरता, साहस, पराक्रम तथा निडरता को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किस प्रकार व्याख्या की है--

जुद्ध निसुंभ महआन रचिओ अस आगे न दानव काहू करिओ है ।।
लोथनि ऊपरि लोथ परी तह गीध सिंगालनि मासु चरिओ है।।[६३]

इन्द्र देवताओं का राजा है और बलशाली है तो सुंभ और निसुंभ भी कम नहीं हैं। उन्होंने इन्द्र को रणभूमि से खदेड़ दिया--

दोनों इन्द्र भजाइ के महाप्रबल दल साज।।[६४]

कवि ने शत्रु सेना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है जो कि वीर काव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है और वीर रस के परिपाक के लिए अनिवार्य तत्व भी । सुंभ निसुंभ ने कुबेर, दिनेश, गणेश सबसे उनके खजाने छीन लिये। उन्होंने इतना भीषण युद्ध किया कि सर्वत्र हाहाकार मच गया। सब भयभीत हो गये। देखिए निम्न पंक्तियों में--

छीन भण्डार लहओ है कुबेर ते सेसहु ते मनमाक छडाई ।
बीत लुकेस दिनेस निसेस गनेस जलेस दीओ है भजाई ।।
लोक कीए तिन तीनहु आपने देत पैठ ते तह दे ठकुराई।।
जाए बसे सुरधाम तेऊ तिन सुंभ निसुंभ की फेरी दुहाई।।७१।।[६५]ब

यहाँ वीर रस में हमारे कवि ने किंचित श्रृंगार-रस का छींटा देकर हास्य रस की सृजना भी की है। वीर के साथ भयानक, रौद्र तथा बीभत्स का साथ तो सर्वथा मान्य है परन्तु यहाँ श्रृंगार रस द्वारा चुटकी

६३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८० ।

६४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८१।

६५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८१।

लेकर, और हास्य उत्पन्न करके हमारे कवि ने अद्भुत काव्य-कला का परिचय भी दिया है। दुर्गा अथवा गिरिजा का रूप सौन्दर्य एवं बल पराक्रम देखकर सुंभ का भाई मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। चेतना पाकर राक्षस गिरिजा गौरी को सुंभ कावरण करने का प्रस्ताव रखता है। इस पर देवी के वीरोचित शब्द देखिए--

सुनि राकस की बात को देवी उत्तर दीन ।
जुद्ध करै बिन नहि बरौ सुनहु दैत मतहीन ।।८४।। [६६]

इसके बाद युद्धानुरूप नखशिख वर्णन आरम्भ हो जाता है। तब लोचनधूम दुर्गा को `बातन ते रिझाई`; या `केसन ते गहि` कर लाने का आदेश देता है। उभय पक्ष से भयानक युद्ध होता है। दोनों ओर की सेना भिड़ जाती है। रणचण्डी अपने हाथ में तलवार लेकर शत्रु सेना का संहार करती है--

कोप कै चण्ड प्रचण्ड चढ़ी इन कुद्ध कै धूम्र चडै उत सेनी ।
बान कृपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी ।।
दऊर दई अरके मुखि मै कटि ओठ दए जिमु लोह को छैनी।।
दांत गंगा जमुना तन सिआम सो लोहू बहिओ तिन माहि त्रवैनी।। [६७]

निसुंभ भी क्रोधित होकर युद्ध करता है। अपनी सेना का संहार देखकर निसुंभ क्रोध से भरकर सामने आ खड़ा होता है जो कि स्वाभाविक है। शत्रु के प्रति यह भावना होना वीर रस के सर्वथा अनुकूल है। अपनी सेना का सर्वनाश देखकर वह उत्साहित होता है, जोकि वीर रस का स्थायीभाव है। प्रतिनायक का नायक के प्रति ऐसी भावना का होना भी स्वाभाविक है--

मार लई दलु अउर भजिओ मन में तब कोप निसुंभ करिओ है ।।
चण्डी के सामुहे आनि अरिउ अति जुद्ध बरिउ पग नाहि टरिओ है।

६६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८२ ।
६७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८३ ।

चण्ड के बान लगिओ मुख दैत के प्रउन समूह धरात परिओ है ।।
मानहु राहु ग्रसिओ नभ मानसु प्रउनत को अति बउन करिओ है।।[६८]

चण्ड-मुण्ड के बाद रक्तबीज, निसुंभ, सुंभ सब युद्ध के मैदान में आते हैं और युद्ध में काम आते हैं। निसुंभ भी देवी के हाथों मारा जाता है और अन्त में सुंभ भी।

युद्ध में लाशों के ढेर:

दशमग्रन्थ के वीर युद्धों में युद्धभूमि का बड़ा ही भयानक और विकराल दृश्य बन पड़ा है। चारों तरफ मृतक शरीर पड़े हैं। युद्ध भूमि में गीदड़, गोगिनियाँ, मजैर और गिद्ध नज़र आते हैं। रक्त मांस का वहां कीचड़ गार रणभूमि में फैल गया है। शंकर का नृत्य उस गारे का निर्माण है। मृतक शरीरों का ढेर लगा पड़ा है मानों दीवारों की चबी उन दीवारों का चूना हो, जहां विश्वकर्मा ने सुन्दर चित्रकारी की है--

सुंभ चमू संग चंडका क्रुद्ध के जुद्ध अनेकन बार मचिओ है ।
जम्बक जुगनि गिच्छ मजूर, रक्त को कीच में हंस नचिओ है ।
लुत्थ पै लुत्थ सु भीतै महं सित गूद अउ मेद लै ताहि गचिओ है।।
मउन रंगीन बनाय मनो करमा बिस चित्र बचित्र रचिओ है ।।[६९]

अन्तिम अध्याय में सर्वत्र शान्ति का राज्य हो गया। देवी ने सन्तों की रक्षा की और दुष्टों का नाश किया--

भाजि गइओ मघवा जिनके डर ब्रह्म ते आदि सभै भै भीते ।
तेइ वै दैत पराए गए रन हार निहार मए बलु रीते ।।
जुंबक गिच्छ निरास भए बनवास गए जुग जामन बीते ।।
सन्त सहाइ सदा जग माहं सुसंभ निसुंभ बड़े अरि जीते ।।[७०]

६८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६४ ।
६९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६७ ।
७०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६८ ।

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने चण्डी-चरित्र की रचना एक महान् उद्देश्य से की थी और वह उद्देश्य था जन हृदय में धर्मयुद्ध की भावना भर देनी। डा० महीपसिंह के शब्दों में -" चण्डी चरित्र का रचयिता मूलत: एक महान् विद्रोही है जो अपने युग के आसुरी शासन को नष्ट करने के लिए सन्नद्धता प्राप्त कर रहा है अर्थात् वह धर्मयुद्ध का आयोजन कर रहा है।"[७१]

बचित्र नाटक: मंगाणी युद्ध - संघर्ष पक्ष :-

` बचित्र नाटक ` एक अन्य प्रमुख वीर रसात्मक कृति है, अत: उसमें भी युद्ध वर्णन का संघर्ष-पक्ष देख लेना समुचित होगा।

नन्दचन्द बहुत क्रोधित हुआ और उसने नजाबत खां को बरछी मारी और साथ ही तलवार भी खींच ली। वह तीक्ष्ण तलवार युद्ध करते-करते टूट गई। तलवार के टूट जाने पर उसने कटार निकाल ली। उस शूरवीर ने सोढ़ी वंश की लाज रख ली। कृपालदास का क्रोध भी भड़क उठा। क्रोध में भरे उस शूरवीर ने घमासान युद्ध किया। उस वीर ने अपने शरीर पर अनेक तीर सहे और अपने तीक्ष्ण बाणों से बाकी खानों के तेज़ घोड़ों को खाली कर दिया। साहबचन्द ने भी अनेक खानों का वध किया और बाकी बचे जान बचाकरभाग गए--

कृपाल कोपीयं सूतको संभारी। हठी खान ह्यात के सीस फारी ।।
उठी छिच्छि इच्छं कढा मेफ जोरं। मनो माखनं मट्टकी कान्ह फोरौ।।
तहां नन्द चंदं कीयो कोपु भारो। लगाई बरच्छी कृपाणं संभारो।।७।।
तुटी तेग त्रिक्खी कढे जम दइढं। हठी राखीयं लज्ज बंस सनढं ।।८।।
तहां मातलेयं कृपालं कुद्धं। छकियो छोभ छत्री करयो जुद्ध सुद्धं ।।
सहे देह आपं महावीर बाणं । करो खान बानीन खाली पलाणं ।।९।

७१- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ ११५ ।

हठियो साहब चंद खेतं खत्रियाणं। हने खान खूनी खुरासान मानं।
तहां बीर बंके भली भांति मारे। बचे प्राण लैके सिपाही सिधारे।१०।।[७२]

कितना यथार्थ, सजीव और ओजस्वी चित्रण है। इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि कवि ने युद्ध की प्रत्येक घटना को अपनी आंखों से देखा है। स्मरण रहे ` बचित्र नाटक ` के सभी युद्धों में कवि स्वयं भी सम्मिलित रहा है।

योद्धाओं के भाव, अनुभाव, क्रोध, शस्त्र संचालन, युद्ध-कौशल घाव सहन करने की शक्ति, खून का बहना आदि सजीव चित्र आंखों के सामने आते हैं। हरिचंद के क्रोध, अस्त्र-शस्त्र प्रहार एवं प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध का कवि ने ऐसा ही वर्णन किया है। यथा--

तहां एक वीरं हरिचन्द कोपयो। भली भांति सो खेतमो पाव रोपयो।।
महा क्रोध के तीर तीखे प्रहारे। लगे बौनि के ताहि पारे पधारे ।।[७३]

इस जन्म की संक्षिप्त कथा के पश्चात् गुरु-कवि ने भंगानी, नादौन, खानजादा तथा हुसैनी युद्ध का वर्णन किया है।

भंगानी के मैदान में हरिचन्द के साथ गुरु जी का युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव है। गुरु जी ने अपने एक-एक बाण से दस-दस शत्रुओं को मार गिराया। हरिचन्द ने तीन बार निशाना बांधा, पर गुरु जी के एक भी न लगा--

हरिचन्द कोपे कमाणं संभारं। प्रथम बाजीयं ताण बाणं प्रहारं ।।
दुतीय ताक के तीर मो को चलायं। रखिओ देव मै काम कुवे के सिधायं।।
तृतीय बाण मारयो सु पेटी फंकारं। विधियं चिलकतं दुआल पारं पधारं ।।
चुभी चिंच चूमं कछु घाय न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं।।३०।।[७४]

७२- दशमग्रन्थ , पृष्ठ ६० ।
७३-७४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६०, ६२ क्रमशः ।

अन्त में उन्होंने एक ही बाण से हरिचन्द को मौत के घाट उतार दिया। श्रीनगर का राजा फतेहसिंह भी भाग गया और इस प्रकार गुरु जी की विजय हुई। वे स्थान-स्थान पर कहते हैं कि - मेरी विजय उस परम प्रभु की असीम कृपा से ही सम्भव होती है--

रणं तिआगि भागे । सभै त्रास पागे ।
मई जीत मेरी । कृपा काल केरी ।।३४।। [७५]

श्रीनगर के राजा फतेह शाह के साथ युद्ध का वर्णन कितना सजीव है, जिसमें महन्त कृपाल और नन्दचन्द के युद्ध का वर्णन है-- कृपाल ने क्रोधित होकर कृतका उठाई और हठी शूरवीर ह्यात खाँ के सिर पर दे मारी। उसके सिर में से मिश्र के क्रीटि इतनी ज़ोर से निकले जैसे कृष्ण द्वारा माखन की मटकी फोड़ देने पर मक्खन के क्रीटि उठे हों।

इस युद्ध के पश्चात् गुरु जी आनन्दपुर जाकर रहने लगे और जिन विमुख प्राणियों ने युद्ध में गुरु जी का साथ नहीं दिया था, उन्हें नगर से निकाल दिया गया। इसी समय नादौन के राजा भीमचन्द पर अलफ खाँ ने आक्रमण किया। इस युद्ध का भी बड़ा ही ओजेपूर्ण वर्णन है। दोनों ओर के योद्धाओं के नाम बताकर उनकी वीरता की प्रशंसा की गई है। उनके उत्साह, उनके भाव, रण-प्रेरणा का वर्णन है। युद्ध का भयानक वातावरण और कोलाहल स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सेना के भागने और संधि का भी उल्लेख है।

समाधान पदा :-

युद्ध में संघर्ष के पश्चात् समाधान भी तो होता है। गुरु जी ने जितना बल संघर्ष पर दिया है, समाधान पर नहीं। कृष्णावतार में खड़गसिंह और जदुपति भगवान् श्रीकृष्णमें संघर्ष का अन्त कृष्ण के पदा में

७५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६२ ।

जाता है और यहाँ शत्रु पक्ष की पराजय का कवि ने बहुत ही रसपूर्ण वर्णन किया है।

हार परै मनहार करै कहै हौऊ नृप जुद्ध बृथा न करइयै ।
डारदै हाथन ते हथीआरन को पत जो सुख सांति समइयै ।।
सूर न कोऊ भयो तुमरे सम तेरो प्रताप तिहू पुर गइयै ।।
छाड़ तिहै हम ससत्र सभै सु बिवान चडो सुर धाम सिधइयै ।।१७१४।।[७६]

राजा खडगसिंह ने अत्यन्त दीन-भाव से श्रीकृष्ण के चरणों में गिरकर कहा कि मैं आपके समक्ष युद्ध से हटता हूं और मुंह में तृन ग्रहण करता हूं, जो दीनता और पराजय का चिह्न माना जाता है। राजा के इन आतुर वचनों को सुनकर श्री कृष्ण अपना गुस्सा थूक देते हैं। उस राजा ने धनुष बाण फेंक दिया और राम को मन में धारण किया।[७७]

देवलोक के किन्नर, यक्ष और अप्सरायें उसे विमान में बढ़ा कर ले गईं। जब भूपति स्वर्ग में आता है तो उसे देखकर सभी शूरवीर प्रसन्न हो जाते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण का एक रूप दया वीर के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जरासंध को कई बार पकड़ कर छोड़ दिया जाता है। जब श्रीकृष्ण दूसरी बार उसे क्षमा करते हैं तो उसे उपदेश देते हैं--

रे नृप निआय सदा करीयो दुख दै कै अन्याय न अनाथह दीजो।।
अउर जितै जन है तिन दै कछु कै कै कृपा सम ते जस लीजो ।।
विप्पन सेव सदा करीयो दग बाजन जीवत जान न दीजो ।।
यौ हमसो संग छत्रनि के कबहू रिस मांडकै जुद्ध न कीजो ।।१६५०।।[७८]

श्रीकृष्ण का जरासंध को यह उपदेश कितना युग-सापेक्ष तथा तथा उनके लक्ष्य की ओर इंगित करने वाला है। जब जरासंध मारा जाता है

७६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७२ ।
७७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४७२ ।
७८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५०१ ।

तो युद्ध का समाधान पद्य प्रस्तुत किया जाता है। राजा का बध करके श्रीकृष्ण वहाँ गए, जहाँ उनके राजा बन्दी बनाए हुए थे। उनको देखकर श्रीकृष्ण दुख से अधीन हो उठे, नेत्र लज्जा से झुक गए, क्षण भर में ही सब बंदियों को मुक्त कर दिया जाता है। करुणा सागर श्रीकृष्ण ने सब पर करुणा दिखलाई।(२३२८) उनके बन्धनकाट कर ब्रज नायक श्रीकृष्ण उन्हें इस प्रकार उपदेश देते हैं--

१- बन्धन काटि सभै तिनके तिन कऊ बृजनायक ऐसे उचारो ।
आनन्द चित करो अपने अपने चित को सभ सोक निवारो।
राज समाज जितो तुम जायकै स्याम भनै धन धाम संभारो ।।
श्री बृजनाथ कही तिहको तुम आपने आपने बेस सिधारो ।।२३२९।।

२- बन्धन छोर कह्यो हरि यौं सभ भूपन तौ इह भाँति उचारी ।।
राज समाज कछू नहीं तेरो ही धिआन लहै सु इहै जीअ धारी।।
राज करोर इहै लहि हो कबि स्याम कह्यो इह भाँति मुरारी।।
सो उनमान कही हरि इऊ सु सदा रह्यौ सुध लेत हमारी।।२३३०।[७९]

चण्डी चरित्र उक्ति विलास का समाधान पद्य:-

इसमें अनेक दैत योद्धाओं के युद्ध की कथा कही गई है, अत: प्रत्येक युद्ध का समाधान पद्य भी अलग से देखना होगा। रक्तबीज से युद्ध में समाधान इस प्रकार है-- रक्तबीज की मृत्यु के बाद शेष राक्षस भाग निकले और सुंभ-निसुंभ के पास जाकर आर्त नाद किया कि रक्तबीज को मार डाला गया है और अन्य महान् योद्धा भी काम आए हैं। यह सुनकर राजा खड्ग संभाल कर गर्वोक्ति करने लगा कि वह चण्डी को ऐसे मार डालेगा जैसे सिंह जंगल में बकरी को मार डालता है।[८०] और यही प्रसंग निसुंभ के साथ हुए

७९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५४९ ।

८०- दशमग्रन्थ, श्लोक १७३-७४, पृष्ठ ९२ ।

युद्ध के लिए शंका रूप में बीज प्रदान करता है। निसुंभ के वध का समाधान पदा इस प्रकार है--

चण्ड प्रचण्ड तबै बल धार संभार लई करवार करी कर ।।
कउन सराह करै कहि ता छिनसो बिब होय परै धरनी पर।।
मानहु सार को तार लै हाथ चलाई है साबन को सबुनीगर।।[८१]

सुंभ जाकर बड़े भाई की लाश देखता है तो भयभीत हो उठता है--

चंडि प्रचंडि सु केहरि कालका आउ सकती मिलि जुद्ध करिओ है ।।
दानव सैन हती इनहूं सभ इऊ कहि कै मन कोप भरिओ है ।।
बंध कबंध परिओ अवलोक कै सोक कै पायन आगे धरिओ है ।।
धाय सकिओ न महिओ भयभीतह चीतह मानहु लंग परिओ है।।[८२]२०६।।

सुंभ के वधोपरान्त शत्रु-सेना की जो दयनीय दशा हुई उसका समाधान निम्नलिखित है--

चण्ड के कोप न ओप रही रन मै असि धार मह समुहाई ।।
मारि बिदारि संघारि दये तब भूप बिना करै कऊन लराई ।।
कांप उठे अरि त्रास हीए धरि छाडि दई सभ पौरषताई ।।
दैत चले तजि खेत इऊ जैसे बड़े गुन लोभ ते जात पराई ।।२२८।।[८३]

जिन राक्षसों के भय से इन्द्र और ब्रह्मा आदि भयभीत होकर भाग गए, वही राक्षस चण्डिका की तलवार के भय से रण से भाग निकले और बलहीन हो गए। जुम्बक और गीध आदि निराश हो गए कि अब कैसे निर्वाह होगा। जगत-माता सन्त जनों की सदा सहायता करने वाली है। उधर देवता लोग एकत्र होकर चावल और केसर लेकर चण्डी की प्रदक्षिणा करते हैं और मस्तक पर तिलक लगाते हैं। सब देवता मिलकर चण्डी की

८१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ९५ । ८२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ९६ ।
८३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ९८ ।

महिमा गाते हैं। देव-कन्यायें मिलकर चण्डी की आरती उतारने के लिए दीप प्रज्वलित करती हैं। पुष्प, धूप, चावल और केसर लेकर सब विजय एवं उल्लास के गीत गाते हैं। शंख-ध्वनि करके शीश झुका कर वे गान करती हैं--

हे जगमाय सदा सुखदाय तै सुंभ को घाय बड़ो जसु पाइओ।।२२८।[८४]

चण्डी इन्द्र को राज्यासिंहासन देकर सूर्य, शशि, नभ आदि को तेज प्रदान करके लोप हो गई। इसके बाद कवि की ओर से देवी वन्दना है जिसमें दैत्यों से हुए सभी युद्धों का संक्षेप में वर्णन आ जाता है--

प्रथम मधकैट मदमथन महिषासुरै मान मरदन करन तरन बरबंड का ।।
धूम्र द्रिग धरन धर धूर पानी करन चंड अरु मुंड के मुंड खण्ड खण्ड का।
रक्तबीरज हरन रक्त मच्छन करन दरन अन सुंभ रन रार रिस मंडका।।
सुंभ बलु धार संघार करवार करि सकल खलु असुर दलु जैत जै चण्डका।।[८५]

इसके आगे समाधान रूप में वह प्रसिद्ध सवैया है जिसे हम सभी अत्यन्त प्रेम और निष्ठा से गाते हैं--

देह सिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं ।
न डरो अरि सो जब जाय लरो निसचै कर अपनी जीत करौं ।।
अरु सिख हो आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं ।।
जब आव की अउध निदान बनै अत ही रन मै तब जूझ मरौं ।।[८६]

बचित्र नाटक में समाधान पदा :-

भंगानी युस्द्ध:-

इसमें जहां ` शंका पदा ` एवं ` संघर्ष पदा` का विस्तार से

८४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६६ । ८५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६६ ।
८६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६६ ।

वर्णन हुआ है, वहाँ गुरु जी ने समाधान पदा का भी अत्यन्त उदात्त रूप प्रस्तुत किया है। प्रभु की कृपा से उनको विजय प्राप्त हुई, श त्रु पदा के सब लोग `रण त्याग` कर भाग निकले, `सर्वत्र त्रास` छा गया। इधर विजयी पदा में जय के गीत गाये गए, पुष्प वर्षा होने लगी, सभी शूरवीर हर्षित हो उठे। इसका एक सुन्दर पदायह रहा कि युद्ध में विजय प्राप्त करके गुरु जी की वृत्ति एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर हो गई। उन्होंने हिमाचल के ही एक दूसरे छोर पर तथा मुगलशाही सूबेदारों के सरहिन्द नामक स्थान के ऊपरी भाग में आनन्दपुर नाम का नगर स्वयं बसाया। भंगानी के युद्ध में जो लोग डटकर नहीं लड़े थे, उन्हें नगर में से निकाल दिया गया और शौर्यवानों की प्रतिपालना की गई --

जुद्ध जीत आए जबै टिके न तिन पुर पाव ।।
काहलूर मै बाँधिओ आन आनन्दपुर गाव ।।३६।।

जे जे नर तह ना भिरै दीने नगर निकार ।।
जे तिह ठऊर भले भिरे तिनै करी प्रतिपार।।३७।। [८७]

यही नहीं, समाधान पदा में यह भी कि बहुत दिन इस तरह बिता कर युद्धवीर कविवर ने सन्तों का उद्धार किया और सभी दुष्टों का संहार कर डाला। अन्तत: सभी दुष्टों को चुन-चुन कर यमलोक पहुंचा दिया, इन दुष्टों ने ऐसे ही प्राण त्याग दिये, जैसे कुत्ता प्राण त्याग देता है, अर्थात वे सब कुत्ते की मौत मारे गए।

जैसा पहले भी कई स्थानों पर उल्लेख हो चुका है गुरु गोबिन्दसिंह ने जहाँ भी युद्ध का वर्णन किया है, उसमें भयानक, बीभत्स, रौद्र आदि रसों का विशेष परिपाक हुआ है। इस विषय में डा० हरिभजन सिंह का निर्णय भी यही है--" दशमग्रन्थ का एक तिहाई से अधिक भाग विकराल युद्ध-वर्णन से भरा हुआ है।---- इन युद्ध दृश्यों में मुख्यत: संघर्ष

८७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ६२ ।

और उनके परिणामों का ही चित्रण है।------- विकराल, भयावह और बीभत्स युद्ध दृश्यों की यह प्रचुरता साधारणत: न सुरुचि के लिए लाभप्रद है और न मानसिकसन्तुलन के लिए। ये दृश्य युद्ध की क्रूर-करालता का प्रतिनिधित्व तो अवश्य करते हैं, युद्ध के लिए आकर्षण उत्पन्न करने की इनकी सामर्थ्य सर्वथा असंदिग्ध नहीं। अत: कवि कई बार अपने पाठकों की दृष्टि युद्धेतर निस्सन्देह युद्ध दृश्यों के समानान्तर विषयों की ओर खींच देता है। युद्ध के निविड़ अन्धकार में सैकड़ों जुगनुओं के समान ये अन्धकार जगमगा उठते हैं जिनके संयोग से सघन अन्धकार भी बहुत भयावह प्रतीत नहीं होता। भयावह, विकराल, बीभत्स युद्ध दृश्यों के लिए सुखद, सुकोमल, सुन्दर सादृश्य जुटाने में कवि का मन बहुत रमा है।[८८]

युद्ध-वर्णन में सुन्दर उपमानों का संयोजन :-

युद्ध की भीषणता तथा विकरालता को कवि ने सुन्दर उपमानों से सुसज्जित किया है और इस प्रकार युद्ध के ध्वंसात्मक दृश्यों में सुन्दरता की कल्पना की गई है। ऐसी सुन्दर कल्पना की रचना कवि की विशिष्ट और अद्भुत देन है---

१- सिआम घटा घुमरी घनघोर कै घेरि लीओ हरि को रवि तैसे।।६६।।
पृष्ठ ८०।

२- तलवार की उपमा बादलों में चमकती हुई बिजली से की है--

२- पान कृपान धरे बलवान सुकोप कै बिज्जुल जिऊ गरजी है।।७८।।
पृष्ठ ८१ ।

३- तब घेरि लई चहूं ओर ते दैतन इऊ उपमा उपजी मन मै ।।
मन ते तन तेजु चलिओ जगमात को दामन जान चले घन मै।।४८।।
पृष्ठ ७८ ।

४- प्रवनत धार चली नभ को जनु सूर को राम जलां जल दीनो ।।४६।।
पृष्ठ ७८ ।

८८- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृष्ठ २३० ।

५- बहुरौ अरि सिंधुर के दल पैठकै दामन जिऊ दुरगा दमकै ।।५०।।पृ०७८ ।।

६- अऊर दलु भाजिओ जैसे पउन हूं ते भाजे मेघ ,
इन्द्र दीनो राज बलु आपनो सो धारि कै ।।५२।। पृष्ठ ७६ ।।

७- हरि चण्ड लइओ बरि कै कर ते अरु मूण्ड कटिओ असुर पुरमा।।
मानो आंधी बहे धरनी पर छूट, खजूर ते टूट परिओ खुरमा।।६६।।
पृष्ठ ८३ ।।

८- समु क्वार भइओ दल दानव को जिमु घूम हलाहल की मखीओ ।।१०१।।
पृष्ठ ८३ ।।

६- फागन पउन के गऊन भये जनु पात बिहीन रहे तरु ठाढ़े।।१११।।
पृष्ठ ८४ ।।

खून से लथपथ तलवार :-

१०- पान गुमान सो खाय अघाय मनो जमु आपनी जीभ निहारे ।।११२।।
पृष्ठ ८४ ।।

११- ऐसे परियो धरि ऊपर जाय जिऊ बेलहि ते कदूआ कटि डारियो।।
११४।।पृष्ठ ८४।।

१२- तीर चले इम बीरन के बहु मेघ मनो बलु कै बरखिओ है ।।१३०।।
पृष्ठ ८६ ।।

१३- चण्ड चमू सभ दैत की ऐसे दई संघार ।
पउन पूत जिऊ लंक को डारिओ बाग उखार।।१४१।। पृष्ठ ८७।।

१४- सूऊन परिओ धरनी पर च्वै रंगरेज की रेनी जिऊ फूट कै फैली।।
घाऊ लसै तन दैत के यों जन दीपक मधि फनूस की फैली ।।१५७।।
पृष्ठ ६० ।।

१५- लोथ पै लोथ गई पर इऊ सु मनो सुर लोग की सीढ़ी बनाई।।२१५।।
पृष्ठ ६७ ।।

१६- चण्ड प्रचण्ड तबे बलधार संभार लई करवार करी करि ।।
कोप दई निसुंभ कै सीस बही इह भांत रही तरवातर ।।
कउन सराह करै कहि ता छिन सो बिब होइ परै धरती पर ।।
मानहु सार की तार लै हाथ चलाई है सावन को सबुनीगर।।२०२।पृ०६५।

१७- मानहु सारसुती उमडी जल सागर के मिलिवै कह धारओ ।।२०५।।पृ०६६।

होली के रूप में युद्ध का वर्णन :

परी मार बुगं कुटी बाण गोली। मनो सूर बैठे भली खेल होली।।१६।।
गिरे बीर भूमं सरं सांग पेलं। रंगे स्रोण बसत्रं मनो फाग खेलं।।२०।।
पृष्ठ ६४ ।

युद्ध के भयानक दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है--

कुप्पिओ किपा। नच्चे मराल।। बज्जे बजंत। कूरं अंतत ।। ८।।
~~नीव-धरि-कोध+~~
जुज्झंत जुआण । बाहे किपाण। जीव धारि कोध। कड्डे सरोध।।६
लुज्झे निदाम। तज्जं प्राण।। गिरपरत भूम। जणुमेघ झूम।।१०।।
पृष्ठ ६३ ।।

किस प्रकार वीर योद्धा भूमि पर गिर रहे हैं। क्रोध में वीर दांत काट-काट कर फिर उठबैठते हैं--

खरे दांत पीसै कुमै कत्रधारी ।। पृष्ठ ६३ ।

युद्ध के बाजे बज रहे हैं। वीरों की भुजाओं में रक्त खौल रहा है। युद्धभूमि में वे सिंहों की तरह गरज रहे हैं--

महानाद बाजे । मणो सूर गाजे ।।१२।। पृ० ६३ ।।
महावीर गज्जे । महा सार बज्जे ।।१३।। पृ० ६३।।

एक मुग़ल योद्धा दिलावर खां ने राथ के समय गुरु जी पर धावा बोल दिया, परन्तु उसे मुंह की खानी पड़ी--

सार परा सभ हो नर जागे। गहि गहि ससत्र बीर रिस पागे ।।
कूटन लगी तुफगै तबही। गहि गहि ससत्र रिसाने सब ही ।।४।।

बजी भेर हुंकार धुके नगारे। महावीर बानैत बके बुकारे ।।
भए बाहु आघात नच्चे मरालं। क्रिपासिंधु काली गरज्जी करालं।।५।।
नहीयं लखियो कालरात्रं समानं। करे सूरमा सीत पिंगं प्रमानं ।।
इते वीर गज्जे भए नाद भारे। भजे खान खूनी बिना सस्त्र फारे।।६।।

पृष्ठ ६५।।

हुसैनी युद्ध :-

रात के अन्धेरे में कोलाहल मच गिया। गुरु जी की सेना शत्रु के मुकाबले के लिए चल पड़ी, तीरों की वर्षा होने लगी। युद्ध के बाजे बजने लगे। दिलावर खां भयभीत होकर भाग गया और गुरु जी की सेना को विजय प्राप्त हुई।

हुसैनी युद्ध में एक ओर राजा भीमचन्द, राजा कृपाल और हुसैन खां थे, दूसरी ओर राजा गोपाल और रामसिंह जासवाल थे। दोनों ओर से बाण चलने लगे। युद्ध का दृश्य भयानक था। दोनों ओर की असंख्य सेना मृत्यु के घाट उतारी गई। हिम्मत और किस्मत दोनों योद्धा हुसैन खां की ओर से रणभूमि में लड़ने आये--

हठियो हिम्मतं किम्मतं लै कृपानं। लये गुरज चलं सुजलाल खानं ।।
हठे सूरमा मत्त जोद्धा जुझारं। परी कुट्ट उठी सस्त्र फारं ।।३२।।
जसंवाल धाए । तुरंगं नचाए । लयो घेरि हुसैनी हन्यो सांग पैनी।।३३।
तिनू बाण बाहे। बहै सैनगाहे।। जिसे आग लाग्यो। तिसे प्राण त्याग्यो।।३४।।

पृष्ठ ६७ ।।

युद्ध में विजयी सिक्ख सेना बहुत प्रसन्न थी। गुरु जी वीर पुरुषों की कथाएं सुनकर उनमें नवीन उत्साह और प्रेरणा का संचार करते रहते थे। एक-एक व्यक्ति में सिंह का रूप देखना चाहते थे। वे शत्रु सेना को चिड़ियों का रूप देते थे और अपने सैनिकों को बाज का--

` चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं, तभी गोबिन्दसिंह नाम कहाऊं।।[८९]

एक बार गुरु जी अपनी अल्प सेना के साथ शिकार खेलने गए। मार्ग में बलियचन्द और आलचन्द ने उन्हें रोक लिया। अल्प सेना होते हुए भी उन्होंने शत्रुसेना का डट कर सामना किया। शत्रु सेना मारी गई। बलिया चन्द भी घायल हो गया। बचित्र नाटक में मुगल सेना तथा कुछ पहाड़ी राजाओं के तथा परस्पर पहाड़ी राजाओं में हुए एक अन्य युद्ध का भी वर्णन है।

जुझारसिंह वीर योद्धा था जो युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। इसमें उसके उत्साह, शौर्य और वीरता का वर्णन है। पहाड़ी राजाओं ने औरंगजेब को गुरु जी के विरुद्ध युद्ध के लिए भड़काया और आनन्दपुर छोड़ने को बाध्य किया। चमकौर के युद्ध का वर्णन भी इसमें है जिसमें गुरु जी की ही विजय हुई। दो पुत्र जुझारसिंह और अजीतसिंह भी युद्ध में काम आए और दो को जीवित ही दीवार में चिनवा दिया गया था परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने अपने सिक्खों को यही शिक्षा दी थी कि तलवार केवल धर्म की रक्षा के लिए ही उठानी है।

यद्यपि ` बचित्र नाटक ` प्रबन्ध कथा की दृष्टि से पूर्ण नहीं है, तो भी युद्ध वर्णन बड़े ही रोचक और प्रभावशाली हैं। उनमें योद्धाओं की वीरता, शौर्य प्रदर्शन, दोनों दलों की टक्कर तथा लोह वर्षण का चित्रण है। इन सब युद्धों का कारण युग की परिस्थितियां ही थीं। युद्ध का जितना सजीव वर्णन उनकी कविता में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। भंगाणी के युद्ध का उदाहरण देखते ही बनता है--

---

८९- यह एक किंवदन्ती है जिसे श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविता में रखा है।

करि के गुमान, जुम्मै जुआन, बज्जे तबल्ल, दुंदभ दबल्ल ।।१७।।
बज्जे निसाण, नच्चे किकाण, बाहै तड़ाक, उठै कड़ाक।।१८।।
बज्जे निसंग, गज्जै निहंग, छुटटै किपान, लिटटे जुआन ।।१९।।
तुप्पक तड़ाक, कैवर कड़ाक, सैहथी सड़ाक, छौही छड़ाक।।२०।।पृ०६६।।
बजी मैर हुंकार तीरं तड़क्के, मिले हत्थि बत्थं किपान कड़क्के।।२६।।
पृष्ठ ६७।।

रण में वीरों के क्रोध से उत्तेजित होकर जूझने, घोड़ों के हिनहिनाने, जवानों के गरजने, तलवारों की कटकटाहट, गोलियों की तड़तड़ाहट, वीरों का दो हाथ होना आदि का बहुत ही ओजस्वी वर्णन है।

कृपाल और गोपाल के पौरुष का वर्णन बड़े ही चित्रमय ढंग से किया है--

जुटे आप मै बीर वीरं जुझारे, मनो गज्ज जट्टे दंतारे दंतारे ।।
किधौ सिंह सो सारदलं अरज्झे , तिसी भाँति किरपाल गोपाल जुज्झे।।
।पृष्ठ ६७।।

ऐसा लगता है कि मानों दो हाथी लड़ रहे हों या शेर बबर शेर से लड़ रहा हो। इसी प्रकार युद्धभूमि के भयानक दृश्य को भी कवि ने प्रस्तुत किया है--

उठे टोप टूकं गुरजै प्रहारे। रुले लुत्थं जुत्थं वीर भारे ।।
परै कतीयं घात निरघात वीरं। फिरै रुण्ड मुण्डं तनं तक्क तीरं।।

टूटे फूटे अस्त्र-शस्त्रों, घायल हुए वीरों, रक्त प्रवाह और उन पर मंडराते गिद्धों, नाचते भूत-प्रेत,डाकनि जोगनि आदि का विस्तृत वर्णन है।

रामावतार में युद्ध वर्णन :-

युद्ध वर्णन रामायण की युद्ध कांड योजना के अनुसार नहीं हुआ। पात्र रामायण वाले हैं परन्तु युद्ध का विधान वर्णन और चित्रण

समयानुकूल है। जब इस ग्रन्थ की रचना हुई, उस समय गुरु जी महान् युद्धों की तैयारी में थे और अपने शिष्यों को संगठित तथा प्रेरित कर रहे थे। इस में भी यही उद्देश्य छिपा हुआ है। इसमें राम के ताड़का, विराध्य, धूम्राक्ष अकंपन, नरांतक, कुंभकर्ण, महोदर, इन्द्रजीत, मकराक्ष, कुंभ अनकुंभ, रावण आदि राक्षसों की वीरता का विस्तृत वर्णन है। बचित्र नाटक की तरह इसमें भी योद्धाओं की भयानक भिड़ंतों का वर्णन है। वीरों का घायल होकर गिरना, अश्वों और गजों का मारा जाना, भूत प्रेत, डाकिनी योगनि, वीर बैताल आदि के नाचने एवं गिद्धों, काक, श्रृगाल आदि द्वारा मांस नोचने रक्तपान करने आदि का भयानक दृश्य प्रस्तुत किया गया है।[६०]

राम का सन्तों की रक्षा करना तथा राक्षसों का नाश करना यही उनके दो महान् उद्देश्य हैं। यह उद्देश्य निम्नलिखित पंक्तियों में लक्षित होता है--

भूअ भार उतारयो । रिखीस उबारयो ।।
भयो जग्ग पूरं । गये पाप दूरं।। पृष्ठ १६५ ।।

सेना प्रस्थान का यहां भी सुन्दर वर्णन है। राम अपने दल बल सहित रावण पर आक्रमण करने जाते हैं। रावण भी अपने राक्षसों को राम का सामनो करने के लिए आदेश देता है। जब राक्षस शोर करके राम को घेरा डाल लेते हैं, उस समय रण वाद्य ऐसे बजते हैं मानो मेघ गरजते हैं। कमानों की कड़कड़ाहट, कृपाणों की फड़फड़ाहट, तीरों की वर्षा और वीरों के उत्साह से जूझने और युद्ध में उल्लास भरने का कवि ने बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है।[६१] यहां शस्त्रास्त्रों के नामों का विशद वर्णन है तथा उनका युद्ध में प्रयोग : शब्दों द्वारा युद्ध की गति को तीव्र करता है--

---

६०- डा० महीपसिंह: गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ १४६ ।

६१- डा० जग्गी : गुरु गोबिन्दसिंह जी की वाणी में स्वतन्त्रता की भावना, पृष्ठ ६७ ।

मार मार पुकार दानव ससत्र असत्र सँभार ।
बान पान कमान कउ धर तबर तिक्ख कुठार।।
घेरि घेरि दसो दिसा नहि सूरवीर प्रमाथ ।
आइकै जूझे सबै रण राम सकल साथ ।।६८।।

रणं पेख रामं । घुजं धरमधामं ।।
चहूं ओर ढूके । मुखं मार कूके ।।६९।।

बजे घोर बाजे । घुणं मेघ लाजे ।।
झंडा गड्डे गाड़े । मडै बैर बाड़े ।।७० ।।

कड़क्के कमाणं । झड़क्के किपाणं ।।
ढला ढुक्क ढालै । चली पीत पालै ।।७१।।

रणं रंग रचे । मनो मल्ल मचे ।।
सरं धार बरखै । महिखुआस करखै ।।७२।।

करी बान बरखा । सुणे जीत करखा ।।
सु बाहं मरीचं । चले बाछ मीचं ।। ७३।।[६२]

कितना सजीव वर्णन है। ढोल, नफीरी, तूर , धौंसा, तंबूरा, संख, तबला आदि रण वाद्यों का कुमुल नाद भी युद्ध को कोलाहलपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।[६३] वीरों के परस्पर युद्ध में टंकार, झंकार, कड़ाक, तड़ाक, कटाकट, अस्त्र-शस्त्रों की ठकाठक, ढाल, कटार, कृपाण, सरोही, सैहथी, गदा, जमदड़, बरछी, तीर, कमान, जंबूआ, त्रिशूल, गलार्ले, चन्द्रहास, गुरज, गोफन, खडग, पटा, जिरा, टोप, बखतर आदि का ओजपूर्ण चित्रण किया गया है। अस्त्र-शस्त्र की ध्वनि अनुसार नादात्मक शब्दों को चुना गया है और उन्हें संगीत में बांधा है।

६२- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १६५ ।
६३- दशम ग्रन्थ, छंद सं० ६०, ३१४, ३१५ ।

युद्ध में भयंकर दृश्य :-

बूझते हुए योद्धाओं का घात-विघात होना, अश्वों और हाथियों का घायल होना, अस्त्र-शस्त्रों की भयंकर ध्वनि, रक्त-प्रवाह तथा गिद्धों द्वारा मांस का नोचा जाना, भूत-प्रेत, वीर बैताल और योगनियों के नाचने से समस्त युद्धभूमि का भयानक और भीषण वातावरण उपस्थित करने में कवि पूर्णतया सफल रहा है।[९४] यथा--

गजं गजे ह्यं हले हलाहली दली हली हली हलं ।
बबज्ज सिंघरे सुरं कुटंत बाण केवलं ।।
पपक्क पक्खरे तुरे भभक्ख घाय निरमलं ।।
पलुत्थ लुत्थ बित्थरी अमत्थ जुत्थ उत्थलं ।।३०८।।

अजुत्थ लुत्थ बित्थरी मिलंत हत्थ बक्खयं ।
अघुम्म घाय घुम्म ए बबक्क बीर दुद्धरं ।
किलं करंत खप्परी पिपंत म्रोण पाणाय ।
हहक्क भैरवं सुतं उठंत बुद्ध ज्वालयं ।।३०९ ।।
फिकंत फिकंती फिरं रजंत गिद्ध बिद्धणं ।
डहक्क डामरी उठं बकार बीर बैतलं ।।
खहच्च खग्ग खत्रीयं खिमंत धार उज्जलं ।
घणाक्क जाण सावलं लसंत बेग बिज्जुलं ।।३१०।।[९५]

राम-रावण युद्ध के समय राम का क्रोध से भरकर रावण से युद्ध करने का दृश्य देखिए- युद्ध में शत्रु पर क्रुद्ध होना कितना स्वाभाविक है--

---

९४- रामावतार: ८४, ३१९, ४०६, ४०७, ४०९, ४२७, ४२८, ४३२, ५०१, ५०९ आदि छन्द ।

९५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २१२ ।

रोष भरे रणमो रघुनाथ कमान लै बाण अनेक चलाए ।
बाजि गजी गजराज घने रथराथ बने करि रोष उड़ाए ।।
जे दुख देह कटे सीअ के हित ते रण आज प्रतच्छ दिखाए ।
राजीव लोचन रामकुमार घनो रणघाल घनो घर घाए।।६१४।।[९४]

नायक श्रीराम का वीर रूप--

श्री रघुनन्दन की भुज तें जब छोर सरासन बान उड़ाने ।
भूमि अकास पतार चहूं चक पूर रहे नही जात पछाने ।।
तोर सनाह सुहावन के तन आह करी नही पार पराने।
छेद करटन ओटन कोट अटानमो जानकी बान पछाने ।।[९७]

प्रतिनायक का क्रोधित होना--

रावण रोस भयो रन में गहि बोसहूं बाहि ह थियार प्रहारे ।
भूमि आकास दिसा बिदिसा चकिचार रुक्के नहीं जात निहारे ।।
फोकन तै फल तै मद्ध तै अध तै वध कै रण मंडल डारे ।
छत्र धुजाबर बाज रथी रथ काटि सबै रघुराज सतारै ।।६१६।।[९८]

यहाँ राम रावण के एक दूसरे पर प्रहार-प्रतिहार का ही वर्णन नहीं किया गया, अपितु दोनों वीरों के शौर्य, उत्साह, दृढ़ता, साहस निडरता तथा युद्ध-कौशल का सजीव चित्रण भी किया गया है। दोनों ओर के वीरों की प्रशंसा समान रूप से की गई है। जहाँ राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद आदि की वीरता का वर्णन है, वहाँ अकंपन, मेघनाथ, कुंभकर्ण, रावण की वीरता को भी खूब दर्शाया गया है। अंगद, राम तथा लक्ष्मण भी उनके साहस और शौर्य की प्रशंसा करते हैं।

९६- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २३७ ।
९७- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २३८ ।
९८- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २३८ ।

रणभूमि में योद्धाओं की उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियाँ वीर-रस को बल प्रदान करती हैं और युद्ध की गति को तीव्र करती हैं। इनमें वीरों का साहस और उत्साह प्रकट होता है

चण्डी-चरित्र द्वितीय में युद्ध वर्णन :-

युद्ध वर्णन में रण-सज्जा और शास्त्रास्त्रों की सज्जा देखिए---

चीर चामर पुंज कुंजर बाज राज अनेक,
सस्त्र सुभेक हूं सरदार सुआर अनेक ।।
तेग तीर तुफंग तबर कुहुक बान अनन्त,
बेधि बेधि गिरे बरछिनि सूर सोभावंत ।।३३।। पृष्ठ १०२ ।।

युद्ध में भयानक दृश्य :

बीभत्स और जुगुप्सा रस देखिए--

गिद्ध ब्रिद्ध उडे तहां फिकरंत सुआन सिंग्राल ।
मत्त दंत सपच्छ पबूबै कंक बंक रसाल ।।
क्षुद्र मीन कुरंधुका अरु चरम कछप अन्नंत ।
नक्र बक्र सुबरम सोभित स्रोन नीर दुरंत ।।३४।।
अंग भंग गिरे कहूं बहु रंग रंगित वसत्र ।
चरम बरम सुभे कहूं रन भूम ससत्र कअस्त्र ।
मुंड तुंड धुजा पताका टूक टाक अरेक ।।
जूझ जूझ परे सभै अरि बाचियो नही एक ।।३६।।[९९]

युद्ध की समस्त सामग्री टूट फूट गई। सर्वत्र हाहाकार मच गया। ध्वजा, पताका टूट गई। सारी शत्रु सेना टुकड़े-टुकड़े हो गई और कोई भी शत्रु नहीं बचा।

९९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०२ ।

दूसरे अध्याय में देवताओं ने देवी की वन्दना की, फूल चढ़ाये। इसके बाद शुंभ-निसुंभ राक्षसों ने विश्व भर पर अपनी विजय प्राप्त कर ली। तब देवता गण परेशान हो उठे। वे पुनः देवी की शरण में गए। सुनते ही देवी क्रोधित होकर शत्रुओं का नाश करने चल पड़ी। युद्ध के नगाड़ों की आवाज़ सुनकर राक्षस भी उत्साहित होकर युद्ध के लिए डट गए। बहुत ही भयानक युद्ध हुआ। तलवार से तलवार टकराने लगी। तीर बरसने लगे। कितने ही योद्धा युद्धभूमि में काम आए।

तृतीय अध्याय में चंड और मुंड नामक राक्षसों के वध का वर्णन है। शक्ति की भंडार देवी ने उनको भी नष्ट कर दिया। खून की नदी बह उठी। बान, कान, सैंथी और तेजा कुठार से उनका बध कर डाला। वीर रस को पुष्ट करने के लिए यह दृश्य भी अपनी महत्ता रखता है--

घाय घाय संघारीअं, रिपु राज बाज अनन्त ।।
स्रौण की सरता उठी रण मधि रूप दुरन्त ।।
बान अउर कमान सैंथी सूल तिच्छ कुठार ।
चंड मुंड हने दोऊ कर कोप काल करवार ।।१२।७६।[१००]

चतुर्थ खण्ड में देवी का रक्तबीज के साथ युद्ध दर्शाया गया है। राजे ने जब चण्ड-मुण्ड की हत्याके बारे में सुना तो रक्तबीज को दल-बल सहित युद्ध करने के लिए भेजा। शत्रु की ललकार सुनकर देवी भला कैसे चुप रह सकती थी। अपनी सिंह सवारी और शस्त्रास्त्रों के साथ वह युद्ध में कूद पड़ी। जितने भी शत्रु सामने आए, कोई भी जीवित बचकर नहीं गया।

रणभूमि का बहुत ही सजीव चित्रण कवि ने किया है। यह वर्णन वही कर सकता है जिसने प्रत्यक्ष युद्ध किया हो। रणभूमि में एक-एक वीर के दो-दो और चार-चार टुकड़े हो गए।

१००- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०४ ।

तलवार और तीरों का भयंकर युद्ध :-

दुर्गा की तलवार में वह अग्नि है जिसके आगे कोई भी शत्रु जान बचाकर नहीं भाग सकता--

फिरी तेज तेगम सु रोसम प्रहारम ।
खिमी दामनी जान भादो मझारम।।
उठे नद्द नादम् कड़क्के कमानम ।
भयो लोह कोहम अभूतम भयानम।। ७।८४।।[१०१]

विकराल युद्ध हुआ और अन्त में देवी ने सुंभ को भी मार डाला। कवि कामना करता है कि देवी जिस प्रकार सुंभ का नाश किया, उसी प्रकार सन्तों के जितने शत्रु हैं, उनका भी विनाश कर दो--

जिम सुंभ सुर को हना अधिक कोप के कालि ।
त्यों साधन के सत्र सभ चाबत जाहि कराल ।।६३।२१६।।[१०२]

समाधान पक्ष :-

सप्तम अध्याय में देवी की वन्दना की गई है। इस अंश पर मार्कण्डेय पुराण का अधिक प्रभाव पड़ा है। दुष्टों और राक्षसों का संहार करने वाली, सन्तों की रक्षा करने वाली तथा उन्हें भस्म करने वाली देवी के रूप को बार-बार स्मरण किया गया है। यही रूप कवि का इष्ट है और इष्ट की साधना के लिए उसने चण्डी चरित्र की रचना की है। दैत्यों के नाश से सर्वत्र सुख छा गया --

साधन को सुख बढ़े अनेकां, दानव दुसट न बाचा सेका ।।
संत सहाय सदा जग माई, जहं तह साधन होय सहाई ।।३।२२२।।

१०१- दशमग्रन्थ, पृष्ठ १०६ ।
१०२- -वही- पृष्ठ ११५ ।

आगे कवि ने देवी की वन्दना की है--

नमो जोग ज्वालम् धरीअम जुआलम् ।
नमो सुंभ हंती नमो क्रूर कालम् ।।
नमो स्रोण बीर बारद्नी घूम्र हंती।
नमो कालका रूप जुआला जयंती ।।४।।२२३।।

आगे फिर वे देवी की स्तुति करते हैं--

नमो चरबनी सरब धरमम् घुनायम् ।।
नमो हिंगुला पिंगुला अंब कायम् ।।
नमो दीरघ दाड़ा नमो सिआम बरनी।।
नमो अंजली गंजनी दैत दरणी ।।२६।।२४८।।

सैंतीसवें पद तक इसी प्रकार भगवती चण्डिका की वन्दना की गई है और आठवां अध्याय (६ श्लोक) का तो नाम ही `अथ चण्डी चरित उसतत बरननं` रखा गया है। यहां देवी-स्तुति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। `जा की रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी` के समान वे महत्ता बतलाते हैं--

पढै मूढ़ याको धर्न धाम बाढे, सुनै सूम सोफी लरै युद्ध गाढे।।
जगे रैणि जोगी जपै जाप याको, धरै परम जोगं लहै सिद्ध ताको।।४।
२६०।।

पढै याहि द्यिारथी विद्य हेतं, लहै सरब सास्त्रान को मदद चेतं।।
जपै जोग सन्यास बैराग कोई, तिसै सरब पुन्यान को पुन्नि होई ।।५।।
२६१।।

जे जे तुमरे धिआन को नित उठि धिवैहैं सन्त ।।
अन्त लैहगे मुकति फल पावहिगै भगवन्त ।।६।।२६२।।

श्री गुरु गोबिन्दसिंह विरचित ` चण्डी दी वार ` (पृष्ठ ११६ से १२७) में भी रणचण्डी और अन्यान्य राक्षसों का युद्ध-वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। यह रचना उनकी एकमात्र पंजाबी भाषा की रचना है। अत: यहाँ उसमें से उदाहरण देकर विषय का विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है।

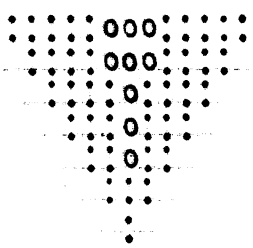

वीर-रसात्मक अभिव्यक्ति के प्रसाधन

छन्द योजना :-

छन्दोबद्ध रचना का नाम ही कविता है जिसमें भावों की तारतम्यता, संगीतात्मकता, क्रमानुकूलता आवश्यक है। छन्द शब्द छद् धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसन्न करना, आच्छादित करना, बांधना, आह्लादित करना है।

इससे स्पष्ट है कि छन्द योजना से कविता में संगीत तत्व का समावेश हो जाता है। इससे काव्य अजर अमर हो जाता है। काव्य में छंद की महत्ता पर बल देते हुए इसे षट् वेदांगों---शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष में स्थान दिया गया है तथा इसे वेदों का चरण कहा गया है---" छन्दः पादौ तु वेदस्य ।" जिस प्रकार चरणों के बिना जीवन निस्सार है उसी प्रकार छन्द वैदिक मन्त्रों की प्रतिष्ठा का आधार है।

काव्य कला में छन्दों का विशेष महत्व इसलिए भी है कि छन्द का भाव से सहज गहन सम्बन्ध है। वस्तु के अनुसार ही पात्र बदल जाता है और अनुकूल पात्र पाकर वस्तु का रंग-रूप और भी निखर आता है। जब कोई कवि अपनी छन्द-योजना करता है तो अपने विषय को ध्यान में रखकर ऐसा विधान करता है कि उसके द्वारा प्रकट भावों को गति मिले, उस के प्रभाव में दीप्ति उत्पन्न हो, उसकी बात निशाने पर पड़े। छन्द योजना में नाद, लय तथा कर्ण-माधुर्य का विशिष्ट स्थान है। लय हमारी आत्मा की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है, यद्यपि वर्ण, मात्राएं तथा आरोह अवरोह आदि उसके बाध्य तत्व हैं।

छन्द के दो प्रमुख भेद होते हैं-- वार्णिक और मात्रिक। वार्णिक छन्दों में मात्राओं की गणना निश्चित होती है जबकि मात्रिक छंदों में मात्राओं की गणना होती है। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपनी रचनाओं में मात्रिक और वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। भक्तिकाल एवं रीतिकाल के इनके पूर्ववर्ती कवियों तुलसीदास, केशवदास, मति राम तथा परमानन्द आदि का आदर्श आपकी काव्य रचना के समक्ष था।[१] परन्तु दशमग्रन्थ में छन्द विविधता के सजीव दर्शन होते हैं।

१- ` कहते हैं हिन्दी के प्रसिद्ध चमत्कारवादी कवि केशव का पुत्र कुरेश अथवा कुवरेश भी ` गुरु गोबिन्दसिंह` के हजूर में रहता था। यदि यह सत्य है तो आते समय वह अपने पिता की प्रसिद्ध रचना ` रामचन्द्रिका ` भी अवश्य लाया होगा। कुवरेश` गुरु दरबार` में रहा हो या न रहा हो,` रामचन्द्रिका` वह लाया हो या कोई और परन्तु ` दशमग्रन्थ` और` रामचन्द्रिका` के छन्दों की तुलना करने से यह निश्चय अवश्य हो जाता है कि ` दशमग्रन्थ` के कवि के सम्मुख यह रचना रही अवश्य है। छन्द विविधता और छन्द-चमत्कार ` रामचन्द्रिका` की एक प्रमुख विशेषता है।--उसमें छन्द-वैविध्य ` रामचन्द्रिका` से कम नहीं।`

--- डा० जय भगवान गोयल गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ०१३५-३६।

गुरु गोबिन्दसिंह जी की कविता में वीरगाथाकालीन और रीतिकालीन प्रवृत्तियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वीर-काव्य में प्रयुक्त चौपाई, दोहा अडिल, पद्धरी आदि मात्रिक और रीति काल्क काव्य में बहुप्रचलित सवैया, रसावल, भुजंग-प्रपात आदि वार्णिक छन्दों का प्रयोग ही अधिक हुआ है।

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने काव्य में युद्ध वर्णन की तीन शैलियों का प्रयोग किया है---

१- वीरगाथा काल की पद्धटिका शैली,
२- भक्ति काल की गेय पद शैली,
३- रीतिकाल की कवित्त सवैया शैली।

दशमग्रन्थ के अध्ययन एवं अनुशीलन से स्पष्ट है कि गुरु गोबिन्द जी छन्दशास्त्र के भी प्रकाण्ड ज्ञाता थे। उन्होंने उस समय के प्रचलित छन्दों का तो प्रयोग किया ही है, साथ ही छन्द क्षेत्र में अनेक नए और मौलिक प्रयोग भी किये हैं। सबसे अधिक प्रयोग `सवैया` छन्द का किया गया है जो कि प्राय: शृंगार ऐसे कोमल विषयों के लिए प्रयुक्त होता है।

दशमग्रन्थ में युद्धों के गतिशील, तीव्र गत्यात्मक और ध्वनिपूर्ण चित्र पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। उन्होंने युद्ध-चित्रण में अनेक छंदों का पुन:पुन: परिवर्तन किया है। `चण्डी चरित्र द्वितीय` जिसका वर्णन सत्रह पृष्ठों में हुआ है और सत्रह ही छन्दों का प्रयोग किया गया है, इस में छन्द-परिवर्तन सत्तावन बार हुआ है। छन्द परिवर्तन द्वारा युद्ध-वर्णन में जहां सजीवता आई है, वहां दशमग्रन्थ के कवि का काव्य-कौशल भी प्रकट हुआ है।

जिस समय दशम ग्रन्थ की रचना हुई, उस समय हिन्दी में कवित्त एवं सवैया आदि बहुत लोकप्रिय छन्द थे। दशमग्रन्थ में `पउड़ी` का

भी प्रयोग हुआ है। `सिरखंडी` छन्द दशमग्रन्थ की अपनी एक विशेषता है। इसमें उनकी स्वतन्त्र प्रकृति के दर्शन होते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने इसका प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। पंजाबी साहित्य में इस समय `वार` पद्धति का भी बड़ा प्रचलन था। दशमग्रन्थ में `वीर मगऊती` (भगवती) लिखकर इसका प्रतिनिधित्व किया गया है।

पहले भी कहा जा चुका है कि दशमग्रन्थ की रचनाओं में मात्रिक और वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रयुक्त छन्दों का विवरण प्रस्तुत है---

बचित्र नाटक (अपनी कथा) :-

मात्रिक:-अडिल्ल, चौपाई, छप्पय, त्रिभंगी, दोहा, पाधड़ी सवैया। वार्णिक -- तोटक, नराज, भुजंग प्रयात, रसवाल, सवैया।

चण्डी चरित्र (उक्ति विलास):-

मात्रिक-- दोहा, पुनहा, सोरठा ।

वार्णिक-- कवित्त, तोटक, रेखता।

चण्डी चरित्र (द्वितीय):-

मात्रिक-- चौपाई, दोहा, मधुमार, बिजै, संगीत मधुमार, सोरठा।

वर्णिक-- तोटक, नराज, जराज वृद्ध, बेली विद्रम, भुजंग-प्रयात, मनोहर, रूआमल, रसावल, संगीत पद्धटिका, संगीत भुजंग प्रयात।

रामावतार:-

मात्रिक-- चौपाई, कलश, गीतमालिती, चम्बोला, छप्पय त्रिभंगा, पद्धारि, बहड़ा, अमृतगति, मकरा, मोहिनी, बिजै, सिरखंडी, सुखदा, सोरठा, संगीत छप्पय ।

वर्णिक-- फूलना, फूला, तारका, तिलकडिया, अक्श, अजबा, अनका, अनाद, अनूप, नराज, अरुपा, अपूरब, अलका, कुसुम बिचित्र अडूहा, भुजंग प्रयात, उगाथा, उगाघ, उर्टकण, कवित्त, कंठा-भूषाण, चाचरी, तिलका, तोटक, त्रिगता, त्रिणणाण, दोधक, नाग सरुपनी, अर्द्ध नराज, नवनायक, बिराज, मधुरधुनि, मनोहर, रुआमल, रसावल, समानक, सवैया, सरस्वती, संगी पधिसटका, दोहा।

कृष्णावतार :-

मात्रिक-- अडिल, चौपाई, कुप्पय, दोहा, पद, सोरठा।
वार्णिक-- कवित्त, फूलना, तोटक, सवैया।

निहकलंकी अवतार:-

मात्रिक-- अतिमालती, आभीर, अडिल, एला, कुंडलिया, गाहड, गीत मालिती, धत्ता, चतुष्पदी, चौपाई, तिलोकी, दोहा, नवषदी पदमावती, पद्धरी, मधुमार, माधो, मोहन मारद, सिरखंडी, सुप्रिया, सोरठा, हरिगीता, हरि, हंसा, तोमर, दोहरा।

वार्णिक-- असत्रा, अक्खा, अजा, अनहद, अनूप, नराज, कुमार ललित, कुलका, कृपानकृत, चाचरी, उद्‌मुल, किलका, चंचल, तरनराज तारक, तोटक, त्रिड़का, नाग सरूपनी, पाधिष्टका, पाधरी अर्द्ध, पंकज वाटिका, बान तुरंग, विशेषाक बिराज, बिधुप, नराज, भगवती, भड़थुआ भुजंग प्रयात, भवानी, मथान, रमान, रावणवाद, रसावल, समानका, सवैया, सुखदावृद्ध, संगीत भुजंग प्रयात, हरिबोलमना।

रुद्रावतार :-

मात्रिक-- चौपाई, कुप्पय, तोमर, दोहरा, पद, पद्धरी, मधुमार, मोहन, मोहनी, संगीत।

वार्णिक -- अचकडा, अनूप, नराज, कुलका, कृपानकृत चरपट, तारक, कवित्त, नराज, विचित्रपद, भगवती, भुजंगप्रयात, रुणझुण, रुआमल, रसावल, सवैया।

शस्त्रनाममाला :-

मात्रिक-- अडिल, चौपाई, छन्द (तोमर), छन्द हरिगीतिका, दोहा, सोरठा ।

वार्णिक:- रुआमल ।

चरित्रोपाख्यान:-

मात्रिक-- अडिल, चौपाई, तोमर दोहा, विजय, सोरठा।।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने काव्य में सभी जातियों और भाषाओं के छन्दों का प्रयोग किया है, जिनमें से प्रमुख प्राकृत वर्णिक और मात्रिक हैं। मकरा, रेखता आदि छन्दों काप्रयोग उनके फारसी-प्रेम का द्योतक है। वे इन सब शैलियों का एकत्र प्रयोग करके एक नया युग प्रारम्भ करने जा रहे थे। दशमग्रन्थ में कुल अठारह हज़ार पद्य हैं। बहुत से ऐसे छन्द हैं जिनका प्रयोग तीन सौ बार से भी अधिक हुआ है। वीर काव्य के लिए चौपाई, दोहा, अडिल और पद्धरी आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। रीतिकाल में प्रचलित छन्द सवैया, भुजंग प्रयात, रसावल वर्णिक छन्दों का भी यथेष्ट प्रयोग किया गया है।

वीरगाथा की प्रमुख शैली पद्धटिका शैली है, जिसका दशमग्रन्थ में बड़ी ही कुशलता से प्रयोग हुआ है। भक्ति काल की गेय पद शैली का तथा रीति काल की सवैया कवित्त शैली का बहुत ही सुन्दर प्रयोग भक्ति के लिए तो हुआ ही है, युद्ध वर्णन में भी इनका प्रयोग गुरु-कवि की विशिष्ट देन है।

दशमग्रन्थ की छन्द-योजना पर टिप्पणी करते हुए डा०

महीपसिंह लिखते हैं-- गुरु गोबिन्दसिंह की छन्द पद्धति में, परम्परा निर्वाह और नवीनता के प्रयोग, दोनों ही के दर्शन होते हैं। उन्होंने रामावतार, चण्डी चरित्र (द्वितीय) के युद्ध प्रसंगों में वीरगाथाकालीन पद्धटिका शैली अपनाई है और अकाल स्तुति, कृष्णावतार के भक्ति-श्रृंगार आदि स्थलों पर भक्तिकालीन पद और रीतिकालीन कवित्त-सवैया शैली का अनुसरण किया है। इसके साथ ही गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने आपको किसी विशेष शैलीगत परम्परा से बांधा नहीं।---- परन्तु जिस विशाल मात्रा में और सफलता के साथ गुरु गोबिन्दसिंह ने सवैये का प्रयोग वीर, रौद्र और भयानक रसों के लिए किया उतना उसके पूर्व एवं पश्चात् के किसी कवि ने नहीं किया। उन्होंने बाईस सौ से अधिक सवैये लिखे जिनमें पन्द्रह सौ से अधिक का प्रयोग उक्त रसों की निष्पत्ति में हुआ।"[२]

उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि संगीत छन्दों का सफल निर्वाह है। वीर-रस के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने, युद्ध की भूमिका दर्शाने, युद्ध की गति को तीव्र से तीव्रतर करने, युद्धोचित ध्वनि उत्पन्न करने तथा वीरों-योद्धाओं की हुंकारों, ललकारों और गर्वोक्तियों से तुल्यता स्थापित करने के उद्देश्य से उन्होंने छप्पय, नराज, पद्धटिका, घाघड़ी, बहड़, भुजंग प्रयात और मधुभार आदि छन्दों के-प्रसंग-में-इसका का प्रयोग किया है। कहीं पर तो यह ध्वनिप्रियता के कारण मात्र शब्द-जाल भी बन कर रह गया है। मगर युद्ध के प्रसंग में इसका भी विशेष महत्व है।

भाषा-शैली :-

भाषा भावों का वाहन है। काव्य में भाषा का विशेष महत्व है क्योंकि इसी के द्वारा कवि अपने भावों को सहृदयों तक संचरित करता है। भाषा की प्रेषणीयता का यह गुण काव्य का प्राण है। भाषा पर समुचित अधिकार रखने वाला कवि ही अपने विचारों और भावों की बलवती धारा को अबाध गति से, स्वेच्छा से प्रवाहमान कर सकता है।

२- गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ ३२१-२२ ।

दशमग्रन्थ की भाषा का सबसे बड़ा गुण इसकी सम्प्रेषणीयता और उदात्तता ही है। गुरु जी ने अपनी स्वल्पायु में ही ब्रज भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था, ब्रज भाषा ही उस समय की काव्य-भाषा भी थी। उनका शैशव बिहार प्रान्त में शुरु हुआ, जहां मैथिली तथा ब्रज का एकच्छत्र राज्य था। जब वे पंजाब में आए तो दीर्घकालीन गुरु-परम्परा से सामान्यतया तथा पिता श्री गुरु तेगबहादुर द्वारा उनकी ब्रज-भाषा विशेष रूप से परिमार्जित तथा परिकृत हुई। फारसी तत्कालीन राज्य-भाषा थी, अत: नित्य प्रति शाही नये-नये फरमानों, राजकीय दमन-नीति तथा राजकीय मुसाहिबों-कर्मचारियों आदि के साथ आत्म-साक्षात्कार होने के कारण आपने फारसी-अरबी तथा उर्दू की परम्परा का भी यथोचित ज्ञान प्राप्त कर लिया। पंजाब के सीधे-सादे किसान-सैनिक तो उन का `खालसा` रूप में उनका इष्ट ही था, अत: उनकी सरल और निष्कपट पंजाबी भाषा का प्रभाव भी सहज स्वाभाविक था। वे अपना वीरत्व का गुरु-मन्त्र जन-जन में प्रचारित करना चाहते थे और उनमानस तक पहुंचने के लिए उस समय की देश की जन-भाषा (जो काव्य भाषा भी थी) ब्रज-भाषा को ही उन्होंने विशेष रूप से अपनाया।

ब्रज-भाषा के अतिरिक्त, संस्कृत ग्रन्थों की शैली का अपनाया जाना भी स्वाभाविक ही था। उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना के आरम्भ में तथा अन्त में संस्कृत ग्रन्थों के परम्परागत `अथ` तथा `इति` को सहर्ष स्वीकार किया है, यथा `अथ बिपन गृह गोप पठैवो`, `इति श्री दसम सिकंध बचित्र नाटके ग्रन्थे कृष्णावतारे---- ।` आदि। इसके अतिरिक्त संस्कृत की तत्सम प्रधान शब्दावली तथा तद्भव रूप भी सर्वत्र उपलब्ध हैं जैसे, पन्नग, चपला, तम, कानन, स्थावर, जंगम, सर, हम, गज, जलज, मम, सुत। ऐसे संस्कृत के वाक्यांशों, संधियों तथा विभक्तियों का भी पर्याप्त प्रयोग दशमग्रन्थ में हुआ है। जहां पर ईश-वन्दना है, या देवी की स्तुति है, वहां संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

१- कंचन सो तन खंजन से दृग कंजन की सुख मास कुची है ।
लै करतार सुधा कर मै मध मूरत सी अंग अंग रची है।।[३]

२- क्रीन महा दिज दीन दसा लख दीन दिआल रिसाव हगे ।
खग काढ अभंग निसंग हठी रण रंग तुरंग नचावहगे ।।[४]

३- खग खंड बिहंडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं ।।
भुज दंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमंडं भान प्रभं ।।
सुख संतां करणंह दरणं किल बिख हरणं असि सरणं ।।
जै जै कारण सृस्ट अबारण मम प्रति पारण जै तेगं ।।[५]

अर्द्ध तत्सम शब्द :-

ऐसे शब्दों का प्रयोग उच्चारण की सरलता के लिए किया जाता है। नीचे कुछ शब्द इसी प्रकार हैं ---

बिस्व (विश्व), मरन (मरण), हरन (हरण), प्रकास (प्रकाश), निसा (निशा), पुरख (पुरुष), सरूप (स्वरूप), ससि (शशि) पउन (पवन), संजम (संयम) आदि।

तद्भव शब्द :-

तद्भव शब्दों का प्रयोग तो बहुत ही बड़ी संख्या में हुआ है। तद्भव शब्द जन-साधारण की ही देन है। इन शब्दों का निर्माण जनता की प्रकृति, सुख-दुख तथा स्वभाव के अनुसार होता है। यथा:--

दिजन, पुखरा, धेन, प्रउवन, मामन, अमी, अही, स्रोनत प्रिग, मगनी, अवनी, दादर, बारन, जम्बक, सलभा, सिंधर, उपरोक्त

३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ८१ । ४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५८१ ।
५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६ ।

शब्द दशमग्रन्थ में भरे पड़े हैं।

प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द :-

तद्भव शब्द प्राकृत और अपभ्रंश में अपना रूप परिवर्तित करके ब्रजभाषा में आये थे। दशमग्रन्थ में कुछ ऐसे भी शब्द मिलते हैं जो प्राकृत और अपभ्रंश में मूल रूप में प्रयुक्त किये गये हैं, जैसे--

जस, बिज्ज, सूरज, जुद्ध, दुज्जन, अव्वनि, किसन, बरमंडा, प्रतक्ख, ससत्र, खग्ग, जग्ग, जोस, हत्थ।

इन शब्दों का प्रयोग युद्ध-वर्णन में विशेषतया हुआ है।

अरबी-फारसी के शब्द :-

गुरु गोबिन्दसिंह फारसी के विद्वान् थे। औरंगज़ेब के नाम लिखा हुआ `जफ़रनामा` इस बात का प्रमाण है। अरबी फारसी के कुछ शब्द मुसलमानों का शासन होने के कारण देशी भाषाओं में आ गए थे। जिस प्रकार `शहंशाह` का प्रयोग `साहानुसाह` के रूप में हुआ है। इसी प्रकार सिफत, अरदास, फिराक, खूबी, गनीमुल, गरीबुल आदि। संस्कृत और फारसी शब्दों की संकर-शैली भी कम नहीं है--

अनेकुल तरंग हैं, अभेद हैं अभंग हैं ।
अजीजुल निवाज हैं, गनीमुल खिराज हैं।।[६]

पंजाबी का प्रभाव :-

गुरु गोबिन्दसिंह जी की मातृभाषा पंजाबी थी। उनके जीवन का अधिकांश समय पंजाब में ही व्यतीत हुआ। आसपास का वातावरण भी पंजाबी से ही प्रभावित था। `चंडी दी वार` उनकी पंजाबी रचना है।

६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७ ।

नवीन शब्द :-

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने ब्रज, फारसी, अरबी, पंजाबी आदि शब्दों का प्रयोग तो किया है। इसके अतिरिक्त अनेक नवीन शब्दों का भी प्रयोग किया है। तलवार से उन्होंने ईश्वर के लिए चार शब्द बनाए हैं-- १- असिपान, २- असिधारी, ३- असिध्वज, ४- असिकेतु। इसी प्रकार धुज (ध्वज) से धुजनी (सेना) का अर्थ लिया है।

अनुस्वार का प्रयोग :-

गुरु गोबिन्दसिंह जी के अनुस्वार का प्रयोग बड़ी प्रचुरता से किया है। इसका प्रयोग संस्कृत के तत्सम, अर्द्ध-तत्सम तथा तद्भव के साथ तो किया ही है, पंजाबी, अरबी, फारसी को भी अछूता नहीं रहने दिया।

तत्सम शब्द :- मोहं, कृपालं, दयालं, कृपाणं, ज्वालं, करालं, जन्मं आदि।

अर्द्ध-तत्सम शब्द :- अभेसं, सरूपं, सूरं, थलयं, महेसं, जोगं आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियां :-

काव्य की भाषा अधिक सार्थक, भावपूर्ण और आकर्षक बनाने के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से भाव अधिक प्रभावशाली लगते हैं। कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति लाक्षणिक अर्थ में बड़ी सरलता से करता है। कृष्णावतार में से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं--

कोप भरना: हरिसिंघ जब तज खेत चल्यो।
रन सिंघ उठयो पुन कोप भरयो।।१०६४।।

ओंठ चबाना: मारके बीर घने रन में।
बहु कोप कै दातन ओठ चबावै।।११६६।।

जो गरजते हैं सो बरसते नहीं :

जानत हो घनक्कवार को गरजत बरस न आइ।।१३०१।।

परलोक सिधारना : श्री सकलेस बली घन है हरि सो ।
लरि के परलोक सिधारयो ।।१३३६।।

भूमि गिरना :- भूमि गिरयो मर कै जब ही मुसली अपना तब संख बजायो।
।।१३५०।।

अन्त आना : हरि की ओर चले मानो आयो इन को अंत ।।१३७४।।

जूझ मरना :- काहे कऊ जूझ मरो रन में ।
अब लउ न गयो कछु जीअ अहि चेतो ।।१५०४।।

पीठ दिखाना : कंचन को नगु पंसन धारि ।
उठे खडगेस नपीठ दिखावे ।।१६४१ ।

हथियार डालना : एक निहार कै डारि हथियार ।।
भजै बिसम्मार गई सुध साते ।।१७४८।।

पीठ देना:- दै रन पीठ मरे लरकै तिह मास को जम्बक गीध न खाते।।
।। १७४८।।

भुजा ठोकना : रोस भरे भट ठोकि भुजा कबि स्याम कहै अति क्रोधन ह्वै कै।।
।।१८६४।।

ओंठ काटना : दातन सो दाऊ होठ कटि दोऊ नचावत नैन।।२३७५।।

भाषा में गुण :-

दशम ग्रन्थ की भाषा में ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों ही गुण प्राप्त होते हैं परन्तु ओज इसकीभाषा का मूल स्वर है।

ओज :-

ओज का शाब्दिकअर्थ है- तेज, प्रताप और दीप्ति। काव्य के द्वारा मन में उत्साह, वीरता तथा कर्म के भाव जागृत होते हैं। इसे ही ओज कहते हैं। यह भाव वीर, रौद्र, भयानक और बीभत्स रसों में पाया जाता है। इसके लिए टवर्ग के ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष आदि अक्षरों का तथा दीर्घ समास का प्रयोग होता है। कर्कश, क्लिष्ट वर्णों का भी प्रयोग होता है। दशमग्रन्थ की सभी रचनाओं में इसके दर्शन होते हैं। बचित्र नाटक चण्डी चरित्र, रामावतार, कृष्णावतार तथा निहलंकी अवतार में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं।--

१- त्रिड़ड़ि ताजी, बिड़ड़ि बाजी, ड्रिड़ड़िड़हाथी,
ड्रिड़ड़िड़ साथी ।
ड्रिड़ड़िड बाणं, ड्रिड़ड़िड़ जुआणं, ड्रिड़ड़िड़ क्रोरैं,
ड्रिड़ड़िड़ जोरैं ।।[९]

२- जुटटे वीरं, कुटटे तीरं, टुक्की ढालं, कोहै कालं ।।
ढके ढोलं, बके बोलं, कच्छे सस्त्रं, अच्छे अस्त्रं ।।[१०]

ऐसे ही ओजपूर्ण शब्दों से दशमग्रन्थ भरा पड़ा है। शब्द-चयन एवं शब्द-योजना भी इस कार्य-कौशलता से की गई है कि अनायास संगीत फूट पड़ता है। युद्ध का वातावरण उपस्थित हो जाता है, वीरों के हृदय में उल्लास तथा कायरों के मन में अधैर्य उत्पन्न हो जाता है। कवि के शब्द भी तीर, तलवार, भाले, बरछे के समान युद्ध-कार्य के लिए काव्य-क्षेत्र में निकलते हैं और शब्दावली की विविधता प्रचुरता एवं प्रभावोत्पादकता के साक्षी हैं।

९- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५९८ ।

१०- दशमग्रन्थ, पृष्ठ २२९ ।

प्रसाद :-

प्रसाद का अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना। जिस कविता को सरलता से समझा जा सके, जिसमें में कोमलता का गुण हो, वह प्रसाद गुण होता है। यह गुण हमारे दशमग्रन्थ के कवि की कविता में पूर्ण रूप से विद्यमान है।

माधुर्य :-

माधुर्य का अर्थ है मधुर होना। इससे मन प्रसन्न होता है। यह प्राय: श्रृंगार, करुण और शान्त रस में पाया जाता है। दशमग्रन्थ में कृष्णावतार, चरित्रोपाख्यान में इसके अनेक उदाहरण है।

यद्यपि दशमग्रन्थ में प्रसाद, एवं माधुर्य गुण भी पर्याप्त है, मगर ओज इस का प्राण है और मुख्य स्वर भी। यह ओज गुण उस युद्ध के वातावरण, उथल-पुथल के युगानुरूप चित्रण में, गुरु गोबिन्दसिंह की हिन्दी काव्य को एक विशिष्ट देन है।

शब्द शक्तियां :-

भारतीय काव्य शास्त्रियों ने काव्य में भाव व्यक्त करने के लिए तीन प्रणालियां मानी हैं, जिन्हें शब्द-शक्तियां कहा जाता है। पहली प्रणाली अभिधा की है। इसमें कवि सीधे सादे ढंग से अपने विचारों को व्यक्त करता है। ऐसे स्थानों में भावों में कोई क्लिष्टता नहीं होती है। ऐसी शक्तियों के केवल ऊपरी अर्थ ही कवि का लक्ष्य होता है। कुछ ऐसे स्थल द्रष्टव्य हैं--

१- झूझ परी चतुरंग चमूं तह अउनत के सु चले परनारे।।[११]

२- बान कमान किपान गदा गहि मार रथी बिरथी करि डारो।[१२]

११- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४३५ ।

१२- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४०८, पृष्ठ छंद ११४७ ।

३- असवार हजार पचास हने रथ काटि रथी बिरथी सुकरे ।।[१३]

उपरोक्त उद्धरणों में कवि ने सेनो करे, बाण, कृपाण आदि का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक किया है। इससे कथा में गति आती है।

२- लक्षणा शक्ति :-

अभिव्यंजना की दूसरी प्रणाली लाक्षणिक होती है। इसके द्वारा मुख्य अर्थ के साथ-साथ उसके लक्षणों के अनुसार कुछ नवीन अर्थों का भी आभास होता है। इसका प्रयोग काव्य को सुन्दर बनाने में अधिक हुआ है।

३- व्यंजना शक्ति :-

अभिधा के द्वारा मुख्यार्थ का ज्ञान होता है। लक्षणा द्वारा लाक्षणिक अर्थ का बोध होता है। जहाँ ये दोनों अर्थ करने में असमर्थ हैं वहाँ व्यंजना शब्द शक्ति कार्य करती है। इसके द्वारा किसी अलंकार की सुन्दरता का प्रदर्शन होता है। भाव को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया जाता है। आचार्यों ने कविता में इसके द्वारा सौन्दर्य की सिद्धि मानी है। दशम ग्रन्थ में ऐसे अनेक स्थान मिलते हैं--

नग मानहु नाग बडे तिह मै मकुरी पुनि पैदल की बल जेती।।
चक्र मनो रथ चक्र बने उपजी कबि के मन में कही तेती ।।
है मरु बोचन तुलि मनो लहरै बहरै बरछी दुत सेती ।।
सिंघ किधौ दल सिंघ जरा रहिगो मथुरा तिह मध बरेती।।[१४]

युद्ध क्षेत्र में गर्वोक्तियाँ भी मूलतः व्यंजना शक्ति के अन्तर्गत आती हैं, यथा--

---

१३- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४०८, छंद ११४६ ।।

१४- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ३६३, छंद,१०३६ ।।

जात भजे दजुवी प्रतिना रन मै मुसली इह भाँति पचारे ।।
क्षत्रनि के कुल में उपजै किह भाँति परावत हो बलु हारे ।।
आयुध छाड़त हो कर ते डरु मान घनो बिन ही अरि मारे ।।
त्रास करो न कछू रन में जब लउ तन में थिर प्रान हमारे ।।[१५]

अप्रस्तुत योजना :-

साहित्य मानव जीवन की आन्तरिक भावनाओं का दर्पण है। कवि अपनी आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अलंकार, गुण, रीति आदि साधनों का अवलम्ब होताहै।

"इसी से मानव जीवन में आभ्यन्तर से बहुत गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि भावों के अभिव्यंजन का विशेष प्रकार ही अलंकार है।"[१६]

भामह, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकार को काव्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया। भामह ने सर्वप्रथम प्रयोजन, काव्य भेद, रीति, गुण आदि के विस्तृत विश्लेषण को अलंकार ही माना है।[१७]

दंडी के मतानुसार--"काव्य के शोभाकारक सभी प्रकार के धर्म अलंकार हैं।"[१८]

हिन्दी में रीति युग के प्रवर्तक आचार्य केशवदास के मतानुसार अलंकार के बिना कविता का कोई अर्थ ही नहीं--

---

१५- दशमग्रन्थ, पृष्ठ ४१८, छंद १२२७ ।
१६- पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, मिश्र, पृष्ठ १ ।
१७- रसवत अलंकार की परिभाषा- रसवद्दर्शी स्पष्ट श्रृंगारादि रसं यथास- काव्यालंकार ।
१८- काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते । काव्यादर्श ।

`भूषन बिनु नहिं राजई कविता बनिता मित्त।`

गुरु गोबिन्दसिंह जी का काल भी रीति काल था। उस समय अलंकार और छन्द के बिना कविता को कविता कहा ही नहीं जाता था। अत: कवि पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था।

दशम ग्रन्थ में अप्रस्तुत योजना के अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं---

शब्दालंकार :५

इन अलंकारों में उचित शब्दों की योजना से काव्य में लय और संगीतात्मकता उत्पन्न होती है। अनुप्रास हमारे कवि का प्रिय अलंकार है।

१- छेदानुप्रास:-

इस अलंकार में अनेक वर्णों की आवृत्ति दो बार होती है--

रावन रोस भरयो रनमो गद्धि बीस दूं बाहि हथयार प्रहारे ।।
भूमि अकास दिसा बिदिसा चकि चार रुके नही जात निहारे।।[१९]

इसमें र, ब, द, च वर्णों की आवृत्ति द्रष्टव्य है।

२- वृत्यानुप्रास :-

इस अलंकार में एक ही वर्ण अथवा अनेक वर्णों की क्रमानुसार कई बार आवृत्ति होती है--

रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए ।
बाज बजी गजराज घने रथ राज बने करि रोस उड़ाए ।।
जे दुख देह कटे सीअ के हित ते रन आज प्रतच्छ दिखाए ।।
राजी वलोचन राम कुमार घनो रन घाल घनो घर घाये ।।[२०]

१९- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २३८, छंद ६१९ ।
२०- -वही- पृष्ठ २३७, छंद ६१४ ।

इस में र, ब, घ की पुनरावृत्ति लक्षित होती है।

३- पुरुषावृत्ति :-

इसमें ओजपूर्ण वर्णों (ट, ठ, ड, ढ) की तथा संयुक्ताक्षरों की आवृत्ति होती है--

१- डकंत डाकनी हुलं ।।
प्रमंत बाज कुंडलं ।।
२- ढलंत ढाल डढलं ।।
खिमंत तेग निरमलं ।।
३- मम्मक भूत मै करं ।।
चच्चक चडदने चकं ।। २१

ट की आवृत्ति--

टुटटर टीक टुटटे टोप, मग्गे भूप मन्नी धापे ।। २२

३- श्रुत्यानुप्रास :-

इसमें एक ही उच्चारण स्थान से उच्चरित वर्णों की आवृत्ति होती है। इससे काव्य में माधुर्य और शक्ति की सृष्टि होती है--

कउन खगेस गनेस दिनेस निसेस निहार कै मोन भजै है ।।
सेस जलेस सुरेस धनेस जू जउ अरि है तऊ मोह न छैहै है।। २३

२१- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २३३, छंद ५७०, ५७१, ५७२ ।
२२- -वही- पृष्ठ २३२, छंद ५५५ ।
२३- -वही- पृष्ठ ४२१, छंद १२५०।

४- अन्त्यनुप्रास :-

इस अलंकार में पद के अन्तिम चरण में स्वर-व्यंजन की समानता होती है। इसके अनेक भेद हैं-- यथा :- सर्वान्त्यानुप्रास, समान्त्यानुप्रास, विषमान्त्यनुप्रास, समविषमान्त्यनुप्रास आदि आदि। इनमें क्रमश: सभी चरणों के अन्त में वर्णों में समानता और दूसरे और चौथे चरणों के अन्त में वर्णों में समानता, प्रथम तथा तृतीय चरणों के अन्त के वर्णों में समानता पायी जाती है।

समान्त्यनुप्रास :-

लुत्थ जुत्थ बित्पुर रही रावण राम विरुद्ध ।।
हत्यो महोदर देखकर, हर अर फिरयो सक्रुद्ध ।।[२४]

विषमान्त्यनुप्रास :-

देवन थापिबो राज मघ कैठभ कौ मारि कै ।।
दीनों सकल समाज बैकुंठगामी हरि भये ।।[२५]

लाटानुप्रास :-

इसमें शब्द और अर्थ एक ही रहते हैं परन्तु अन्य पद के साथ अन्वय करते ही उसके अर्थ में भिन्नता आ जाती है:

अखरब गरब जे मरे सु सरब गरब घाल हैं ।।
फिराइ क्रत्र सीस पै क्रतीस क्रोन पाल हैं।।[२६]

अनुप्रास अलंकार के ये कतिपय उदाहरण सयत्न चुने गए हैं। इनके प्रति कवि का विशेष मोह कहीं भी नहीं दीख पड़ता। जहां भी ये आए हैं, सहज, स्वाभाविक रूप से ही आ गए हैं। इसीलिए ये कानों को कटु नहीं, अपितु कर्ण-मधुर लगते हैं।

२४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २३६, छंद ४६६ ।
२५- -वही- पृष्ठ ७५, छंद १२ ।
२६- -वही- पृष्ठ १६१, छंद ३६ ।

यमक अलंकार :-

इसमें एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है। यथा---

रुद्र ह्वै रुद्र जबै रन में कवि स्याम भने रिस नाद बजायो।।
घूर न काहू ते नेकु टिक्यो गयो भाज गये न रती कु ढिढ़ायो।।[२७]

श्लेषालंकार :-

जहां एक शब्द से अभिधा के द्वारा दो या दो से अधिक अर्थों का ज्ञान हो उसे श्लेषालंकार कहते हैं---

कहै कवि स्याम प्रान आगे कछू धसत ऐसे,
जैसे नर पैर पैरे कारी पै धरत है ।।[२८]

उक्त पद में `कारी` श्लेष है। इसका अर्थ `गार` अथवा पर्वतों पर गिरने वाली `बर्फ` भी हो सकती है।

वीप्सालंकार :-

जहां प्रभाव सृष्टि के लिए शब्दों का बारम्बार प्रयोग किया जाए वहां वीप्सालंकार होता है--

साज साज कै सबै सलाज वीर धावहीं ।।
बूझ बूझ कै मरैं प्रलोक लोक पावहीं।।
घाय घाय कै हठी अघाय घाय मेलही।।
पहस पाव ना चलैं अरेल वीर ठेलही ।। [२९]

२७- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ-५३१, छंद २२२० ।
२८- -वही- पृष्ठ ४८४, छंद १८१६ ।
२९- -वही- पृष्ठ ५६५, छंद ३८४।

अर्थालंकार :-

अर्थ को लक्षित करने वाले अलंकार अर्थालंकार की कोटि में आते हैं। शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों को अधिक महत्ता दी गई है। इन्हीं के द्वारा काव्य के मूल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। दशम ग्रन्थ में अर्थालंकार भी सहज रूप से ही आ गए हैं। उपमा अलंकार उनको बहुत प्रिय हैं। इसका प्रयोग बड़ी व्यापकता से किया गया है। कवि विविध पात्रों और वस्तुओं की तुलना के लिए सुख्यात उपमानों का चयन करता है। इस प्रकार दशम ग्रन्थ के अलंकारों में एक नया निखार आ गया है।

उपमा अलंकार :-

१- चंड संभार तबै बलु धारि लहउ गहि नारि धरा पर मारिउ।।
जिउ धुबीआ सरता तट जाइकै, लै पट को पट साथ पछारिउ।।[३०]

२- चक्र चलाय दहवो करि तै, सिर सत्र को मार बुदा करि दीनो।।
प्रकृत धार चली नभ को, जनु सूर को राम जलांजल दीनो ।।[३१]

३- अउर दलु भाजिओ जैसे पउन हूं ते भाजे ।।
मेघ इन्द्र दीनो राज बलु आपनो सो धारिकै ।।[३२]

४- फेरि कै घेरि लहउ रन माहि सु मुंड को मुंड बुदा करि मारिओ ।
ऐसे परिउ धरि ऊपर जाइ जिउ बेलहि ते कदुआ कटि डारिओ।।[३३]

यह अलंकार कवि को अत्यन्त प्रिय है। इसका वर्णन करते हुए वह अघाता नहीं।

३०- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ७७, छंद ३४ ।
३१- -वही- पृष्ठ ७८, छंद ४६ ।
३२- -वही- पृष्ठ ७६, छंद ५२ ।
३३- -वही- पृष्ठ ८५, छंद ११४।

रूपकालंकार :-

इस अलंकार में प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का आरोप किया जाता है। दशम ग्रन्थ में युद्धभूमि में वीर योद्धाओं द्वारा होली खेलने का दृश्य रूपकालंकार के सुन्दर उदाहरण हैं--

बान चले तेई कुंकम मानहु मुठ गुलाल की सांग प्रहारी ।
ढाल मनो डफ माल बजी हथ लाल बन्दूक छुटे पिचकारी।
प्रान मरे पट बीरन के उपमा जन धरि के केसर डारी ।
खेलत फाग कि बीर करे नवलासी लीए करवार कटारी ।।[३४]

युद्धभूमि में बाणों की वर्षा हो रही है मानों होली खेलने वाले मित्र एक दूसरे पर कुंकम डाल रहे हों। वे परस्पर बरछे चलाते हैं मानो गुलाल की मुट्ठियां भर भर कर एक दूसरे पर फेंक रहे हों। बन्दूक से गोली चल रही है मानो एक दूसरे पर पिचकारी से रंग डाल रहे हों। वीर-योद्धाओं के वस्त्र रक्त से तर हुए इस प्रकार प्रतीत होते हैं मानों उन्होंने एक-दूसरे पर केसर डाला हो। उनके हाथों में पकड़ी हुई तलवार कटार मानों पुष्पों की छड़ियां हैं। इस तरह यहां युद्धभूमि में योद्धे होली खेलते हुए दृष्टि-गत होते हैं।

उत्प्रेक्षालंकार :-

जब किसी वस्तु के गुण, रूप की अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए सर्वसाधारण भाषा असमर्थ सिद्ध होती है तब कवि चमत्कारपूर्ण भाषा का सहारा लेता है। अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए वह उसमें कल्पना का भी समावेश करता है। इस अलंकार में कल्पना द्वारा प्रस्तुत विधान के समान अप्रस्तुत विधान की रचना की जाती है। यहां पर यह स्पष्ट करना

३४- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४३५, छंद १३८५।,

होगा कि उपमा अलंकार में उपमान और उपमेय की तुलना होती है। रूपकालंकार में दोनों का सादृश्य होता है। उत्प्रेक्षा अलंकार में उपमेय में ही उपमान की संभावना की जाती है--

१- जुध्धमयो अति ही सु तहां तब श्री ब्रिजनायक चक्र संभारयो।
मारत हउ तुहि ए रे क्रिपाल मै स्याम मनै हम स्याम पचारयो।।
क्रोर सुदरसन देत भयो सिर सत्र को मार जुदा करि डारयो ।
मानहु कुहार लै तागहि को चक ते फुन बासन काट उतारयो।।[३५]

अतिशयोक्ति :-

जहां किसी विषय का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया गया हो। कवि ने इस अलंकार का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है--

१- प्रउन समूहि परिओ तिह ठउर तहाँ कवि ने जसु इउ मन चीनो ।
सात हूं सागर को रचि कै बिधि आठवां सिंध करिओ है नवीनो।।[३६]

उक्त उद्धरण में कवि कहता है कि युद्धभूमि में इतना रक्त ही रक्तदिखाई देता था मानो ब्रह्मा ने आठवाँ रक्त का समुद्र ही बना दिया हो।

संदेहालंकार :-

काव्य में जब किसी वस्तु को देखकर यह पता न लगे कि मूल वस्तु कौन सी है। इसमें मन दुविधा में फंस जाता है --

अंगद है कि हनुजमु है कि मरयो बलभद्र भयानक रोहैं ।।[३७]

विरोधाभास :-

इसमें विरोध न होते हुए भी विरोध का आभास या प्रतीति होती है। दशमग्रन्थ में इसके दर्शन नहीं होते।

३५- दशम ग्रन्थ: पृष्ठ ५४१, छंद २२७०। ३६- दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६३, छं०१८६।
३७- वही- पृष्ठ ३६६, छंद १०५८।

प्रतिज्ञालंकार :-

इसमें प्रतिज्ञा अथवा प्रण किया जाता है--

यौं सुनि कै बतीयां तिह को हरि कोप कह्यो हम युद्ध करैंगे ।
बान कमान गदा गहि कै दोऊ भ्रात सबै अरि सैन हरैं गे ।।
सुर सिवादिक ते न मबै हनि है तुम कउ नहि चूक मरैंगे ।
मेरु हलै सुरतहै निधि बार तऊ रन की छित ते न टरैंगे ।।[३८]

दशम ग्रन्थ में विभिन्न अलंकारों की छटा इसके काव्य-सौष्ठव की द्योतक है। कहा जा सकता है कि हमारे कवि के सर्वाधिक प्रिय अलंकार उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि हैं, जिनकी यहां भरमार है। जैसे संस्कृत के कवि कालिदास के विषय में कहा जाता है कि `उपमा कालिदासस्य` इसी तरह गुरु गोबिन्दसिंह उपमा अलंकार के निपुण कवि हैं। उन जैसी सुन्दर, सजीव और व्यवहार्य उपमा स्यात ही कोई अन्य रीतिकालीन कवि दे पाया हो।

दशमग्रन्थ की अलंकार-योजना के विषय में एक अन्य बात यह कही जा सकती है कि वीरता, धैर्य, सौन्दर्य आदि के वर्णन में ये अलंकार सहजतया ही आ गये हैं, इनके प्रति कवि का वैसा मोह कहीं पर भी परिलक्षित नहीं होता जैसा कि उस युग की प्राय: सामान्य प्रवृत्ति थी। इनकी अलंकार योजना में सजीवता, रोचकता, स्वाभाविकता, सरसता तथा व्यावहारिक का आकर्षक संचार हुआ है। अलंकार उनके काव्य का साध्य कभी नहीं रहा, प्रत्युत् साधन-मात्र रहा है। इनके द्वारा भावों में परिष्कार, सुरुचि तथा सौन्दर्य एवं उदात्तता आई है, पात्र तथा वस्तुओं के गुण, स्वभाव तथा रूप आदि का अत्यन्त सफल चित्रण सम्भव हो सका है।

३८- दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४१३, छंद ११८७ ।

वीर-रस के अनुरूप भावों की सफल अभिव्यंजना हेतु चुने गए गुरु कवि के उपमानों के उदाहरण युद्ध-वर्णन प्रसंग में यथेष्ट रूप से दिए जा ही चुके हैं। यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि कवि की अलंकार योजना में उन्हीं उपमानों का विशेष उल्लेख हुआ है, जो उत्साह में वृद्धि करते हैं, युद्ध में गति लाते हैं, जिनसे वीर पुरुषों के मनमें मोह तथा उल्लास उत्पन्न होता है। अत: कहा जा सकता है कि उनकी अलंकार योजना उनके लक्ष्य-वीर रस की निष्पत्ति के सर्वथा अनुरूप ही की गई है।

बिम्ब योजना :-

भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है। शिल्प में अलंकारों की योजना, प्रतीक, बिम्ब और अप्रस्तुत विधान का समावेश होता है। कविता में भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए अप्रस्तुत विधान का सहारा लिया जाता है। उसी कल्पना की एक महत्वपूर्ण क्रिया बिम्ब है।

बिम्ब को हम शब्द-चित्र भी कह सकते हैं। मुख्य रूप से बिम्ब की तीन विशेषताएं हैं---

१- चित्रात्मकता, २- ऐन्द्रियता, ३- साम्य-सौन्दर्य।

सफल कवि वही है जो अपनी काव्यानुभूति को पाठक के मन में चित्रवत् उपस्थित कर सके। दशमग्रन्थ में कवि में यह निपुणता विपुल रूप से विद्यमान है। कवि अनेक स्थलों पर भाव, पदार्थ, एवं दृश्य आदि का सजीव चित्र खींचने में सफल हुआ है।

(क) दृश्य बिम्ब :-

इउ सुनि कै बतीया ब्रिज नाइक कोप कीवो कर चक्र संभारयो।।
नैक प्रमाइकै पान बिसै बलि कै अरि ग्रीव के ऊपर डारयो ।।

लागत सीस कट्यो तिह को गिर भूमि पर्यो बसु सिआम उचार्यो।
तार कुंभार लै हाथ बिरवै मनो चक्र तै कुंभ तुरंत उतार्यो ।।[३९]

उपरोक्त बिम्ब हमारी इन्द्रियों से सम्बंधित है।

(ख) भाव बिम्ब :-

ये बिम्ब हमारे राग-बोध से सम्बन्ध रखते हैं। दशम ग्रन्थ में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। इससे कवि की चित्रांकन-शक्ति का परिचय मिलता है--

पान कृपान धरे बलवान सु कोप के बिज्जुल जिउ गरजो है।
मरे समेत हले गरुए गिर सेस के सीस धरा लरजो है ।।[४०]

(ग) वस्तु बिम्ब :-

इसमें बिम्ब वस्तु अथवा किसी पदार्थ को प्रस्तुत करते हैं। युद्ध में रथ, तलवार, अस्त्र-शस्त्र, कृपाण, कटारी, बरछी आदि इस प्रकार की वस्तुओं काबाहुल्य है। कवि जिन पदार्थों की चर्चा करता है वे पदार्थ वातावरण के साथ उपस्थित होते हैं :--

प्रिथमे संग बान कमान भिरयो बरछी बर लै पुन प्रात मुरारो।।
फेर लयो असि लै कर मै धरा के रिपू को बहु सैब संघारो ।।
फेरि गदा गहि कै सु हते बहुरो जु हते गहि पान कटारो ।।
ह्वै स्वेत यों हल सो दल कों जिम सैल दुह करि झीवर जारो।।[४१]

३९- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ४८०, छंद १७८४ ।
४०- -वही- पृष्ठ ८१, छंद ७५ ।
४१- -वही- पृष्ठ ३९७, छंद १०६७ ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दशमग्रन्थ में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं।

(ब) सान्द्र बिम्ब :-

इसमें कवि संक्षिप्तता पर अधिक ध्यान दे रहा है। कवि गागर में सागर भरने का दुष्कर करता है--

साजयो कवच निखंग धनख बान लै रथ चढयो।।[४२]

कोप कीये सभ सस्त्र लीए कर मै मिल कै तिह पै तब आये ।
भूप निरवंग ते काढ कै बान कमान को तान सु खैंच चलाए ।।[४३]

कटि करी रथ काटि दये बहु बीर हने अति बाज संघारे ।।
घायल घूमत है रन मै कितने सिर भूमि परे धर मारे ।।[४४]

(ड) विवृत अथवा विराट बिम्ब :-

इस बिम्ब में कवि अपनी काव्याभिव्यक्ति सूक्ष्म न करके विस्तार से करता है। अनेक स्थानों पर कल्पना से युक्त कई प्रकार के विराट बिम्बों का नियोजन किया गया है---

सीस कटे कितने रन मे मुख ते तेऊ मार हो मार पुकारैं ।
पउरत बीच कबंध फिरै जह स्याम लरै तिह ओर पधारैं ।

४२- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ३९३, छंद १०३४ ।
४३- -वही- पृष्ठ ४४७, छंद १४९३ ।
४४- -वही- पृष्ठ ४१८, छंद १२३० ।

जो भट आय भिरै इन सों तिन कऊ हरि जानकै घाय प्रहारैं ।
जो गिर भूम परै मरकै कर ते करवारन भू पर डारैं ।।[४५]

कोप भरे अरसाइ परे न डरे हरि सिऊ हथियार करे है ।।
घाय भरे बहु स्रउन झरे अस पान धरे बल कै जु अरे है ।।
मूसल लै बलदेव तबै सभ चावर जिऊ रन माहि हरे है ।।
फेरि प्रहार कीयो हल सों मरि भूम्मि गिरे नही स्वास भरे है।।[४६]

`दशम ग्रन्थ` में बिम्ब वर्णन बड़ी कुशलता से हुआ है। युद्ध क्षेत्र में वीर योद्धाओं का परस्पर युद्ध वर्णन, अस्त्र-शस्त्रों की विशद व्याख्या युद्ध में घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण आदि के वर्णन में कवि की काव्य-पटुता का विशेष परिचय मिलता है।

दशम ग्रन्थ के कर्त्ताका अभिप्राय: तत्कालीन भारतीय जन-जीवन में उत्साह, वीरता, साहस, आत्म-विश्वास, स्वदेश-प्रेमत्र, स्वजाति-प्रेम, अन्याय का सामना करना, साधु जनों की रक्षा करना आदि था, यह बात सर्वथा सत्य है, परन्तु यह भी तथ्य है कि काव्य के सृजन के प्रति काव्य के तत्वों के प्रति, रसाभिव्यक्ति हेतु भी पूर्ण सजग था। यही कारण है कि दशम ग्रन्थ न केवल वीर-रस का वेद ही है, अपितु रीतिकालीन हिन्दी काव्य का यह सर्वश्रेष्ठ वृहदाकार ग्रन्थभी है।

४५- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ३६८, छंद १०७३ ।
४६- दशमग्रन्थ : पृष्ठ ३६६, छंद १०७६ ।

सप्तम अध्याय

दशम ग्रंथ की वीररसात्मक वाणी का युग पर प्रभाव

दशमग्रंथ की वीररसात्मक वाणी का युग पर प्रभाव

दशमग्रंथ के स्रष्टा ने मात्र ब्यालीस वर्ष (सन् 1666- 1708) की अल्पायु में मानव-जीवन के चतुर्दिक विकास में जो योगदान दिया, उसकी तुलना अन्यत्र ढूंढना कठिन है। वे विशाल मुगल शासन के लिये एक ज़बरदस्त चुनौती थी। उन्होंने सहस्राब्दि भारतीय जनता को परम्परागत जड़ता, विलासिता, कापुरुषता, हतोत्साह एवं निराश का जीवन त्याग करके नव प्रेरणा नवस्फुर्ति, नवदर्शन, नवोत्साह, अदम्य शौर्य, कर्मण्यता, वीरता और आत्मोत्सर्ग एवं आत्म-विश्वास का मन्त्र दिया। 'अहिंसा परमो धर्म :' के युगों पुराने बौद्ध दर्शन का अनुगामी होकर भारतीय जन-जीवन पद-दलित, शोषित और दोहित होता आया था। श्री गुरु गोविंद सिंह जी की वाणी परतन्त्र, संत्रस्त, और कलंकित सामान्य जन-मानसि के लिये सर्वथा चिरंतन, जीवंत, व्यावहारिक दर्शन प्रस्तुत करती है। उन्होंने अपने समय के सर्वोच्च मुगल साम्राज्य को ललकारा और अपने देशवासियों के हृदय में आत्म संरक्षण, आत्म-विश्वास, आत्म-नियन्त्र, आत्म निग्रह तथा आत्म बलिदान एवं निर्भयता की प्राण-चेतना की।

यहां यह बात भी स्पष्ट कर देनी समुचित होगी कि उन्होंने अहिंसा का मार्ग त्यागकर हिंसा का मार्ग इसलिये अपनाया कि वे अपने पूज्य

पिता श्री गुरु तेग़ बहादुर जी के शहीदी के प्रतिशोध के भाव से भरे हुये थे। इसे मात्र प्रतिशोध का भाव नहीं समझना चाहिये। अपने कुल्य पिता तथा भारतीय जनता के हृदय-हार श्री गुरु तेग़ बहादुर तथा उनके अनुयायियों भाई प्रतिदास, भाई सति दास तथा भाई दयाला को जिस निर्दयता, कायरता और क्रूरता से शहीद किया गया, उसके प्रति सत्य के एक पुजारी, न्याय प्रेता तथा धर्मावलम्बी के मन में गंभीर रोष, खेद तथा क्लेश पैदा होना सर्वथा स्वाभाविक था। यह मात्र प्रतिशोध अथवा व्यक्तिगत मनोवेदना का प्रश्न नहीं, अपितु सैन्य संगठन और धर्म-युद्ध के उद्देश्य, युगानुकूल तीक्ष्ण दृष्टि से दूर-दर्शिता का ही प्रतिफल है जिसने युग पुरुष गुरु गोबिंद सिंह जी को अहिंसा से हिंसा, अधर्म से धर्म, भक्ति से शक्ति तथा निष्क्रियता से कर्मण्यता की ओर अग्रसर किया। उन्होंने शस्त्र और शास्त्र, भावती तथा भाऊती का संगम किया -

धन्न जीओ तिह को जग में
मुख ते हरि चित में शुध बीचारो।[1]

श्री गुरु गोबिंद सिंह विश्व की उन महान् विभूतियों में से एक हैं जो एक महान् कर्मयोगी थे। वे अपने जीवन-चरित्र (बचित्र नाटक-अपनी कथा) में अपने पूर्व-जन्म, अपने समकालीन समाज तथा अपने पूर्ववर्ती अवतारों द्वारा स्वयं को परमात्मा सिद्ध करके, धर्म का वास्तविक स्वरूप नष्ट-भ्रष्ट करके अन्यान्य धर्म-प्रवर्तन करने की भर्त्सना करके अपने जीवनोद्देश्य एवं कर्म-मार्ग का स्पष्ट संकेत करते हैं। वे स्वयं को परमात्मा नहीं वरन् उसका 'दास' या 'सुत' स्वीकार करते हैं। वे तो उस परमपुरुष के 'दास' हैं तथा जगत का तमाशा (लीला) देखने के लिये इस धरा पर अवतरित हुये हैं। वे अपने आप को जनाने के लिये नहीं अपितु अपने आप को पहचानने तथा पहचानकर कर्म मार्ग में अग्रसर होने का

1- कृष्णावतार, 2492

लक्ष्य लेकर आए हैं। वे प्रभु का 'सच्चा मार्ग' दर्शाते थे। सांसारिक कार्यों को मात्र धर्म-कार्य मानते थे। वे संसार में रहते हुये भी निरलेप हैं, परिवार में रहते हुये भी विरक्त हैं तथा युद्ध-भूमि में तलवार उठाते हुये भी, निर्वैर तथा निम्न वासनाओं से अतीत हैं। वे सदा उस परम पिता परमात्मा के इस अमर संदेश को मानकर जीवन-यापन करते हैं -

भय काहू को देत नहि, नह भय मानत आन।

भय, अन्याय, अत्याचार तथा आतंक से उत्पीड़ित समाज को निर्भय करना, अभय-दान देना श्री गुरुगोविंद सिंह की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

वे एक आदर्श गृहस्थ, आदर्श संत, आदर्श सिपाही, आदर्श गुरु, आदर्श कर्मयोगी एवं आस्थावान तथा प्रतिवाद कवि थे, जो सांसारिक दायित्वों से विमुख होकर कर्तव्य विमूढ़ नहीं होते, निष्क्रिय होकर कर्मकाण्डों में नहीं पड़ते, घबरा कर जंगल का रास्ता नहीं लेते कोई 'अवर वासना' न रख कर, प्रभु से 'धर्म युद्ध के चाय' से अनुप्रेरित होते तथा कर्मभूमि में उतरते हैं। घोर पतित तथा मलिन सामाजिक परिवेश में भी 'निर्मल पंथ' के पथ प्रदर्शन हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह महाराज ने सहसा हथियार नहीं उठाए, छठात् भक्ति मार्ग को शक्ति मार्ग का रूप नहीं दिया। इस के पीछे एक सुदीर्घकालीन साधना, चिन्तन, अनिवार्यता तथा तैयारी काम कर रही थी। जहांगीर के राज्य-काल में श्री गुरु अर्जुन देव को शहीद किया गया, कहते हैं गुरु अर्जुन ने स्वयं ही लाहौर जाने से पूर्व बालक हरि गोबिन्द को गुरु-गद्दी पर आसीन करते हुये कहा था कि अब शांति का मार्ग छोड़कर शस्त्रधारी बनना होगा। अत्याचार तथा अन्याय के समक्ष नत मस्तक होना दुर्बलता, कापुरुषता और अमानवीय ही नहीं, पाप भी है, बाबा बुड्ढा जी ने गुरु हरि गोबिन्द को 'मीरी' तथा 'पीरी' की दो तलवारें पहना दीं, वे कलगी भी सजाने लगे। शिष्यों से भेंट में

अब अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त शस्त्रास्त्र तथा घोड़े आदि भी स्वीकार होने लगे। गुरु हरिगोबिन्द (छटे गुरु) ने अल्पायु में ही चार लड़ाईयां लड़ीं, लड़ी ही नहीं उनमें जीत भी प्राप्त की।[1] विशाल मुगल साम्राज्य से सिक्खों का यह पहला सशस्त्र संघर्ष था। पश्चात् उनके पुत्र नवम पातशाह श्री गुरु तेग़ बहादुर भी शस्त्रधारी थे। उन्होंने अपने पिता की सेना में श्री करतारपुर के युद्ध में तलवार के जौहर भी दिखलाए। उसके बाद जिस निर्ममता तथा निर्दयता से उनको शहीद किया गया उसे कौन भूल सकता है। गुरु गोबिंद सिंह के पिता की शहीदी, दादा की लड़ाईयां, परदादा की शहीदी, दो पुत्रों का चमकौर के युद्ध में शहीद होना, दो को जीवित नींव में चिना दिया जाना क्या क्या कम महत्वपूर्ण वीर-कर्म हैं। संसार में पर शायद ही कोई ऐसा उदाहरण मिलता हो जिसमें वंशानुगत त्याग, बलिदान तथा संघर्ष भरी कर्मण्यता की ऐसी मिसाल मिलती हो। 'बचित्र नाटक' में आपने लिखा है :-

राजकाल हम पर जब आइयो।
जथा सक्त तब धरम चलाइयो॥
भांति भांति बन खेल सिकारा।
मारे रीछ रोझ झंकारा
देय चाल हम हे मुनि गई,
सार पांवटा की सुधि लई॥

यह सारा समय आपके महान संघर्ष की तैयारी का समय था, उत्साह बटोरने तथा अपने अनुयाइयों को एक सुसंगठित शक्ति बनाने का था, उन्होंने बहुत पहले से सैन्य-अभ्यास करने प्रारंभ कर दिये। कालदर्शी एवं दूरदर्शी गुरु गोबिन्द सिंह अगत को भली भांति समझते थे और उसके लिये उचित रूप से ही तैयारी में जुटे थे। पांवटा साहेब में एक ओर साहित्य का प्रवाह

1- डा० जीत सिंह सीतल, अजीत (दैनिक) जालंधर मुख्य पृष्ठ, जनवरी, 1982

चलता था तो दूसरी ओर युद्ध-कला में नैपुण्य प्राप्त करने के निरंतर अभ्यास-शिविर चल रहे थे। तदोपरांत वीर रसात्मक वाणी का सृजन करके कर्मशील वीरता के क्षेत्र में जो काम किया गया, उसका सविस्तार अध्ययन हम पूर्व पृष्ठों में कर ही चुके हैं। उन्होंने स्थान स्थान पर अपनी वाणी का लक्ष्य वीर भाव पैदा करना, धर्म की रक्षा करना तथा खालस सुद्ध राज्य (राम राज्य) स्थापित करना अपना लक्ष्य बतलाया है, इस विषयक पर्याप्त सामग्री भी हम पीछे जुटा आए हैं।

प्रश्न पैदा होता है कि इस वीर रसात्मक वाणी का उनके समकालीन तथा परवर्ती इतिहास, समाज, धर्म, दर्शन और साहित्य आदि पर क्या प्रभाव पड़ा, आपने उन्हें किस रूप से नया मोड़ दिया अथवा नई दिशा दी ।

इतिहास, राजनीति तथा समाज को देन :-

महापुरुष उसे कहते हैं जो इतिहास के पीछे नहीं अपितु इतिहास को अपने पीछे चलाते हैं, जो अपने जीवन कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व से एक नया इतिहास सृजन पैदा करते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह के वीर रसात्मक साहित्य एवं कर्म-क्रीड़ा ने साहित्य में सर्वथा नये इतिहास का सूत्रपात किया और निराशा, उत्पीड़न तथा मानसिक क्लेश में पड़े ह्रासमुखी भारतीय हिन्दु समाज को आश्वस्त, स्वाभिमानी ~~समाज को आश्वस्त, स्वा-~~ तथा सन्तुष्ट, विजयी एवं ऊर्ध्वमुखी समाज बना डाला। पुनः, गुरु जी की दृष्टि मात्र लौकिक जीवन-दृष्टि नहीं, आत्मवाद और आत्म-दर्शन पर स्थित दीर्घ, दिव्य दृष्टि थी। लक्ष्य मार्ग के बिना वीर -भाव की पुष्टि हो ही नहीं सकती। वीरत्व आध्यात्मिकता का चरम है, यह भाव दशम ग्रंथ में संग्रहीत वाणी के अध्ययन से सुस्पष्ट हो जाता है। 'कृष्णावतार' में वे लिखते हैं :-

धन्न जीयो तहि को जग में मुख से हरि चित्त में जुध विचारे ।।
देह अनित न नित रहै, जस नावि चढ़े भव सागर तारे ।।

धीरज धरम बनाय हहे मन बुधि सु दीपक जिऊं उजिआरे ।।
गिआनहि की बड़नी मनो हाथ ले कातरता कुतवार बुहारे ।।*

अर्थात् आपने हमारे इतिहास में 'मुख से हरि चित्त में जुध' का दर्शन जोड़कर भारतीय इतिहास को सामान्यत: तथा पंजाब के इतिहास को विशेषतया नई दिशा दी । ज्ञान द्वारा ही अंधकार को मिटाया जा सकता है और धर्म की तलवार द्वारा ही कातिरता को वीरता में बदला जा सकता है । भारत के इस अंधकारमय युग में गुरु गोविन्द सिंह (तथा शिवा जी व छत्रसाल) उदय न हुये होते तो हमारे इतिहास की धारा कुछ और ही होती ।

अपने इस दर्शन द्वारा वे शक्ति और भक्ति , शस्त्र और शास्त्र, ज्ञान और कर्म के चिर पुरातन भारतीय विचार की ही पुन: स्थापना करते हैं । इस दृष्टि से गुरु जी के व्यक्तित्व में ज्ञान और कोमल-चित्त वृति के साथ वीरत्व के सभी पक्षों के दर्शन होते हैं । अत: कहा जा सकता है कि इतिहास को उनकी सबसे बड़ी देन सिख दर्शन है और सिख-दर्शन के मूल में ज्ञान और कर्म का मिश्रित दर्शन काम करता है । श्री गुरु गोविन्द सिंह इस सिख-लहर का चरम वैभव हैं, वह सिख लहर जिसमें मानव-हितैषी सभी गुण यथा सेवा, श्रद्धा , विनम्रता, बलिदान, दया, क्षमा, धैर्य, ज्ञान, भक्ति और कर्म आदि मानवोचित गुणों के अतिरिक्त वीरता, शौर्य, साहसिकता, निर्भयता एवं आत्म-बलिदान आदि युग-साफेक्ष गुणों का सुन्दर समन्वय मिलता है । सिख-दर्शन के इस परम-वैभव तक पहुंचने के लिये उनसे पहले सौ वर्ष के समय में गुरुओं तथा उनके शिष्यों को क्या-क्या प्रयत्न एवं बलिदान करने पड़े हैं, यह आज इतिहास का अनिवार्य भाग बन चुका है ।

प्रो० हरबंस सिंह आपको इतिहास में इस प्रकार रखते हैं -
'श्री गुरु गोविंद सिंह भारतीय इतिहास में सर्वाधिक गतिशील एवं देवी शक्ति वाले

---

* दशम ग्रंथ, कृष्णावतार - पन्ना ५७०.

महापुरुष हुए हैं। उस समय राष्ट्र की हालत अत्यंत दीन हीन थी, गुरु जी ने इस अवस्था का सुधार करने हेतु एक शानदार योजना बनाई और पुनः इस योजना को क्रियात्मक कह देने के लिये अत्यंत लग्न और वीरता से काम किया।'[1]

वे आगे चलकर लिखते हैं -' गुरु साहिब ने राजनैतिक अत्याचार और धार्मिक असहनशीलता के विरोध में आवाज़ उठाई और इन अत्याचारों का सामना करने के लिये अपने शक्तिशाली ढंग से लोगों में देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम की तीव्र भावना पैदा की, - - - सचमुच गुरु गोबिंद सिंह में जहां शौर्य, सुधार के लिये लग्न और सैनिक सुलभ जोश था, वहां एक गंभीर आध्यात्मिक चेतना, सर्वोत्तम दार्शनिक अन्तर्दृष्टि और एक अद्वितीय और काव्यात्मक सहज-ज्ञान भी था। धार्मिक, सामाजिक पुनरुत्थान के अतिरिक्त सतारहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में सांस्कृतिक पुनर्जागृति के विषय में भी गुरु गोबिंद सिंह जी की देन एक विशेषता रखती है।'[2]

डा० महीप सिंह गुरु गोबिंद सिंह के काव्य का मूल्यांकन करते हुये राजनीति के क्षेत्र में उनकी सब से बड़ी देन 'युद्ध-दर्शन' बतलाई है। आप लिखते हैं - ऐसे अपूर्व संकटकाल में, जब सम्पूर्ण देश में दमन का भीषण चक्र तीव्र झंझावात की तरह चल रहा था, देश की जन-शक्ति को सम्पूर्ण आलस्य और प्रमाद त्यागकर जाग्रत जागना पड़ा और पर्वत की दृढ़ता लेकर उसके मध्य खड़ा होना पड़ा। समन्वय-प्रयास असफल हो चुके थे। बाबर और गुरु नानक, अकबर और गुरु रामदास के सम्बन्धों को तिलांजलि दे दी गई थी और सामने खड़े थे औरंगज़ेब और गुरु गोबिन्द सिंह। शक्ति का प्रतिरोध शक्ति से किया जाना था। 'अल्लाहो अकबर' के नारे का उत्तर 'सति श्री अकाल' के जयघोष से दिया जाना था।'[3]

1- गुरु गोबिंद सिंह, गुरु गोबिंद सिंह फाउंडेशन चंडीगढ़ 1966 तृतीय संस्करण पन्ना 5

2- वही, पन्ना, वही

3- 'सति श्री अकाल' 'अल्ला हो अकबर' का जवाब जैसा लगता है और सिखों ने शूकर को भक्ष्य मानकर एक प्रकार से गो-भक्षण को वृत्ति जवाब निकाला था।' संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 320

'इस प्रकार की परिस्थितियों में गुरु गोबिंद सिंह ने अपने संगठन को उस प्रदेश में खड़ा किया जो मुगल शासन के जबड़ों के मध्य जकड़ा हुआ था। गुरु गोबिंद सिंह ने सेना एकत्र कर आस-पड़ोस के राज्यों पर आक्रमण कर एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का कभी प्रयास नहीं किया। यह कहना उनके लिए कठिन नहीं था। आस-पास के पहाड़ी राजाओं को वे कितनी ही बार पराजित कर चुके थे - - महत्व की बात है जनता की मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन लाना। ऐसा परिवर्तन, जो युगों युगों से उनमें बैठी आत्मविश्वासहीनता और हीन भावना को दूर करके उनमें 'सवा लाख से एक' लड़ने का अदम्य उत्साह भर दे। गुरु गोबिंद सिंह ने यह कार्य किया। गुरु गोबिंद सिंह ने केवल युद्ध ही नहीं किये युद्ध के सम्पूर्ण दर्शन का भी विकास किया।[1]

युद्ध का यह दर्शन धर्म युद्ध का दर्शन है, जो यद्यपि नितांत नया नहीं तो भी उस पर जिस प्राथमिकता से बल दिया गया वह एक अनूठा और ऐतिहासिक कर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण भी निष्कर्म धर्म करने का पाठ पढ़ा चुके थे और यहां भी धर्म, अधर्म का विचार मन में सर्वोपरि रख कर शुद्ध धर्म भाव से काम करने और यदि कार्य सिद्धि में बाधा उपस्थित हो तो उसे तलवार के बल पर भी हल करने का संदेश आपने दिया। युद्ध करना अच्छा नहीं है, हिंसा अच्छी नहीं है तो भी यदि युद्ध और हिंसा किसी राष्ट्र, जाति या सम्प्रदाय पर लाद ही दिये जाएं तो इसे ईश्वरीय कार्य समझ अपने कर्तव्य का निर्वाह करना ही गुरु जी का युद्ध-दर्शन है। अपने युद्ध के विषय में अपने दर्शन में एक निश्चित गणवेश का विधान किया, 'जो बोले सो निहाल, सति श्री अकाल' का धर्माबलंबित जय घोष प्रदान किया, सर हथेली पर रख कर युद्ध भूमि में उतरने वाली 'लाडली फौज (प्रियतम सेना) निर्माण की और विजय की श्री देवी का वरण करने का आवाहन दिया।

1- गुरु गोबिंद सिंह और उसकी हिन्दी कविता, पृ.344-45

इसी युद्ध दर्शन के अभ्यास के लिये आपने समस्त भारतीय वाङ्मय में से वे रचनाएं, यथा चण्डी चरित्र, रामायण तथा महाभारत की वीर रस पूर्ण कृतियां, अवतार कथाएं आदि ग्रहण कीं तथा उनका भाषानुवाद करवाया। आनंदपुर साहेब के किले में निरन्तर शस्त्रास्त्र का अभ्यास होता रहता था, तलवारों की खनखनाहट, घोड़ों की टापें तथा हृदय हिला देने वाली जय घोष ध्वनि हमेशा वातावरण को विशुद्ध सैन्य-स्थल बनाए रखती थी। आनंदपुर दरबार में बावन दरबारी कवियों ने इस युद्ध दर्शन में अपना अपना योगदान किया है। उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह जी की रणनीति, धर्मभावना, दीन हीन रक्षा तथा उदारता शूरवीरता, साहस, वासना रहित कर्मण्यता, दूरदर्शिता का जो विशद वर्णन किया है, उससे आपके युद्ध दर्शन का समुचित ज्ञान होता है।

इसी प्रसंग में डा० हरिभजन सिंह का अभिमत भी दर्शनीय है जिसमें वे भूषण के मुकाबिले में इन दरबारी कवियों की प्रशस्तियों में विशिष्टता नहीं अपितु सामान्यता के दर्शन करते हैं -

'ये छन्द गुरु जी की शूरवीरता में लिखे छन्दों के आदर्श उदाहरण हैं, स्पष्ट है कि ये युद्ध का सामान्य वातावरण उपस्थित करते हैं, विशिष्ट वातावरण नहीं। -- इस स्थिति को समझने के लिये इन छन्दों को भूषण लिखित 'शिवा-बावनी' या 'शिवभूषण' से सामान्य सी तुलना ही पर्याप्त होगी। भूषण भी इस प्रकार अतिरंजित स्तवन करने के अभ्यस्त हैं किन्तु उनके अतिरंजित स्तवन में शिवाजी के युद्ध-कर्म का विशिष्ट महत्व कहीं भी लुप्त नहीं हुआ। शिवा जी हिन्दु राष्ट्र-चेतना के प्रतिनिधि के रुप में उपस्थित हैं, उनका लक्ष्य दिल्ली की शासक-सत्ता से सत्ता हस्तगत करना है - भूषण की वाणी इन महत्वपूर्ण तथ्यों की कहीं अवहेलना नहीं करती। हजूरी कवियों के सामने युद्धोद्देश्य की ऐसी स्पष्ट एवं विशिष्ट रूप-रेखा नहीं। आनंदपुर में जिस नवचेतना का जागरण हो रहा था, उसका हल्का सा आभास भी इन छन्दों में नहीं मिलता। गुरु गोबिंद सिंह के बल-पराक्रम का उल्लेख रुढ़-शैली में एक सामान्य रूप में करने में ही इन कवियों ने अपने कर्तव्य की सार्थकता समझी है।[1]

---

1. - गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पन्ना 485

उपरोक्त दोनों कथनों में कोई विशेष विरोध नहीं है जैसा कि ऊपर से देखने से प्रकट होता है। गुरु जी का युद्ध दर्शन विशिष्ट एवं अनूठा है, इसमें कोई संदेह नहीं, केवल उनके विषय में उपलब्ध दूरी कवियों (या दरबारी कवियों) के छन्दों में से वह स्वरूप हमारे सामने नहीं आता। दोनों बातों में बड़ा अन्तर है। सुधी विद्वान अपना वक्तव्य स्पष्ट करते हुये लिखते हैं - 'एक कारण की ओर संकेत ऊपर किया जा चुका है (अर्थात् दरबारी कवियों द्वारा रची गई सम्पूर्ण रचना हमारे तक पहुंची ही नहीं, कुछ छुटपुट छन्द ही उपलब्ध है) ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि एक अपवाद के अतिरिक्त लगभग सभी प्राप्त छन्दों की रचना मुगल आक्रमण से पहले हुई थी। अतः उनकी रचना में युद्ध-कर्म के महत्व का सम्यक् समावेश नहीं हो पाया।'[1]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का यह धर्म-युद्ध, यह राज्य 'मुसलमानों के विरुद्ध नहीं था अपितु पठानों, सैयदों, तुर्कों, मुगलों, शेखों तथा नातारियों आदि के विरुद्ध था। यही कारण है कि वे धार्मिक इस्लामी संस्कृति के लिये मुसलमान 'शब्द प्रयुक्त करते हैं और विदेशी आततायी व तात्कालिक घोर अत्याचारी राज्य के लिये तुर्क शब्द का प्रयोग करते हैं। 'गुरु गोबिन्द सिंह ने अपना युद्धाक्रोश मुसलमानों के विरुद्ध नहीं तुर्कों के विरुद्ध प्रदर्शित किया है जिन्हें उन्होंने मलेच्छ कहकर भी पुकारा है। यही विशेषता हमें भूषण में भी दिखाई देती है - - वस्तुत उस युग में 'मुसलमान' शब्द जहां धार्मिक विश्वासों की संज्ञा रखता था, वहां 'तुर्क' शब्द उस राजनैतिक शक्ति का परिचायक था जिसके विरुद्ध गुरु गोबिंद सिंह ने और शिवाजी को युद्ध करना पड़ रहा था। अनेक मुसलमान गुरु गोबिंद सिंह के मित्र और स्नेही थे, सिढौरा के पीर बुद्धशाह का भांणी के युद्ध में उनकी सहायता करना इतिहास प्रसिद्ध है।'[2]

'कृष्णावतार' में श्रीकृष्ण के विरोधी कंस में 'खान' नामधारी शत्रु वीरों पर विजय प्राप्त करने की कथा आपके राजनैतिक लक्ष्य की ओर ही संकेत

1- गुरमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पन्ना 485

2- डा० महीप सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, पन्ना, 346

करती है जिसे हम सम्बंधित अध्याय में दिखला आए हैं। 'कृष्णावतार' में अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुये आपने लिखा था

दसम कथा भांत की भाखा कही बनाय।
अवर वासना नाहि प्रभ धरम युद्ध का चाय।

ऐसे ही संकेत अन्य रचनाओं में भी हैं। दशग्रंथ की प्रारंभिक रचना 'चण्डी चरित' है और अंतिम रचना चरित्र संख्या 405 (पन्ना 1359-1388) भी एक प्रकार से दुर्गा स्तुति ही है, मगर किंचित अलग ढंग से है। यहां दीर्घदाढ नामक राक्षस का महाकाल से युद्ध है और दीर्घदाढ़ द्वारा क्रोधाग्नि से पठान, मुगल, सैयद, शेख, खान, पठान आदि के उत्पन्न होने का वर्णन है -

इह विधि भए शस्त्र जब लीना, असुरन कोप अमिति तब कीना ।।
कोपत अधिक चित्त मो गए, सस्त्र अस्त्र ले धावत भए ।। 197 ।।
ज्वाल तजी करि कोप निसाचर, तिम ते भए पठान धनुखधर ।।
पुनि मुख ते उलका जे काढ़े, तातें मुगल उपजि मे ठाडे ।। 198 ।।
पुनि रिसि तन तिन स्वास निकारे, सैयद सेख भए रिस बारे ।।
धाए शस्त्र अस्त्र कर लेके, तमकि तेजरण तुरी नचेके ।। 199 ।।
खान पठान ढके रिस के के, कोपि कृपान नगर कर ले के ।।
क महाकाल को कस प्रहारा, एक ऊपर तरोम उपारा ।।

'चरित्रोपाख्यान' में अनेक चरित्र ऐसे हैं जिनमें पठानों की औरतों के कुकर्म, दुश्चरित्र एवं मुगलों के चरित्र-पतन के दृश्य अंकित हैं। यह बात भी गुरु जी इसी मनोवैज्ञानिक आशय से रख रहे थे कि जिन शासकों का अपना चरित्र ऐसा है, वे नाश के भागीदार हैं। पन्ना 1042 पर 'साहिजहां की इक बर नारी' में शाहजहान की सुन्दर स्त्री प्रानमती ने एक शाह के पुत्र को बुलाकर उससे भोग विलास किया, उपरांत मारने की आज्ञा दी मगर दासी ने स्वयं भोग लिप्सा पूर्ण करके उसे मुक्त कर दिया। पन्ना 987 पर 'जहांगीर जब तख्त सुहावे' में एक बुरकाधारी जेब कतरा औरत का वर्णन है। इसी तरह पन्ना 1222 चरित्र सं० 278 'सहर जहानाबादि बसत

जहां में शाहजहां की बेटी रोशना (रोशनआरा) का राजा सेफदीन से प्रेम बतलाया गया है। यहां 'पीय' और 'पीर' शब्द के श्लेष द्वारा सुन्दर अर्थ पैदा किए हैं। एक अन्य कथा सीधी औरंगज़ेब की बेटी से सम्बन्धित है। पन्ना 1010 पर 6 दुहिता साह [illegible]रंगकी' प्रसंग दर्ज है। यहां एक अब्दुल नाम का काज़ी ऋद्धियों-सिद्धयों के बल पर देव जिन्नादि को बश में करता है और नित्य प्रति सुन्दर से सुन्दर लड़कियों को अपनी कामग्नि का शिकार बनाता है। इस कथा द्वारा दो बातें अभिप्रेत हैं - काज़ी/मुल्ला लोगों में कामुकता, व्यसन, वहम-भ्रम का प्रचलन तथा 'दिल्लीश' की दुहिता भी काम-वासना की आंधी से बच नहीं सकी तो सामान्य जन का क्या हाल होगा।

पन्ना 1085 पर एक और चरित्र 'नौ कोटी मरवार को' दर्ज है जिसमें औरंगजेब की ईमान फरोशी का सुन्दर उदाहरण मिलता है। राजा जसवंत सिंह ने औरंगज़ेब के लिये काबुल में जाकर अपनी जान तक वार दी पर औरंगज़ेब बेईमानी करके उसके समस्त परिवार को मार डालने का कुचक्र चलाता है। इस कथा के प्रसंग में अपनी टिप्पणी करते हुए डा० मोहन सिंह दीवाना लिखते हैं - " दशम पिता जानी जान थे (सर्वज्ञ थे)। होनहार को, काल के हुक्म को कौन टाले। 1693 ई० से पहले यह कहानी नहीं, घटना गुरु गोबिंद सिंह जी नज़्म कर चुके थे। नौरंगे की बेईमानियां, फरेब, झूठ, खुदारज़ी, मुहम्मान कुशी की सच्चे पातशाह को तिल तिल जानकारी थी। आपको पता था कि हिन्दुस्तान में अब क्या हो रहा है, पीछे क्या हुआ और आगे क्या होने वाला है। औरंगजेब के पूर्वजों का, शेरशाह का, अलतमश का, दीवाने का, मुसलमानी देशों का, चीन, तिब्बत, नेपाल, रुस, रोम का सब हाल जानते थे। पुरतगेज़, गोरे, अंग्रेज़, फ्रांसीसी, वलंदेज़ क्या कर रहे हैं हिन्दुस्तान में, यह भी जानते थे। मुंडीए, वैरागी, सतिनामीए, मरहटे (शिवा जी, शाह जी शंभा जी) और अन्य जो मुगल राज्य विरुद्ध बगावत कर रहे थे, उनकी भी सतिगुरु जी को पूरी जानकारी थी।"[1]

1- साप्ताहिक पंथ प्रकाश, दिल्ली, दशमेश नम्बर 1967

इन सब घटनाओं में शायर कहीं पुनरावृत्ति भी हो गई होगी, मगर इन्हें यहां उद्धृत करने का हमारा आशय इस बात पर बल देना है कि श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी एक दूरदर्शी राजनयक तथा राजनीति के सब दाव-पेंच जानने वाले महापुरुष थे जिन्होंने भारतवर्ष को एक अभिनव युद्ध-दर्शन देकर राजनीति के क्षेत्र में इसका आने वाले युगों में भी मार्ग दर्शन किया। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने राजनीति के क्षेत्र में आपकी उपलब्धि इन शब्दों में अंकित की है - हिन्दु जन-समाज पूर्णतया हतोत्साहित हो चुका था, और प्रमुखतया वे बचाव में ही व्यस्त थे। वे घमण्डी, आततायी तथा असहनशील तानाशाहों के रहमो करम पर जी रहे थे। उनका उत्थान करना, उनमें प्राण-चेतना करना तथा सत्य के ज्ञान द्वारा उन्हें लोह पुरुष बनाना गुरु गोबिन्द सिंह का दैव-प्रदत्त कार्य था। उन्हें इस कार्य में सफलता मिली और उन्होंने एक चमत्कार कर दिखलाया। शांतिप्रिय, अदुखदाई तथा मासूम 'बैरागियों' या साधुओं को, जिन्होंने जीवन का मोह त्याग दिया था और जो असहनीय अत्याचार से दूर रहना ही अपनी शान समझते थे, जो एक आध्यात्मिक गुरु के शिष्य या सिख कहलाने मात्र थे, जो पशु या भेड़ की तरह निःसहाय अनुभव करते थे, उनमें से गुरु गोबिन्द सिंह ने सिंहों या शेरों की एक जाति का निर्माण किया।[1]

गुरु गोबिंदसिंह जी न केवल राजनैतिक तौर से ही चैतन्य थे अपितु वे एक राजनयिक की तरह नीति निपुण भी थे। अपने कार्य की सिद्धि के लिये यदि कुछ आदर्श भी भंग करने पड़ें तो नीति यही कहती है कि उसमें कोई हानि नहीं है। जब गुरु जी मुगलों के बार बार भरोसा दिये जाने के बाद एक मुसलिम फकीर का वेश धारण करके जा रहे थे तो एक स्थान पर मुगलों ने उन्हें रोक लिया और गो मांस भक्षण करने के लिये दिया। वे समझते थे कि हिन्दु पति गौ का मांस नहीं खा सकता। गुरु जी ने समय की नज़ाकत समझते हुए अपने कार्य की सिद्धि हेतु गो-मांस भी खाया। यह बात आपकी दूरदर्शिता, रणनीति, तथा मानसिक-बौद्धिक स्पष्टता की द्योतक है।

1- गुरु गोबिंद सिंह (1666-1708) (इंगलिश) पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़, जनवरी 1967 पन्ना 17

आपने 'खालसा' का निर्माण करके उसके माध्यम से अपने राजनैतिक विचारों को कार्यान्वित किया। 'खालसा' के निर्माण में देश के सारे प्रदेशों से तथा बहुधा तथाकथित निम्न जातियों में से प्रिय जन लेना उनका एक अभूतपूर्व कार्य था। समूचा पंजाब तथा अफगानिस्तान तक इसकी सीमाएं ले जाना इसी के फलस्वरूप कहे जा सकते हैं। श्री इन्दुभूषण बैनर्जी सत्य ही कहते हैं -

' गुरु गोबिंद सिंह जी की निर्मिति अर्थात खालसा ने ख्याति और प्रतिष्ठा का मार्ग प्रशस्त किया और भारतीय इतिहास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे विचार में खालसा की भारतवर्ष को सबसे बड़ी देन अफगानों से पंजाब का पुनः वापिस लेना तथा इसकी सीमाएं सीमाप्रांत तक ले जाना है। संभव नहीं कि यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो इनमें से कुछ इलाके भौगोलिक दृष्टि से भारत के अंग न रहते जैसा कि कुछ अन्य भूभाग भूतकाल में रहे हैं। गुरु के शिष्यों (खालसा) ने भारत की सीमा की सुरक्षित रखा है और यह सब से बड़ी सेवा है।'[1]

धार्मिक क्षेत्र में देन -

गुरु गोबिंद सिंह जी के दरबारी कवि अणी राम ने आपको 'हिन्दु-पति सुलतान' कहा है तथा कुछ अन्य दूसरी कवियों ने तो आपको विष्णु का साक्षात अवतार भी माना है। अणीराय अपने जंग नामा में लिखता है -

धनुष चक्र खण्डा धरै, हिन्दुपति सुलतान।
सोढ़ वंश अवतार हो, गोविंद सिंह बलवान।
और मृत अमृत मतंग ब्रिंद बल मरद वाह के।
को कवि सके सराहि, हिन्दुपति नाह के।

1- एवोल्यूशन आव दा खालसा, खण्ड, 2, दूसरा संस्करण, कलकत्ता, 1962 पन्ना 101-62

हिन्दुपति गुरु आप सिंघ गोविंद हैं।
जन मघवा चढ्यो गुराक सूर सों ब्रिदै हैं।

कवि सुदामा कहता है कि मुझ गरीब से जो प्रीत गुरु जी करते हैं उससे वे मुझे गोबिंद (श्री कृष्ण) ही दिखाई पड़ते हैं -

दीन दयान सुनि के दयाल दरबार मिले,
एतो कछु दीनो पाई आनत सामा में।
प्रीति करि जाने गुरु गोबिन्द सिंह के माने,
ता ते वहे तू गोबिंद वहे बामन सुदामा में।।

कवि केशवदास का सुपुत्र 'कुबेरश' भी आपके दरबार में था और 'तुर्कों के अत्याचार से हिन्दुओं को बचाने वाले गुरु' की महिमा सुनकर ही यहां आया था -

सुना निथावन को तुम थान, सदा निमानन के बड़ मान।
अहो नितानन के तुम मान, अस शोभा को कथे जहान।।
तुरक तेजते बिन बस हिन्दू, धर्म बिनासत मेलत बिन्दु।
महात्रास ते त्र में चलि आयो, चहित आपनो धर्म बचायो।

भारत वर्ष के सामान्य जन-मानस में गुरु गोबिन्द सिंह जी का यही हिन्दु धर्म रक्षक रुप अधिक प्रसिद्ध है, इसलिये -

सकल जगत खालसा पंथ जागे।
जगे धर्म हिन्दु सकल भंड भाजे।

परन्तु आज राजनैतिक परिवेश के बदल जाने के कारण आपके विषय में धार्मिक विश्वास भी बदल गए हैं, यद्यपि सत्य यही है कि गत तीन शताब्दियों तक आपको समस्त हिन्दु समाज इसीलिये अत्यधिक स्नेह, सम्मान व प्यार देता रहा है कि आप ने एक विकट काल में उसके धर्म की रक्षा की थी, अपनी एक नहीं पांच पीढ़ियों की कुर्बानी देकर धर्म का परित्राण किया था, साधुओं को सुख दिया था तथा हिन्दुओं को आत्मसम्मान तथा गौरव से जीने का गुरु-मन्त्र दिया। 'अपनी कथा' में अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी का उल्लेख आपके श्रीमुख से ही सुनिए -

तिलक जंजू राखा प्रभ ताका ।
कीनो बड़ो कलू महि साका ।।
साधनि हेति इती जिनि करी ।
सीस दीआ परु सी न उचरी ।।
धरम हेत साका जिन कीआ ।
सीस दीआ परु सिररु न दीआ ।

ये तिलक और जनेऊ की रक्षा किस धर्म की रक्षा है ?यह 'धर्म हेत' ये तिलक साका ~~और-जनेऊ~~ किस धर्म के हेतु है ? डा० महीप सिंह जी इस बात को स्वीकार नहीं करते और ~~कहते~~ सिढ़ोरा के पीर बुद्धू शाह तथा नवीखान, ~~मनीखान~~ गनीखान, काजी पीर मुहम्मद और राय कालहा आदि मुसलमान दोस्तों की बात कहकर सिद्ध करना चाहते हैं कि गुरु जी इसलाम धर्म के विरोधी नहीं थे । ऐसा ही तर्क डा० हरि भजन सिंह, स० हरबंस सिंह, तथा काला सिंह बेदी देते हैं। हमारा नम्र निवेदन है कि हिन्दुपति होना और बात है तथा मुसलमान विरोधी और बात । हिन्दु धर्म में अन्य धर्मों के प्रति ~~सि~~ जिस सहिष्णुता और सद्भाव के दर्शन होते है, वे सर्व-विदित हैं । अत: गुरु गोबिन्द सिंह तो क्या कोई भी हिन्दु कभी भी मुसलमान विरोधी नहीं रहा । मुसलमान विरोध और बात है और हिन्दु धर्म की रक्षार्थ तुर्कशाही से लोहा लेना बिल्कुल अलग बात है। दोनों ही स्थितियों में अपने धर्म की रक्षा का भाव सर्वोपरि रहता है । सेना में मुसलमान होने से क्या फर्क पड़ता है, वे तो छत्रपति शिवा जी की सेना में भी थे और काफी बड़ी संख्या में थे, तो भी वे 'हिन्दु पद पतिशाही' स्थापित करने वाले हैं, उन्होंने भी कभी किसी निरीह विधर्मी पर अत्याचार नहीं किया । ऐसे ही गुरु जी का धर्म एक सकारी धर्म था जिसमें बैर-विरोध अथवा धार्मिक विद्वेष के लिये कोई स्थान नहीं था ।

कुछ लोग यह तर्क भी देते हैं कि पहाड़ी हिन्दु राजे भी तो उनके विरुद्ध निरर्थक लड़े थे । पहाड़ी राजे गुरु जी से गैर हिन्दु होने के नाते लड़ाई मोल नहीं लेते अपितु निम्न प्रकार के स्वार्थगत राज्य प्राप्ति के कारण युद्ध करते तथा मुगल

सेना से साज़-काज़ करते हैं। पुनः धार्मिक सुधार, अथवा धर्म राज्य प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य भी तो नहीं हो सकता, यदि कुछ पथ-भ्रष्ट हिन्दु पहाड़ियों ने गुरु जी का विरोध किया तो अपनी रियास्त को बचाने हेतु न कि उनके धर्मप्रचार के विरोध में लड़ाई लड़ी।

अतः हमें तो गुरु गोबिंद सिंह जी का अपने युग पर सब से बड़ा प्रभाव यही दिखाई पड़ रहा है कि उन्होंने निरीह, जड़वत तथा निर्बल हिन्दु जाति को सम्मान तथा स्वातन्त्र्य का जीवन जीने तथा संगठित होने का सुअवसर प्रदान किया है। वैसे गुरु जी एक परम संत, प्रभु-पुरुष आत्मज्ञानी व सर्वात्मवादी महात्मा थे, अतः इस बात से कोई भी व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता कि वे हिन्दु तथा मुसलमान को बराबर प्यार करते थे, दोनों को एक ही नज़र से देखते थे। आप सब के साँझे गुरु थे और इसीलिये आपने मानवतावाद का प्रचार किया और अपने पवित्र जीवन आचरण से सब वर्गों, धर्मों और सम्प्रदायों को एकसूत्र में बांधने का प्रयास किया। धर्म के क्षेत्र में उनकी सब से बड़ी देन भी यही है कि वे मनुष्य मात्र को एक ही कुटम्ब के सदस्य मानते हैं और 'वसुधैव कुटम्बकम्' का परम आदर्श सामने रखते हुये उपदेश देते हैं कि युग-परिवर्तन तथा ऐतिहासिक कारणों से यहां अनेक धर्म सम्प्रदाय हैं जैसे हिन्दु, बौद्ध, जैन, मुसलमान पारसी, ईसाई आदि, पर सभी एक ही परमात्मा की सन्तान होने के नाते भाई भाई हैं, 'एक पिता ~~एक एक~~ एकस के हम बारिक' हैं -

फारसी फिरंगी, प्रांसीस के दो रंगी
मकरान के मिरंगी, तेरे गीत गाईअत हैं
मखरी कंधारी गोर गखरी गरदेज़ाचारी
पाण के अहारी तोरे नाम पिआईत हैं।[1]

1- अकाल उस्तुति, 13, 266

इसी प्रकार वे कूल्य पद्धति के कारण अनेक भेदों को भी, स्वीकार नहीं करते तथा 'मानुस की जात सब्रे ऐके पहचानबो' कहकर मानबबादी धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं

कोऊ भयो मुंडीया संनयासी, कोऊ जोगी भयो ।
कोऊ ब्रह्मचारी, कोई जती अनुमानबो ।
हिन्दु तुरक कोऊ राफजी इमान शाफी ।
मानस की जात सबे ऐके पहचानबो ।।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई मूल भ्रम मानबो ।
एक ही की सेव सभ ही की गुरु देव एक
एक ही सरुप सबे एके जोत जानबो ।। ।5।।85।।[1]

यह सोच, यह चिन्तन आध्यात्मिक धरातल की है, इस में राजनीति अथवा धार्मिक भेदभाव भरी नीति को कोई दखल नहीं है । गुरु गोबिंद सिंह जी के धार्मिक-आध्यात्मिक चिन्तन में भी धर्मगत, वर्णगत, भाषागत, पूजागत या राजनीतिगत कोई विभेदकारी तत्व देखने को भी नहीं मिलता । वे तो सब में केवल एक ही मूर्ति, एक ही झलक, एक ही स्वरूप देखते हैं क्योंकि उनके बनाने वाला कर्तापुरुष भी तो एक ही है -

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबे एक पै अनेक को प्रभाऊ है ।
देवता अदेव जच्छ गंधर्व तुर्क हिन्दु
निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाऊ है ।
ऐके नैन ऐके कान ऐके देह ऐके बान
साक बाद आतस औ आबु को रलाऊ है ।
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरुप सभै एक ही बनाऊ है ।। ।6।। 86।।[2]

1- दशमग्रंथ, अकाल उस्तुति, पन्ना, 19
2- वही, पन्ना 19

आपका मानववादी दृष्टिकोण देश, धर्म, सम्प्रदाय तथा भाषा की

सभी सीमाएं पार करके मानवमात्र के नाते सब को अपने हृदय से लगाता है। वैचारिक नवीनता, राज्य विषयक सिद्धांत तथा मानववादी विचार उनके धर्म-परायण, धर्म संस्थापक, धर्मवीर होने के कारण ही विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री गुरु गोविंद सिंह जी एक पूर्ण पुरुष एवं कर्मयोगी थे। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० गण्डा सिंह जी बहुत सुन्दर शब्दों में भारतीय इतिहास को आपकी देन का विश्लेषण करते हुए आपका व्यक्तित्व निखारते हैं - ' गुरु गोबिन्द सिंह जी संसार के कुछ विरल उन उच्चात्मा महापुरुषों में से थे जिन्हें पूर्ण कर्मयोगी कहा जा सकता है, जो संसार में सामान्य जनों की तरह विचरण करते हुये भी सांसारिक बंधनों में बंधकर नहीं रहते, जो स्वयं को परमात्मा का एक अंश समझते हुये उसका दास कहते हैं। उसके हुकम का पालन करते हुये अपने आपको नहीं जतलाते और इस जीवन को उसकी कृपा समझकर उसी की सेवा में, उसके बन्दों की सेवा में लगा रहते हैं। वे हर काम, काम के लिये प्रभु से मिली सेवा के रूप में किये जाते हैं। इसमें उनकी कोई व्यक्तिगत कामना काम नहीं कर रही होती, वे हर प्रकार के कार्य में निर्लेप रहते हैं, वे गृहस्थ में निर्मोह तथा युद्ध-भूमि में निरवैर रहे रहते हैं। वे संसार के दुखों को दुख नहीं समझते और इनसे घबरा कर संसार कर्तव्य को भुलाकर जंगलों में पलायन नहीं करते, वे रणभूमि में शूरवीरों की तरह उतरते हैं, शत्रु से लोहा लेते हैं मगर अपनी शक्ति का दुरोपयोग नहीं करते और न ही सदा सदा के लिये उससे शत्रुता मोल लिये रहते हैं। ऐसे थे गुरु गोबिन्द सिंह जिन की वाणी कर्मयोग की शिक्षा से भरपूर है और जिसका जीवन एक पूर्ण कर्मयोगी की जीती जागती तसवीर है जो हम सांसारियों के लिये एक आदर्श का काम कर सकती है।'[1]

धार्मिक क्षेत्र में आपने जो नये युग का सूत्रपात किया उसमें एक ओर प्रचलित अन्ध अंधविश्वासों की निंदा की और दूसरी ओर सही धर्म का साक्षात्कार किया तथापि कुछ नितांत नये प्रतिमान स्थापित किये जिन के कारण आप का धर्म-सुधार का कार्य कालांतर में सर्वथा नया और मौलिक रूप धारण करता हुआ

1- सप्ताहिक 'पंथ-प्रकाश, दिल्ली, दशमेश अंक, 1967

आज अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम करने के लिये भी प्रयत्नशील है। ये प्रतिमान थे - खालसा पंथ की स्थापना, असि, तलवार तथा चण्डी को धारण करना, पांच प्यारे (पंज प्यारे) की प्रथा चलाना, संगत को सर्वोपरि स्थान देकर 'सर्वत्त' की प्रभु सत्ता स्थापित करना, राजनीति पुर धर्म का अंकुश कायम करते हुये 'राज बिना न धर्मनिवहे हैं' का गुरु मन्त्र फूंकना तथा जाति-पांति हीन समाज की परिकल्पना करना तथा तथाकथितनिम्न वर्ग को 'रंग रेटे गुरु के बेटे' कहकर समता, सम्मान तथा सन्तुलित प्रातीयता का युगारम्भ करना।

गुरु गोबिन्द सिंह के ये धार्मिक प्रतिमान एक युगांतरकारी तथा सत्य सनातन नैतिक व आध्यात्मिक मानव-मूल्यों पर आधारित हैं, इसीलिये आज भी उनके पंथानुगामी अत्यंत स्वल्प संख्या में होते हुये भी अपनी पृथक और दर्शनीय पहचान बनाये हुये हैं।

गुरु हरिगोबिन्द ने शक्ति और भक्ति (मीरी तथा पीरी) की जो दो तलवारें ग्रहण की थीं, गुरु गोविन्द सिंह ने उन दोनों के बीच का अन्तराल भर दिया और दोनों को एकरूपता देकर दोधारी 'खड्ग' को अपना लिया। उन्होंने इस खड्ग को न केवल सकल सृष्टि का जनक, स्रष्टा, कर्ता एवं इष्ट ही माना अपितु इसमें से 'धरम चलावन सन्त उबारन, दुसट सभन को मूल उपारन' का अमर सन्देश भी दिया। उन्होंने अपने युग-सत्य को पहचाना, इसका विश्लेषण भी किया तथा इसे एक विधिवत् रूप देकर नया दर्शन-खालसा पंथ भी सजाया। उन्होंने 'पांच' सामान्य जनता में से, हर मज़हब और हर जाति, हर प्रांत में से पांच प्यारे चुनकर उन्हें अपने हाथों से अमृतपान करवाया और इस प्रकार 'संगत' को 'खालसा' का नाम देकर इतिहास में एक नया अध्याय आरंभ किया।

आप[1] पांच प्यारों तथा संगत का संकल्पन अपनी एक अनूठी और मौलिक देन है। पांच प्यारों में लाहौर का दया राम, खत्री, दिल्ली का धर्मदास जाटवा (चर्मकार) द्वारिका का मोहकम चंद धोबी जगन्नाथ का हिम्मत झीवर

1- कुछ लोग इन्हें जाट बतलाते हैं जो सर्वथा गलत धारणा है। वे चमार जाति में से जाटवा गोत्र के व्यक्ति थे। इनके भाई संत कर्मदास भी चमार सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत थे तथा आप भी एक संत ही थे।

तथा बीदार का साहिब चंद नाई था। पहले खत्री, को छोड़कर शेष हिन्दु समाज के निम्न कहलाने वाले समाज के सदस्य थे। इसी प्रकार केवल पहला ही पंजाब से था शेष चारों भारतवर्ष के अन्यान्य भागों से थे। इससे उनके खालसा पंथ का वर्ण, सम्प्रदाय तथा प्रांत रहित स्वरूप सामने आता है तथा यह भी कि भक्ति शौर्य तथा नैतिक-आध्यात्मिक गुणों को ग्रहण करने का अधिकार केवल उच्च कुलोत्पन्न व्यक्तियों को अथवा किसी स्थान विशेष के लोगों को ही नहिं अपितु सामान जनता मानी 'साध संगत' को है। इसी तरह इनके नाम-पहले दया, फिर धर्म, पश्चात् मुहकम तथा हिम्मत तथा अन्त में साहिब - ये सब भी गहरे अर्थ छिपाये हुये हैं और 'मानस की जाति सबै एके पहचानवे' का गुरु मन्त्र ही दृढ़ करते हैं। सारी सत्ता पंच प्यारों अथवा संगत में है, गुरु भी उनके सामने नतमस्तक है, प्रभु के नाम पर सारा कार्य होता है - यह कोई छोटा या संकुचित संकल्प नहीं है।

साहित्य व संस्कृति को देन :-

देश के राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण में आमूल परिवर्तन लाने वाले श्री गुरु गोबिंद सिंह जी एक महान् साहित्य-प्रेमी, साहित्यकार, साहित्य वेता व साहित्यकारों व कलाकारों का सम्मान करने वाले थे। आपकी साहित्यिक देन त्रिमुखी है। सर्वप्रथम आपने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की ज़बरदस्त धरोहर को जो कि आदि ग्रंथ के नाम से अभिहित थी, 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' का रूप दिया और इसे सिख पंथ की धर्म-पुस्तक के रूप में प्रतिष्ठापित किया। पांवटा साहिब के पश्चात् आनंदपुर साहिब तथा उसके पश्चात् दमदमा साहिब (ज़िला भटिण्डा) जिसें गुरु की काशी' भी कहा जाता है, आपके प्रसिद्धलीला-स्थल हैंतथा इन सभी स्थानों पर समय समय पर छोटी मोटी लड़ाईयां लड़ते, धर्म प्रकार करते, आखेट खेलते, वे निरन्तर पुरातन भारतीय सद्साहित्य की संभाल, सेवा तथा अपनी ओर से तथा अपनी देख रेख में साहित्य सृजन के कार्य में गतिशील रहे हैं। अपने साहित्य कार्य को तीन भागों में बांटकर देखना सभी चीन होगा।

1- श्री गुरु ग्रंथ साहेब का सम्पादन तथा इसे सिख धर्म के सर्वोपरि पवित्र ग्रंथ के रूप में स्थापित करना।

2- पुरातन साहित्य में से ऐसा प्रेरणादायक व सद्साहित्य 'भाषा' (या भाखा) में अनुवाद करना तथा करवाना जो तत्कालीन युग-धर्म के अनुरूप साहित्य को गति प्रदान कर सके।

3- अपनी ओर से प्रचुर श्रेष्ठ साहित्य का सृजन तथा 52 कवियों को आश्रय देकर साहित्य की निर्झरिणी प्रवाहित करना।

आपने अपने पीछे गुरु परम्परा बंद कर दी तथा अपने स्थान पर 'आदिग्रंथ' को श्री गुरु ग्रंथ साहिब का स्थान देकर सिख सम्प्रदाय के गुरु रूप में स्थापित कर दिया तथ ताकि इसके पीछे कोई देहधारी व्यक्ति गुरु बनकर सिख सम्प्रदाय को अपनी इच्छा वासना का दास न बना सके। कहा जाता है कि जब गुरु जी श्री गुरु ग्रंथ साहेब की 'बीड़' तैयार करने बैठे तो अन्य पाण्डुलिपियों के होते हुए भी आप इस समस्त वाणी परम्परा को धीरमलियों के पास पड़ी पोथियों से मिलान करके शुद्ध रूप में इसका सम्पादन करना चाहते थे। जब उनके पास इस आशय से सन्देश भेजा गया तो उन्होंने पाण्डुलिपि देने से साफ इनकार कर दिया। आपने अपने मनोबल, समाधि तथा अलौकिक प्रतिभा के सहारे भाई मनी सिंह जी को सर्वशुद्ध वाणी लिखवाई और इस प्रकार श्री गुरु ग्रंथ साहेब का पुनः संकलन होकर इस को गुरु पद पर आसीन किया गया।

यह कहना सर्वथा असंगत है कि आपने ग्रंथ साहेब में मनमानी से परिवर्तन किए तथा आज जो रूप उपलब्ध होता है, वह कोई भिन्न रूप है। मुहम्मद लतीफ ने अपनी पुस्तक में जो आरोप लाया है, उसका निराकरण करते हुये डा० काला सिंह बेदी लिखते हैं - "सैयद मुहम्मद लतीफ अपनी पुस्तक के पन्ना 271-272 पर लिखता है - 'श्री गुरु गोबिंद सिंह का इरादा था कि गुरु नानक देव

के रचे आदिग्रंथ में लिखे नियमों व सिद्धांतों को बदला जाये। यह कथन बिल्कुल भ्रांति और ईर्ष्या है, यथार्थ से कोसों दूर है। बात यह थी कि जब गुरु जी ने आदि ग्रंथ की और बीड़ तैयार करवाने के लिये धीरमलियों से आदिग्रंथ को कुछ दिनों के लिये मांगा तो उन्होंने इनकार कर दिया क्योंकि वे लोग स्वयं को गुरु समझते थे और कलगीधर से ईर्ष्या रखते थे। इन दिनों गुरु जी दमदमा साहेब में निवास करते थे और यहां भी आदि साहित्य-कार्य बराबर करते रहे। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् आप के पास थे। दमदमा साहेब अब आनंदपुर साहेब की तरह ही विद्या का केंद्र बन चुका था। यहां तक यह स्थान विख्यात हो गया था कि इस को सिखां दी काशी[1] की पदवी मिल गई थी। जब गुरु जी को धीरमलियों की ओर से कोरा जवाब मिल गया, तब गुरु जी ने पूरी खोज, शोध, और समझदारी के विचार-विमर्श द्वारा गुणी ज्ञानियों का मत लेते हुये, भाई मनी सिंह जी से, अपनी पूरी देख-रेख में आदि ग्रंथ की बीड़-लिखवाई जिसका आशय यह था कि सिखों में गुरुवाणी प्रचार का प्रवाह निरंतर मंदाकिनी की तरह जारी रहे। आपका आशय गुरु नानक देव के सिद्धांतों को असली अर्थों में पेश करने का था, यह नहीं कि उन्हें बदला जाए। आपका यह प्रयास अत्यंत श्लाघनीय है। आज यह आदि ग्रंथ की बीड़ सारे संसार को मानवता का पढ़ा रही है।[2]

गुरु गोबिंद सिंह जी साधारण मनुष्य नहीं अपितु युग-दर्शी, क्रांति-दर्शी, एक साथ बहुत सारे आयामों पर जीने वाले, अपने परिवेश से पूर्णतया तादात्म्य स्थापित करते हुये भी मौलिक अवधारणाएं रखते थे, उनके साहित्य सृजन के विस्तार में जाना हमारा लक्ष्य नहीं है, इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उन्होंने अपने युग के रीतिकालीन साहित्य को सर्वथा नया और अनूठा मोड़ देकर वीर रस का अजस्र प्रवाह चला दिया जिसने मरुभूमि में नखलिस्तान का सा काम किया। वे एक उच्चे कोटि के कवि तो थे ही, साथ ही रीतिकाल के आचार्य

1- सिखां दी काशी नहीं अपितु गुरु की काशी दमदमा साहेब प्रचलित है

2- साप्ताहिक पंथ प्रकाश, दिल्ली, दशमेश अंक, 1967 पन्ना 43

कवि भी थे जिन्होंने अगिनत प्रातिभ कवियों का मार्गदर्शन किया।[1]

कहा जाता है कि जिस समय आप को आनंदपुर साहेब सरसा छोड़कर चमकौर साहेब जाना पड़ा तो सरसा नदी में वह सारा साहित्य बहा दिया गया जिसे 'विचारपोथी' नाम दिया जाता है और जिसका भार महाकवि संतोष सिंह ने 9 मन बताया है। हिन्दी आख्यायन काव्य और प्रबंध काव्यों में आपकी साहित्यिक निधि अपना ही विशिष्ट स्थान रखती है। भाई संतोखसिंह ने इस घटना का विशद विवेचन 'गुरप्रताप सूर्य ग्रंथ' में किया है। डा० हरिभजन सिंह इस विषय में लिखते हैं - "इन कवियों की नामावली का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनमें कुछ कवि गुरु जी के सिख थे। असिख कवियों में कुछ नाम मुसलिम भी हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कुछ कवियों को स्थायी रूप से गुरु आश्रय प्राप्त ~~किया जा सकता है कि कुछ कवियों के~~ था, अन्य कवि ऐसे थे जो आनंदपुर में गुरु दर्शनार्थ आते थे और काव्यकला में कुछ अभ्यास रखने के कारण अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति पद्य में करते थे। यदि इन सब को हजूरी कवि मान लिया जाए तो इनकी संख्या चौंसठ से भी कहीं अधिक होगी।"[2]

हमारा कहने का तात्पर्य है कि गुरु जी ने स्वयं भी उच्च कोटि की काव्य-रचना की तथा एक बहुत बड़ी संख्या में कवियों का मार्ग दर्शन भी किया और रीतिकाल के चुलबुलेपन को छोड़कर सोद्देश्य साहित्य का सिलसिला शुरु किया। साहित्य को नयी दिशा देकर समाज की सोच और संरचना में परिवर्तन लाने का आपका प्रयास अद्भुत प्रयास था।

उपसंहार :

हिन्दी का कोई भी अन्य कवि वीर रस की निष्पत्ति करने में आपसे आगे नहीं जा सका। कवि केशव, मतिराम, पद्माकर आदि कवियों की नायिका-

---

1- विस्तार के लिये देखिये 'दरबारी काव्य', गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य लेखक डा० हरिभजनसिंह, पन्ना 473-486

2- गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पन्ना 480

भेद , नखशिखवर्णन, आदि शृंगार रस के व्यापारों का वर्णन कहने से ही फुर्सत नहीं थी , यदि उनमें से किसी ने अपने राजा-नायक का वीरत्व दर्शाने का प्रयत्न किया भी है तो वह मात्र क्षुद्र भावनाओं को शांत करने हेतु दर्शाये गये उत्साह से आगे बढ़कर वीरत्व का स्थान नहीं पा सकता, क्योंकि उस वर्णन में वीररसोचित लोक-मंगल अथवा जातीय व राष्ट्रीय उत्थान की भावना कहीं भी काम नहीं कर रही । इस विषय में डा० महिप सिंह ने जो निष्कर्ष निकाला है, हम उसे से पूरी तरह सहमत हैं -

"भूषण का महत्व इस दृष्टि से सब से अधिक है। हिन्दी में वीर रस के अग्रणी कवि के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है। अपने युग के आदर्श पुरुष को उन्होंने अपना आश्रयदाता चुना। घोर शृंगार और खुशामदी युग में वीर रस की अपूर्व कविता का उन्होंने सृजन किया। यह सत्य है कि भूषण ने अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा का और उससे पर्याप्त धन भी प्राप्त किया परन्तु उनका आश्रयदाता उस युग का एक नेता था और उसके आदर्श भी लोकमंगलकारी थे, अतः यह प्रशंसा जीवन में उच्चतर भावों की प्रतिष्ठा करने वाली हुई। -- परन्तु गुरु गोविंद सिंह का महत्व सभी आश्रयप्राप्त कवियों से सर्वथा पृथक है। हिन्दी में वीर रस के वे एकमात्र कवि हैं जिनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि पर कोई सांसारिक आकांक्षा नहीं है, जिन्हें किसी आश्रयदाता को प्रसन्न नहीं करना है, जिन्हें अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग जीविकोपार्जन के लिये नहीं करना है। साहित्य सृजन के लिए उनकी एकमात्र कामना 'धर्मयुद्ध' का चाव है।"[1] धर्मयुद्ध के इस चाव के विषय में गत अध्यायों में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं जिसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

इतना अवश्य कहना होगा कि वीररस की यह भावना जो आपने प्रज्वलित की वह आपके दरबारी कवियों यथा सेनापति, हंसराम, अमीराम, अमृतराय,

---

1- डा० महिप सिंह, गुरु गोविन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृ० 34।

कुवरेश और सुदामा आदि के काव्यों में तो प्रवाहित हुई ही है, आगे चलकर भाई गुरदास सिंह, कवि मटक, शाह मुहम्मद, निहाल सिंह, ग्वाल भट्ट, हीरा, कान्य सिंह बंगा, शोभा बलोच, आदि हिन्दी व पंजाबी कवियों ने भी वीर भावना की काव्य धारा को बल प्रदान किया।[1]

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि श्री गुरु गोबिंद सिंह जी का जीवन और व्यक्तित्व, उनका साहित्य और कर्मशीलता भारतीय इतिहास के पतनोन्मुखी संदर्भ में अपना विशिष्ट एवं विलक्षण स्थान रखते हैं। उन्होंने भारत वर्ष को आध्यात्मिक, सांसकृतिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अकथनीय देन दी, वे भारत तथा इसके जीवन-मूल्यों के रक्षक, त्राता एवं उद्धारक थे, उन्होंने यहां की संत्रस्त, दुखी तथा पछड़ी हुई जाति को नया जीवन संदेश दिया और एक अमर संजीवनी प्रदान की। वे एक सफल कवि, विद्वान्, रहस्यवादी, सुधारवादी, समाज शास्त्री, वीर पुरुष, लोकप्रिय जन नायक, भविष्य दर्शी मनीषी थे जिसने साहित्य और समाज दोनों की विकास-रेखा और चिन्तन धारा को आमूल-चूल बदलकर रख दिया और इसी ऐतिहासिक व्यापार में उनका वास्तविक और स्वर्ण भरा स्थान है।

1- डा० अजमेरसिंह, महाराजा रणजीत सिंह अते पंजाबी साहित्य, पं० 120-140

सहायक पुस्तक सूची

(क) हिन्दी पुस्तकें :

1- अशोक, शमशेरसिंह, पैप्सू का प्राचीन साहित्य, पैप्सू प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटियाला, 1956 ई०।

2- अर्जुनदेव (गुरु) आदि श्रीगुरु ग्रन्थ साहेब, जवाहरसिंह, किरपालसिंह, अमृतसर।

3- आनन्दप्रकाश दीक्षित, रस सिद्धान्त: स्वरूप और विश्लेषण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969 छठा संस्करण।

4- इन्द्रसिंह चक्रवर्ती (सन्त), गोबिन्द रामायण, साहित्य रत्नमाला, बनारस तिथि नहीं दी।

5- उदय नारायण तिवारी, वीर काव्य, भारती भण्डार, प्रयाग, सम्वत् 2026, तीसरा संस्करण।

6- कालासिंह बेदी, गुरु गोबिन्दसिंह जी तथा चण्डी दी वार, पंजाबी बुक स्टोर, नई दिल्ली, 1967।

7- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी विश्व कोश (दस भाग), प्रधान सम्पादक-रामप्रसाद त्रिपाठी, वाराणसी, 1896 ई०

8- केशवदास, अमरसिंह की वार, मोती महल, पटियाला (हस्तलिखित)।

9- कृ० गो० वानखेडे गुरु जी, सन्त नामदेव तथा उनका साहित्य, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1970।

10- कृष्णदेव झारी (डा०), बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य, शोध प्रबन्ध प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966।

11- गणपतिचन्द्र गुप्त (डा०), हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, 1965।

12- गोबिन्दसिंह (गुरु) दशम ग्रन्थ (दो भाग), जवाहरसिंह, किरपालसिंह, अमृतसर, सम्वत् 2013

13- गोबिन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा।

14- गोविन्दनाथ राजगुरु (डा०) , गुरुमुखी लिपि में हिन्दी ग्रंथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969 ।

15- चन्द्रका प्रसाद त्रिपाठी, दादू दयाल की वाणी ।

16- जय भगवान गोयल, गुरु गोबिन्दसिंह का वीर काव्य, गुरु गोबिन्द-सिंह संस्थान, पटियाला, 1968 ।

- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, 1970

17- जगन्नाथ नलिन(डा०) भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप, बसन्त एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1966 ई०।

18- जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, साहित्य भवन प्रा०लि०, इलाहाबाद, 1960 ई० ।

19- जसवन्त सिंह, श्री दशम गुरु काव्य-अमृत सागर ।

20- तुलसी दास, रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

21- धर्मपाल मैनी(डा०), दशम ग्रन्थ एक सांस्कृतिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध ।

- भारतीय संस्कृति के आधार,
- मध्ययुगीन निर्गुण चेतना, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1902 ।
- सन्तों के धार्मिक विश्वास, नवजोत पब्लिकेशन्स, मालेरकोटला, 1966
- गुरु गोबिन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व ।

22- धर्मवीर भारती(डा०), सिद्ध साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1968 ।

23 नगेन्द्र (डा०), हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

- पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा ।
- रीति काव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1969, छठा संस्करण ।

24- परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, प्रयाग, 1962
सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1975

25- परमानन्द (भाई), वीर बैरागी ।

26- पीताम्बर(बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (अनु० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी), अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1968

28- पी०वी० काने, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4।

28- प्रेम प्रकाशसिंह (डा०) (सम्पादक), वाणी गुरु गोबिन्दसिंह, गुरु गोबिन्दसिंह फाउंडेशन, पटियाला, 1968।

29- प्रताप नारायण टण्डन, हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, भाग 1., लखनऊ, प्रकाशन तिथि नहीं दी।

30- प्रसिन्नी सहगल (डा०) , गुरुगोबिन्दसिंह और उसका काव्य, लखनऊ, 1969 ।

3 पृथ्वीसिंह आज़ाद, रविदास दर्शन, श्री गुरु रविदास संस्थान, चण्डीगढ़ , 1973
- गुरु रविदास, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 197।

31- बल्लूलाल अवस्थी (डा०), ध्वनि सिद्धान्त तथा साहित्य चिन्तन।

32- बलदेव उपाध्याय (डा०), भारतीय दर्शन

33- मदन मोहन गुप्त(डा०), मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंस हाउस, दिल्ली, 1968 ई०।

34- महेशचन्द्र शर्मा (डा०) सम्प्रेषण की दृष्टि से गुरु गोबिन्दसिंह का काव्य(अप्रकाशित) पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ , 1973

35- महिपसिंह (डा०), गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969 ।

36- मुक्तीराम शर्मा (डा०) , भारतीय साधना और सूर साहित्य

36-A. मनमोहन सहगल(डा०) गुरु ग्रन्थ साहिब: एक सर्वेक्षण, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 197।

37- मैथिलीशरण गुप्त, गुरुकुल, चिरगांव, स्वयं, 2004, विक्रमी)

38- मोतीलाल सेनारिया, हिंगल में वीर रस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966 ।

39 रत्नचन्द्र (श्री) सन्त रविदास, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर ,1969

40 योगेन्द्रसिंह (डा०), सन्त रैदास, आर प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली, 1972

41- रत्नसिंह जग्गी, गुरु नानक: व्यक्तित्व और कृतित्व और चिन्तन, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1974
- दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि।

40- रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सत्रहवां संस्करण, संवत् 202 ।
- चिन्तामणि ।
41- रामप्रसाद त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन
42- रामकुमार वर्मा (डा०) ~~मुगल साम्राज्य का उत्थान और-पतन-।~~
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1948 ई० ।
-सन्त कबीर, साहित्य भवन प्रा०लि०, इलाहाबाद, 1966 ई० पांचवां संस्करण ।
43- रामबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ।
44- रामानन्द शास्त्री व वीरेन्द्र पाण्डेय, सन्त रविदास और उनका काव्य, हरिद्वार, 1955 ई० ।
45- राजकमल वोरा, भूषण और उनका काव्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, तिथि नहीं दी ।
46- राधाकमल मुकर्जी, भारत की संस्कृति और कला, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1959 ।
47- रूप गोस्वामी, भक्ति रस सतरंगिनी ।
लाजवन्ती रामाकृष्णा मदान -- (सम्पादक) वीरांगना नाटक, न्यू लिट्रेचर, नई दिल्ली, 196। ।
48- बटे कृष्ण, वीर रस का शास्त्रीय विवेचन, सरस्वती मन्दिर, बनारस, 1956
49- विश्वनाथ प्रसाद, रस मीमांसा ।
50- वेद व्यास, महाभारत, दस भाग, सेडियन प्रेस, इलाहाबाद ।
51- वेणी प्रसाद शर्मा (डा०), संत गुरु रविदास, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1992 ई० ।
52- शम्भुनाथ सिंह (डा०) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास ।
53- शमीर सिंह (डा०), कृष्ण काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटेट की पी-एच०डी० परीक्षा में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, 1975 (अप्रकाशित)।
54- सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास ।
55- सत्यपाल गुप्त, पंजाब का हिन्दी साहित्य ।
56- सुदर्शन सिंह प्रभीठिया (डा०), सन्त साहित्य, रूप कमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962 ई०

57- हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (आचार्य) मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण, 1972।
- हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, 1954।

58- हरवंशलाल शर्मा (डा०) भारतीय दर्शन परम्परा और आदि ग्रन्थ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1963 ई०।

59- हरिभजनसिंह (डा०), गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली, 1963।

60- हृदयराम भल्ला, हनुमन्नाटक, बेंकटस प्रेस, लाहौर, संवत् 428 भागकशाही

61- त्रिलोकीनारायण दीक्षित (डा०), हिन्दी सन्त साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1963।

(ख) पंजाबी पुस्तकें :-

1- इन्द्रसिंह चक्रवर्ती (सन्त), गोबिन्द रामायण, स्वयं, पटियाला, 1953

2- करतारसिंह (प्रो०) जीवन कथा गुरु गोबिन्दसिंह, लाहौर बुक शाप, लाहौर, 1946।

3- कान्हसिंह नाभा (भाई), गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पटियाला, भाषा विभाग, 1960।

- श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थावली, सम्पादक, भाई वीरसिंह अमृतसर, 1934।

4- कुइरसिंह, गुरु विलास पातशाही दस, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला। केसरसिंह छिब्बर, बंसावली नामा दशां पातसाहियां दा, हस्तलिखित, तिथि 1780। सम्पादक, रत्नसिंह भंगी, परमु, पंजाबी विश्व० चण्डीगढ़ पटियाला।

5- गंडासिंह (डा०), सिख इतिहास बारे, लाहौर, लाहौर बुक शाप, 1947

6- गुरबचनसिंह स तालिब, साहिबुल कलाम, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1978।

7- गोपालसिंह दरदी (डा०) गुरु ग्रन्थ साहिब दी साहित्क विशेषता, दिल्ली, 1951।

8- गोबिन्दसिंह (गुरु), चण्डी दी वार, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर।
- दसम ग्रन्थ, भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह, भाई सेवा, अमृतसर (दो भाग), 2022 विक्रमी।

9- जगजीत सिंह (डा०) बारां श्री साखी की, साहित्य संगम, चण्डीगढ़, 1968 ।

10- जीतसिंह सीतल (डा०), पंजाबी साहित्य दा आलोचनात्मक इतिहास, पेप्सू बुक डिपो, पटियाला, 1979 ।

11- जोधसिंह (भाई), गुरमति निर्णय, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, 1945 ।

12- तारनसिंह (डा०), दशमग्रन्थ: रूप से रस, चण्डीगढ़, गुरु गोबिन्दसिंह फाउंडेशन, 1960 ।

13- दीवानसिंह (डा०) दशम गुरु-जीवन ते शख्सियत, लाहौर बुक शाप, लुधियाना ।

14- धर्मपाल मैनी (डा०), पंजाबी भक्ती साहित्य, के०लाल एण्ड कम्पनी जालन्धर, 1970 ।

15- नारायणसिंह (पंडित), दशम ग्रन्थ सटीक,

16- प्यारासिंह पदम, गोबिन्द सागर, स्वयं, कलम मन्दिर लोअर माल, पटियाला ।
- बाणी गुरु गोबिन्दसिंह, स्वयं, वही ।
- बारां श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी कीआं, स्वयं, कलम मन्दिर, लोअर माल, पटियाला ।

17- बिशनसिंह (भाई), दशम ग्रन्थ किसने बनाया, भाषा विभाग, पंजाब पटियाला ।

18- बूटासिंह (भाई) श्री दशमेश चमत्कार, भाई बूटासिंह प्रतापसिंह, अमृतसर ।

19- भाषा विभाग, पंजाब, पंजाबी हत्थ लिखतां दी सूची, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला ।
- पंजाबी साहित्य का इतिहास, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1963 ।

20- मोहनसिंह दीवाना (डा०) पंजाबी अदब दी मुख्तसिर तारीख, अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली ।
-पंजाबी साहित्य दी इतिहास रेखा, पं० यू० पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ़, 1962, दूसरा संस्करण ।

21- रणधीरसिंह (भाई), (सम्पादक), प्रेम सुमारग, सिख हिस्ट्री सोसायटी, अमृतसर ।
- शब्द सुरत एंव दसवें पातशाह दे ग्रन्थ दा इतिहास ।
- शब्दार्थ दशम ग्रन्थ ।

22- रत्नसिंह (डा०), दशम ग्रन्थ निर्णय, पंच खालसा दीवान, मसौढ़, 1916

23- रत्नसिंह जग्गी (डा०), गुरु गोबिन्दसिंह दी बाणी विच सुतन्त्रता दी भावना, गुरुगोबिन्दसिंह संस्थान, पटियाला, 1967

रत्नसिंह जग्गी (डा०) दसम ग्रन्थ दा कर्तृत्व ।
- दशम ग्रन्थ दा पौराणिक अध्ययन, न्यू बुक कम्पनी, जालन्धर । 1965
- विचारधारा, पेप्सू बुक डिपो, पटियाला, 1966 ।

24- रामसिंह (भाई), श्री गुरु गोबिन्दसिंह दा विद्या दरबार ।

25- बिशनसिंह ज्ञानी, दशम ग्रन्थ साहेब सटीक ।

26- शमशेरसिंह अशोक, दशम ग्रन्थ बारे, फकीरसिंह एण्ड सन्स, अमृतसर ।
- पंजाब दीयां लहरां, अशोक पुस्तक माला, पटियाला ।

27- सरूपसिंह भल्ला, महिमा प्रकाश, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 197।

28- सन्तोषसिंह (भाई) गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ, केवलटन प्रेस, लाहौर, 1955

29- सन्तसिंह (बाबा) (सम्पादक), श्री सर्बलोह ग्रन्थ साहेब क जी, दो भाग, सिंह साहेब वाला सन्तासिंह श्री अखण्डपाठ दियाम में करोड़ी, गुरु का बाग, श्री आनन्दपुर साहेब ।

30- साहेबसिंह (प्रो०), जीवन बिरतांत गुरु गोबिन्दसिंह, सिंह ब्रदर्स, अमृतसर ।

31- सुमेरसिंह, बाबा, गुरु पद प्रेम प्रकाश, सिख रैफरेंस लाइब्रेरी, अमृतसर ।

32- सुरिन्द्रसिंह कोहली (डा०) (सम्पादक), पंजाबी साहित्य दा इतिहास, भाग 1, 2, 3 पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ ।

33- सुरिन्दसिंह कोहली (डा०) पंजाबी साहित्य का इतिहास, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, 1957 ।

34- हरनामसिंह बल्लभ (ज्ञानी), पंजाबी दुनिया ।

35- ज्ञानसिंह (ज्ञानी), गुरु खालसा तवारीख, भाषा विभाग, पंजाब पटियाला ।
- पंथ प्रकाश, वीर सिंह प्रेस, अमृतसर, पांचवां संस्करण ।

36- दशम ग्रन्थ गिरा प्रकाश, श्री गुरु गोबिन्दसिंह ।

::0::

ENGLISH BOOKS

1. Ashta, Dharampal, The Poetry of Dasam Granth, Author, 6 Jorbagh Road, New Delhi 1958-59.

2. Avtar Singh (Dr.), Ethics of the Sikhs, Thesis, P.U.Chandigarh, 1966.

3. Bannerjee, Indu Bhushan(Dr.) Evolution of the Khalsa, Calcutta, Mukerjee and Co.1963,1972.

4. Bhandarkar R.C., Vaishnavism, Shaivism+and Religious Systems.

5. Chabra, J.S., History of the Panjab, Ludhiana, Parkash Brothers, 1962.

6. Cunnigham, J.O., History of the Sikhs, S.Chand and Co, Delhi, 1949.

7. Duncan Greenles, The Gospel of Guru Granth Sahib, Madras, 1959.

8. Ganda Singh and Teja Singh, A Short History of Sikhs. Vol.1, Orient Long Mans, Bombay, 1950.

9. Ganda Singh (Dr.) Banda Singh Bahadur, Sikh History Research Department, Khalsa College, Amritsar, 1958.

10. Guru Gobind Singh Foundation, The Shabdarth-Dasam Granth.

11. John Dosan, A Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion, Languages Department Pb.Patiala.

12. Kohli, S.S. (Dr.) A Critical Study of Adi Granth, Panjabi Writers Co-op, Society, Pvt.Ltd, New Delhi, 1961.

13. Kartar Singh, Life of Guru Gobind Singh, Ludhiana, Lahore Book Shop, 1951.

14. Khazan Singh, History and Philosophy of the Sikh Religion, Lahore

15. Khushwant Singh, History of Sikhs. London, Princeton University Press, Vol.I, 1963, Vol II 1966.

16. Lochlin, C.M. (Dr.) The Sikhs and Their Scriptures, Lucknow, The Lucknow Publishing House, 1984.

17. Max Muller Friedrich- Six New Systems of Indian Philosophy, Delhi, Associated Publishing House, 1973.

18. Macauliffe, Max Arthur, The Sikh Religion, (6 Vols) Oxford, 1909, S.Chand and Co. Delhi-1963.

19. Mohan Singh Dewana, (Dr.) A History of Panjabi Literature, Sadasiva Prakashan, Jullundur, 1972, IIIrd.
" An Introduction to Panjabi Literature self, Simla, 1951.

20. Mohammad Latif, Syed, History of the Panjab, Eurasia Publishing House New Delhi, 1980.

21. Narain Singh, Guru Gobind Singh Retold, Amritsar, The author, 1966.

22. Nangal, Gokul Chand (Sir), The transformation of Sikhism, New Society of India, New Delhi, 1950.

23. Sarkar, N.J., The Religious Quest of India History of Auranzeb, Vol. III, M.C. Sarkar & Sons, Calcutta, 1912-14.

24. Sidhant, N.K., The Heroic Age of India, Oriental Book Shop, New Delhi.

25. Srivastava, A.L., Sultanate of Delhi, Shiva Lal Aggarwal & Co, Agra, 1964.

26. Talib, Gurbachan Singh, The Impart of Guru Gonind Singh, On Indian Socity, Guru Gobind Singh Foundation 1966.

27. Trilochan Singh (Dr.) Brief Life Sketch of Guru Gobind Singh, Delhi Gurdwara Parbandhak Committee, 1964.

28. Wilson, H.H. Religious Sects of the Hindus, Edited by Ernest Rost & Sushil Gupta Calcutta, 1959.

29. Yusuf Hussain, Glimpses of Medieval Indian Culture, London 1959.

30. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. XII Edited by Hastings James.